# कश्मीरी भाषा और साहित्य

डॉ० शिबन कृष्ण रैणा

सन्मार्ग प्रकाशन; दिल्ली-७

पूज्य पितामह

स्व० पं० श्री शम्भुनाथ राजदान

को

जिनका स्नेह ही मेरा सम्बल रहा

—शिबन कृष्ण रैणा

# भूमिका

डॉ० शिबनकृष्ण रैणा द्वारा लिखित प्रस्तुत ग्रन्थ 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' हिन्दी में अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है। इस महत्त्वपूर्ण ग्रंथ के लिए न केवल हिन्दी जगत् ही उनका आभारी है अपितु कश्मीरी भाषा-भाषी जनसमुदाय भी उनका चिर ऋणी है। अब तक अधिकांश रूप में कश्मीरी भाषा और साहित्य पर विद्वानों ने फुटकर निबन्ध ही लिखे हैं। कश्मीरी भाषा पर डा० बलजिन्नाथ पंडित, प्रो० श्रीकंठ तोषखानी, प्रो० त्रिलोकीनाथ गजू, स्व० दुर्गाप्रसाद काचरू, एम० ए०, श्री रामचन्द्र कौल 'अभय' श्री बद्रीनाथ कल्ला शास्त्री, एम० ए० ने भी विद्वत्तापूर्ण निबन्ध लिखे हैं। इसी प्रकार विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे कश्मीरी साहित्य पर भी कुछ खोजपूर्ण निबन्ध लिखे गए हैं। यदि पुस्तकाकार रूप में लिखी जाने वाली कश्मीरी-साहित्य पर किसी आलोचनात्मक पुस्तक का नाम लिया जा सकता है तो वह श्री अवतार कृष्ण 'रहबर' की कश्मीरी-भाषा मे लिखित 'कश्मीरी-साहित्य का इतिहास' है। किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण उन्होंने उक्त पुस्तक का केवल प्रथम खण्ड ही प्रकाशित करके इस क्षेत्र में सही रहबरी की है।

हिन्दी में सबसे पहले यह काम करने का श्रेय डॉ० शिबन कृष्ण रैणा को ही है। डॉ० रैणा का कश्मीर के तरुण हिन्दी लेखकों में अपना खास स्थान है। 'प्रकाश' मासिक पत्रिका के सपादक के रूप मे आपने कश्मीर की सांस्कृतिक चेतना को उभारने में बड़ा स्तुत्य प्रयास किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे आपने हिन्दी में कश्मीरी-साहित्य के इतिहास को लिखकर भारत के उस प्रदेश के गत लगभग आठ सौ वर्षों के साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए प्रशसनीय कार्य किया है जिसका सस्कृत और फारसी साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

अभिनवगुप्त, मम्मट, आनन्दवर्धन, कल्हण, बिल्हण, क्षेमेन्द्र आदि विद्वानों से तो संस्कृत वाङ्मय भरा पड़ा है। इसी प्रकार गनी काश्मीरी और भवानीदास काचरू आदि की फारसी साहित्य को देन भी महत्त्वपूर्ण है। ऐसी स्वस्थ साहित्यिक परम्पराओं से युक्त प्रकृति की इस लीला-स्थली में पिछले आठ सौ वर्षों में कश्मीरी साहित्य की जो देन है, वह किसी भी प्रकार से भारत के अन्य किसी प्रान्तीय साहित्य से न्यून नहीं है। यह ठीक है कि मात्रा की दृष्टि से कश्मीरी साहित्य कुछ अधिक नहीं है किन्तु कलात्मक दृष्टि से उसे किसी भी प्रकार से कम नहीं कहा जा सकता। १९४७ के बाद जिस तीव्र गति से विभिन्न विधाओं में कश्मीरी-साहित्य की वृद्धि हुई और हो रही है उसको देखकर इसके उज्ज्वल भविष्य की आशा की जा सकती है।

कश्मीरी भाषा एवं साहित्य के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार मे बाधा के दो कारण हैं—एक कश्मीरी समाज का बिखराव और दूसरा लिपि। कश्मीर पिछले २५ वर्षों

में तीन बार पाकिस्तानी आक्रमण क
की संख्या में भारत के विभिन्न भागों
एक बहुत बड़ा भाग एक दूसरे से अल
संस्था नहीं जो उनकी प्रतिभा को वि
साहित्य की श्री वृद्धि में योगदान दे सक
कश्मीरी-भाषा के लिए प्रारम्भ में 'शारद
इसका अब भी थोड़ा बहुत प्रचलन है—ि
रूप में यहाँ के साहित्यकार फारसी अथवा
कार ने कई बार इस समस्या को सुलझाने
(अरबी) लिपि का प्रयोग किया है किन्तु वह
नस्ख (फारसी) लिपि का प्रचलन किया । ि
देवनागरी-लिपि का सरकारी तौर पर बहिष्का
मालाओं के दायरे में सीमित रखने का मूल कार
कि कश्मीरी भाषा के लिए मात्र देवनागरी लिि
दोनों लिपियों को राज्यकीय मान्यता प्रदान करने
नागरी भी । आज राज्य से बाहर की कतिपय सा
पत्रिकाओं के कश्मीरी पाठ देवनागरी लिपि मे ही
बड़ी प्रसन्नता हुई है कि विद्वान लेखक ने अपनी पु
भी यथेष्ट प्रकाश डाला है ।

संक्षेप में यदि कश्मीरी-साहित्य पर एक विह
स्पष्ट दिखाई देती है कि कश्मीरी एवं हिन्दी-साहित
अन्तर नहीं है । इसका प्रमुख कारण यह है कि दोनों
राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों मे पनपे एवं वि
यह है कि दोनों साहित्यों की पृष्ठभूमि संस्कृत वाङ्मय
हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं प्रवृत्तियों
परिपाटी चल पड़ी है और इस

# प्रस्तावना

बात १९६८ की है। मैं कार्यवश अहमदाबाद गया हुआ था। वहाँ गुजराती के सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी से मिलने का सुअवसर मिला। बातों-ही-बातों में उन्होंने मुझसे पूछा—क्या हिन्दी में कश्मीरी भाषा और साहित्य का परिचय देने वाली कोई पुस्तक प्रकाशित हुई है? मेरे मुँह से नहीं सुनकर वे तुरन्त बोले—आप जैसे उत्साही युवक, जो कश्मीरी भी जानते हों और हिन्दी भी, यदि इस कार्य को हाथ में नहीं लेते तो फिर कौन ले सकता है? बात मुझे लग गई और मैंने तभी 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' विषयक एक पुस्तक लिखने का संकल्प कर लिया।

कार्य मैंने हाथ में ले तो लिया किन्तु साधन मेरे पास थे बहुत कम। कश्मीर में रहकर यह कार्य करता तो सम्भवतः अधिक कठिनाई न होती क्योंकि सामग्री एकत्र करने, साहित्यकारों से मिलने तथा अन्य प्रकार की सुविधाएं सुगमता से मिल जातीं। किन्तु यह कार्य मैंने अपने घर से दूर भारत की वीर-वसुन्धरा राजस्थान में सम्पन्न करने का बीड़ा उठाया था। मैं पूर्ण धैर्य के साथ अपने सीमित साधनों से कश्मीरी भाषा और साहित्य सम्बन्धी सामग्री एकत्र करता रहा। इसी बीच विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उक्त पुस्तक को लिखने के लिए मुझे आर्थिक सहायता प्रदान की। मेरा कर्मोत्साह बढ़ गया। मैं दो बार कश्मीर गया और वहाँ जो भी सामग्री मिल सकी उसे खरीद लाया, अनेक साहित्यकारों से मिला, उनसे कश्मीरी भाषा और साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श किया आदि। मुझे यह लिखते हुए अतीव प्रसन्नता हो रही है कि कश्मीर में मैं जिन-जिन साहित्यकारों और विद्वानों से मिला, सभी ने मुझे पूर्ण सहयोग दिया। इस प्रसंग में मैं सर्वश्री दीनानाथ नादिम, पृथ्वीनाथ पुष्प, प्रो० जे० एल० कौल, मोहन निराश, प्रो० के० एन० धर, अवतारकृष्ण रहबर, अमीन कामिल, अली मुहम्मद लोन, प्राणकिशोर, पुष्कर भान, गुलाम नबी ख्याल, रतनलाल शान्त, चमनलाल सप्रू, हरिकृष्ण कौल, मुहम्मद यूसुफ टेंग, मोतीलाल साकी, अवतारकृष्ण राजदान, भूषणलाल जाड़ू आदि के सद्भावनापूर्ण व्यवहार को कदापि भूल नहीं सकता। इन सभी साहित्यकारों एवं विद्वानों ने मुझे जो अमूल्य सुझाव दिए, उनके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

सामग्री एकत्र हो जाने पर जब मैं पुस्तक लिखने बैठा तो मेरे सामने एक महत्वपूर्ण समस्या आई। कश्मीरी साहित्यकारों के कृतित्व का मूल्यांकन करते समय उनके साहित्य के कुछ नमूने उदाहरणस्वरूप देना आवश्यक था। यदि केवल कश्मीरी

उद्धरण दे देता तो हिन्दी का पाठक कृतित्व की बारीकी को समझ न पाता। अतः मुझे यथास्थान मूल उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद भी देना पड़ा। प्रत्येक भाषा के साहित्य की अपनी एक खास प्रकृति होती है और उसे दूसरी भाषा में उतारना—शब्द और अर्थ की उसी सौन्दर्य दृष्टि के साथ, कितना जटिल कार्य है, यह बात मुझे तब मालूम पड़ी जब कश्मीरी कवियों की एक-एक पंक्ति को हिन्दी में रूपांतरित करने के लिए मुझे घंटों बिताने पड़े। इस पुस्तक में मैंने पूरा प्रयत्न किया है कि कश्मीरी उद्धरणों के जो हिन्दी रूपान्तर दिए गए हैं वे मूल उद्धरणों की आत्मा का सही-सही प्रतिनिधित्व करें। हिन्दी-भाषी विद्वानों की अपेक्षा कश्मीरी भाषी हिन्दी विद्वान् मेरे इस परिश्रम का महत्व अच्छी तरह समझ सकेंगे। पुस्तक में साहित्यकारों के कृतित्व की विशेषताओं को स्पष्ट करने के लिए उनकी रचनाओं से जो नमूने उदाहरणस्वरूप दिए गए हैं वे मैंने मुख्यतया अब्दुल अहद आज़ाद के ग्रंथ 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' तथा मोहीउद्दीन हाजिनी के 'काशिर-शायरी' से लिए हैं। इन दोनों ग्रन्थकारों का मैं आभारी हूँ।

कश्मीरी भाषा और साहित्य पर अभी तक दो इतिहास-ग्रंथ लिखे गए हैं। एक उर्दू में है और दूसरा कश्मीरी में। उर्दू में लिखित इतिहास के लेखक हैं—स्वर्गीय अब्दुल अहद आज़ाद तथा कश्मीरी में लिखित इतिहास के लेखक हैं श्री अवतारकृष्ण रहबर। आज़ाद का कार्य यद्यपि कश्मीरी साहित्य पर किया जाने वाला प्रथम मौलिक कार्य है और उसके बहुमूल्य महत्व को कश्मीरी-जगत् कभी भूल नहीं सकता तथापि इतिहास-लेखन की परम्परा में एक प्रारम्भिक प्रयास होने के कारण इसमें पर्याप्त खामियाँ रह गई हैं। (इन खामियों की ओर 'कश्मीरी-साहित्य का काल-विभाजन' के अन्तर्गत इंगित किया गया है।) आज़ाद के इस इतिहास-ग्रन्थ में लल्लद्यद (१३३५ ई०) से लेकर महजूर (१८८५ ई०) तक के कश्मीरी कवियों का विवेचन है। महजूर से इतर आधुनिककाल (१६०० से—) के साहित्यकारों का उसमें विवेचन नहीं है। इस दृष्टि से भी यह इतिहास अपूर्ण रह गया है। अवतार कृष्ण 'रहबर' का इतिहास भी यद्यपि पर्याप्त खोजपूर्ण है किन्तु वह भी अपूर्ण ही है। उसमें केवल लल्लद्यद (१३३५ ई०) से लेकर नुंदऋषि (१७०४ ई०) तक के कवियों का अध्ययन है। (इस इतिहास का अभी प्रथम भाग ही प्रकाशित हुआ है)।

हिन्दी में लिखा जाने वाला कश्मीरी भाषा और साहित्य पर यह प्रथम मौलिक कार्य है। इस पुस्तक में पहली बार कश्मीरी साहित्य के आधुनिककालीन साहित्यकारों के कृतित्व, कश्मीरी गद्य का उद्भव और विकास, कश्मीरी नाटक, रंगमंच, उपन्यास, समालोचना, पत्रकारिता आदि विषयों को जोड़कर उनपर विचार किया गया है। इस पुस्तक के प्रथम चार अध्याय लिखते समय आज़ाद [illegible]र के ग्रन्थों से पर्याप्त सहायता ली गई है—परन्तु मात्र सामग्री-संकलन में
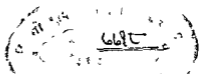
ही। इस संकलित सामग्री से सम्बन्धित विश्लेषण मेरा अपना है। कश्मीरी के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० जे० एल० कौल की पुस्तक 'स्टडीज़ इन कश्मीरी' से भी मैंने सहायता ली है। इन सभी विद्वानों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न साहित्यकारों के जीवन और कृतित्व का अध्ययन कालानुक्रम से किया गया है, उनके साहित्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं को ध्यान में रखकर नहीं। कारण, हिन्दी में लिखा जाने वाला यह प्रथम मौलिक कार्य है। मेरा लक्ष्य जहाँ हिन्दी जगत् को कश्मीरी साहित्य की प्राचीन व आधुनिक प्रवृत्तियों से परिचित कराना रहा, वहाँ कश्मीरी के उन अनेक साहित्यकारों, विशेषकर आधुनिक-काल के साहित्यकारों के जीवन और कृतित्व को प्रकाश मे लाने का भी रहा जो अभी तक प्रकाश में नहीं आसके थे। इसलिए मैंने प्रत्येक साहित्यकार का अध्ययन कालानुक्रम से ही किया। वैसे, प्रत्येक काल की साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों का सम्यक् परिचय मैंने यथास्थान दे दिया है।

कश्मीरी भाषा की अपनी कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ हैं जिन्हें देवनागरी वर्णमाला अंकित करने मे सक्षम नहीं है। इन विशिष्ट ध्वनियों को अंकित करने के लिये इस पुस्तक में जिन संकेत-चिन्हों का प्रयोग किया गया है उसका विवरण इस प्रकार है :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, अर्धसंवृत। जैसे 'e' Certainly में। [लर=मकान, गर=घड़ी, नर=बाँह] |
| | ऑ | (+) | प्रसारित ओष्ठ, पश्च, दीर्घ, अर्धसंवृत। जैसे 'i' bird मे या 'u' 'curd' में। [हार=मैना, लार=खीरा, कार=गर्दन। |
| | उ़ | (़) | प्रसारित ओष्ठ, पश्च, ह्रस्व, संवृत। जैसे, 'e' 'broken' में। [गुप=लहर, तुर=चिथड़ा, बु=मैं] |
| | ऊ़ | (़) | प्रसारित ओष्ठ, पश्च, संवृत, दीर्घ। (तनिक दीर्घ प्रयत्न के साथ) [तूर=सर्दी, मूत्य=साथ, कूद्य=कंदी] |
| | ऑ | (ॅ) | गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत, ह्रस्व। जैसे, 'O' o'clock में। [नोट=घड़ा, सोन=गहरा, नोन=नंगा] |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ۄ | ऒ | (ٗ) | गोलाकार ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत्त ह्रस्व<br>अत्यल्प 'व' मिश्रित।<br>जैसे, 'ua' equal में।<br>सॊन=सोना, बॊन=नीचे, मॊण्ड=विधव |
| ێ | ऎ | (ٚ) | प्रसारित ओष्ठ, पश्च, अर्धसंवृत्त, ह्रस्व<br>जैसे, 'e' best में।<br>शॆ=छ:, मॆ=मुझे, बॆह्=बैठो] |
| ژ | च़ | | [च़र=खटमल, च़ूंठ=सेब, च़ास=खाँसी]<br>अघोष, महाप्राण, दंतमूलीय, स्पर्श संघर्षी, |
| ژھ | छ़ | | [छ़ल=छल, लछ़=धून, लांछ़=नपुंसक]<br>अघोष, महाप्राण दंतमूलीय, स्पर्श-संघर्षी। |
| ز | ज़ | | [ज़ग=टांग, ज़ान=परिचय, रज़=रस्सी] |

[कश्मीरी के लिये देव नागरी-लिपि के प्रयोग के औचित्य पर इस पुस्तक में प्रथम अध्याय के अन्तर्गत सविस्तार प्रकाश डाला गया है।]

नोट—ह्रस्व 'इ' के लिए शब्द के अंतिम वर्ण को अर्द्ध बनाकर उसके साथ 'य' जोड़कर काम चलाया गया है। कश्मीरी के लिए उपर्युक्त मात्रा चिन्ह 'भुवन-वाणी-ट्रस्ट' लखनऊ ने भी अपने भाषाई कार्यक्रमों के लिए स्वीकार कर लिए हैं। (पुस्तक में विभिन्न कश्मीरी उद्धरणों को उक्त मात्रा-चिन्हों के आधार पर ही देव-नागरी में लिप्यन्तरित करने का प्रयास किया गया है। बहुत सारे स्थानों पर टाइप की अनुपलब्धि तथा अन्य कठिनाइयों के कारण कुछ उद्धरण सही-सही लिप्यंतरित नहीं हो सके हैं—इसका मुझे खेद है।)

मैं अपनी जीवन-संगिनी श्रीमती कृष्णा रैणा तथा मित्रवर श्री प्रो० चांद-नारायण श्रीवास्तव के प्रति अपने कृतज्ञता-ज्ञापन को मात्र औपचारिकता समझता हूँ। उनकी सतत प्रेरणा से ही मैं पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत कर पा रहा हूँ। मुझे अच्छी तरह याद है कि हम तीनों कोई एक महीने तक घंटों बैठकर इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ते, टाइप सम्बन्धी विभिन्न अशुद्धियों को दुरुस्त करते, जहाँ पर कोई ब्योरा अधिक स्पष्टता चाहता दिखता वहाँ और सामग्री जोड़ देते आदि। मैं बन्धुवर प्रो० जीवनसिंह मेहता तथा प्रो० दिवाकर मजूमदार का भी आभारी हूँ जिनके कुछ सुझाव मेरे लिए कई दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हुये।

मैं अपने प्रकाशक महोदय का भी आभारी हूँ—जिन्होंने मेरी पुस्तक को इतने

में आशातीत रुचि ली तथा इस पुण्यकार्य को हिन्दी जगत् तक पहुंचाया।

अन्त में, मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का हृदय से आभारी हूँ जिसकी सामयिक आर्थिक-सहायता से मेरी कई समस्याएँ सहसा सुलभ गई और इस महत्व-पूर्ण पुस्तक का प्रणयन सम्भव हो गया। हिन्दी-जगत् इस पुस्तक का स्वागत करेगा— ऐसा मेरा विश्वास है।

२६ मार्च १६७२
राजकीय कॉलिज
नाथद्वारा
(राजस्थान)

—डॉ० शिवन कृष्ण रणा

# विषय-सूची

# कश्मीर का भौगोलिक परिवेश

कश्मीर जम्मू व कश्मीर प्रदेश का एक प्रमुख भाग है। यह प्रदेश भारत के उत्तर-पश्चिम में ३२° १७′ व ३६° ५८′ उत्तरी अक्षांश के मध्य तथा ७३° २६′ व ८०° ३०′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। इस प्रदेश के साथ उत्तर में चीनी-तुर्किस्तान, रूस, पामीर आदि, पूर्व में तिब्बत, पश्चिम में पाकिस्तान व अफगानिस्तान तथा दक्षिण में पंजाब व हिमाचल की सीमाएँ मिलती हैं। इस प्रदेश का कुल क्षेत्रफल ८४४७१ वर्गमील है। जनसंख्या ३५६०९७६ है जिसमें जम्मू क्षेत्र की जनसंख्या १५७२८८७ तथा कश्मीर क्षेत्र की १९८८०८९ है। कश्मीर-घाटी १४० किलोमीटर लम्बी, ४० किलोमीटर चौड़ी तथा समुद्रतल से २१३४ मीटर ऊँची है।[1]

## 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति

'कश्मीर' शब्द के काश्मीर, कशमीर, काशमीर आदि पर्यायवाची मिलते हैं। इनमें से सर्वाधिक प्रचलित शब्द कश्मीर ही है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। एकमत के अनुसार कश्मीर को कश्यप ऋषि ने बसाया था और उन्हीं के नाम पर इसे 'कश्यपपुर' कहा जाता था जो बाद में बिगड़कर 'कश्मीर' बन गया। आज से सहस्रों वर्ष पूर्व यह भूखण्ड पूर्णतया जलमग्न था जिसमें जलद्भू नाम का एक दैत्य निवास करता था। इस दैत्य ने अखण्ड तपस्या द्वारा पितामह ब्रह्मा से तीन वरदान प्राप्त कर लिए थे—जल में अमरत्व, अतुलनीय विक्रम तथा मायाशक्ति की प्राप्ति। यह दैत्य इन वरदानों को पाकर तत्कालीन जनता को, जो आस-पास की पहाड़ियों पर रहती थी, संत्रस्त करने लगा था। उस पापी के आतंक से सारा देश जनशून्य हो गया था।[2] एक बार ब्रह्मपुत्र कश्यप ने कश्मीर की यात्रा की। यहाँ की दुरावस्था का उन्होंने लोगों से कारण पूछा। लोगों ने जलद्भू दैत्य का सारा वृत्तांत सुनाया। कश्यप का हृदय द्रवीभूत हो उठा। उन्होंने तुरन्त इस भूखण्ड का उद्धार करने का निश्चय कर लिया। वे हरीपुर के निकट नौबन्धन में रहने लगे तथा वहीं पर उन्होंने एक सहस्र वर्ष तक महादेव की तपस्या की। महादेव कश्यप की तपस्या से प्रसन्न हो गए तथा उन्होंने जलद्भू का अन्त करने की प्रार्थना स्वीकार कर ली। महादेव ने विष्णु और ब्रह्मा को जलदेव का अन्त करने के लिए भेजा। विष्णु और

---

१. भारत की भौगोलिक समीक्षा, डा० चतुर्भुज मामोरिया, पृ० २६१, १९६२

२. नीलमत-पुराण, ११८-१२२

जलदेव का एक सौ वर्षों तक संघर्ष होता रहा। विष्णु ने जब देखा कि जलदेव जल तथा पंक में रहकर अपनी रक्षा करता है तो उन्होंने बाराहमूला के समीप जल का निकास कराया। जल के निकलते ही दैत्य दृष्टिगोचर होने लगा। दैत्य को पकड़कर मार डाला गया। चूंकि यह सब काम कश्यप की कृपा से हुआ था इसलिए 'कश्यपमर' 'कश्यपपुर' 'कश्यपमर' आदि नामों से यह घाटी प्रसिद्ध हो गई। 'कश्मीर' इन्हीं नामों का विकृत रूप है।[1] एक अन्य मत के अनुसार कश्मीर 'क' व 'समीर' के योग से बना है। 'क' का अर्थ है जल और 'समीर' का अर्थ है हवा। जलवायु की सर्वश्रेष्ठता के कारण यह घाटी 'कसमीर' कहलायी और 'कसमीर' से 'कश्मीर' शब्द बन गया। एक अन्य विद्वान के मतानुसार 'कश्मीर 'कस' और 'मीर' शब्दों के योग से बना है। 'क का अर्थ है स्रोत तथा 'मीर' का अर्थ है पर्वत। यह घाटी चूंकि चारों ओर से पर्व से घिरी हुई है तथा यहां स्रोतों की अधिकता है इसलिए इसका नाम 'कश्मीर' प गया। कुछ विद्वान 'कश्मीर शब्द की व्युत्पत्ति 'काशगर' 'काशान' तथा 'कश' आ से मानते हैं।[2] उक्त सभी मतों में कश्यप ऋषि से सम्बन्धित मत अधिक समीची एवं व्यावहारिक लगता है।

## कश्मीर का संक्षिप्त इतिहास

कल्हण की राजतरंगिणी में कश्मीर के इतिहास का समारम्भ महाभारतकाल से किया गया है। यह वह समय था जब महाराजा युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थ के सिंहासन पर विराजमान थे। कल्हण के अनुसार कश्मीर का प्रथम हिन्दू नरेश गोनन्द था। गोनन्द जरासन्ध का निकट सम्बन्धी था। जब जरासन्ध और श्रीकृष्ण के बीच युद्ध हुआ तो अपने सम्बन्धी जरासन्ध की सहायता के लिए गोनन्द विशाल सेना लेकर पहुंचा किन्तु बलराम के हाथों मारा गया। इसके पश्चात् उसका पुत्र दामोदर कश्मीर के सिंहासन पर बैठा। अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये उसने श्रीकृष्ण से युद्ध किया किन्तु वह भी मारा गया। दामोदर की पत्नी यशोवती, जो उस समय गर्भवती थी, को श्रीकृष्ण के कहने पर कश्मीर की साम्राज्ञी बनाया गया। एक स्त्री का साम्राज्ञी बनना तत्कालीन जनता को भाया नहीं तथा उसने इसका विरोध किया। श्रीकृष्ण ने यह तर्क देकर जनता को सन्तुष्ट किया कि यह भूमि हिमालयपुत्री एवं भगवान शिव की अर्धांगिनी पार्वती की भूमि है। अतः इस शिव भूमि पर एक स्त्री का राज्य करने के सर्वथा योग्य है। यशोवती के गर्भ से एक पुत्र हुआ जो गोनन्द द्वितीय

---

1. 'राजतरंगिणी' भाष्यकार रघुनाथसिंह, पृ० ६४
2. वही पृ० ३१

'जम्मू से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'धर्ममार्ग' में डा० मुरलीधर श्रीवास्तव का एक लेख 'कश्मीर और कश्यप ऋषि का मूल स्थान' छपा है। इसमें लेखक ने कश्मीर शब्द का अर्थ पर्वतों की सीमाभूमि किया है।'

'धर्ममार्ग' अप्रैल, १९६६।

... ...न लगभग पचास दूसरे नरेशों ने राज्य
किन्तु किसी भी नरेश के सम्बन्ध में कोई भी सामग्री नहीं मिलती है। कल्हण
इन नरेशों का इतिवृत्त नहीं दिया है। उन्होने केवल इतना लिखा है—'पंच-
महीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे' (रा० त० १-८३) अर्थात् पैंतीस महीपालों के
तथा कर्म विस्मृति के सागर में डूब चुके हैं। तदनन्तर लव, कुश, खगेन
, सुवर्ण, जनक, शचीनर आदि नरेशों के शासन के पश्चात् कश्मीर पर
क (२७४-२३२ ई० पू०) ने राज्य किया। इस नरेश ने कई स्थानों
एवं मठ बनवाये। 'पुरानाधिष्ठान' पांद्रेठन इन्हीं के द्वारा बसाया
था जहाँ पर उस समय लगभग ६० हजार घर थे।

अशोक के पश्चात् उनके पुत्र जलौक तथा कुशान वंशी कनिष्क (१००
रवीर नरेशों ने कश्मीर पर राज्य किया। कुशान वंश के बाद कश्मी
ों ने राज्य किया। हूण-शासकों में मिहिरकुल (२१५ ई०) का नाम
। मिहिरकुल के उपरान्त मेघवाहन, मातृगुप्त, प्रवरसेन, रणादित्य,
नरेशों ने कश्मीर पर राज्य किया। वर्तमान श्रीनगर प्रवरसेन ने ही बस

६२७ ई० में दुर्लभवर्धन ने कश्मीर में कारकूट वंश की नींव डाली।
मुक्तापीड़ इसी वंश के एक शूरवीर एवं पराक्रमी नरेश हुये हैं जिन्हें
हास में एक प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त है। ललितादित्य ने ६६६ ई०
ई० तक राज्य किया। अपने राज्यकाल में इन्होंने लद्दाख, तिब्बत, चीन
गों को जीतकर अपने क्षेत्र के साथ मिला लिया था। इसके अतिरिक्त
न्द, काबुल, चीनी-तुर्किस्तान आदि देशों तक अपनी सेनायें भेजकर
लिया था। श्रीनगर से बारह मील दूर वितस्ता नदी के किनारे
राजधानी बनायी जिसका नाम 'परिहासपुर' रखा। इस स्थान प
नावशेष मिलते हैं जो इस नगरी की भव्यता का संकेत करते हैं
में कुछ मन्दिर भी बनवाये जिनमें मार्तण्ड के सूर्यमन्दिर प्रसिद्ध हैं
बाद कश्मीर ८५५ ई० से लेकर ८८३ ई० तक अवन्तिवर्मण के
स नरेश ने भी अपनी राज्यसीमा का पर्याप्त विस्तार किया।
अवन्तीपुर' नाम का एक भव्य नगर बसाया और यहीं पर भगवा
ष्णु के दो मन्दिर भी बनवाये। एक बार इनके राजत्वकाल में
बाढ़ आ गई थी किन्तु सुया नामक अभियन्ता के सद्प्रयत्नों से घाट
। यद्यपि कश्मीर पर हिन्दू नरेशों का शासन १३४० ई० तक
क्ति का ह्रास १२वीं-१३वीं शताब्दी से ही होने लग गया था। हि
ास में वीरांगना कोटारानी कश्मीर की अन्तिम कुशल शासि
की तत्कालीन विशृंखलित राजनीतिक स्थिति को सम्भालने में
ने सराहनीय कार्य किया। शाहमीर जो सहदेव (१३०१-२०) के
र आया था, ने रानी के साथ विश्वासघात किया। कोटा ने पू

साथ शाहमीर का प्रतिकार किया। घमासान युद्ध हुआ। कोटा स्वयं रणक्षेत्र में कूद पड़ी—एक हाथ में तलवार और दूसरे में घोड़े की लगाम लेकर। किन्तु कोटा की हार हुई। शाहमीर ने कोटा की विवशता से लाभ उठाना चाहा। उसने कोटा के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु उस वीरांगना ने अपने सीने में खंजर घोंप कर अपनी इहलीला समाप्त कर दी। कोटा के साथ ही कश्मीर के हिन्दू नरेशों का अध्याय समाप्त होता है और इसके बाद मुसलमान-शासन का काल प्रारम्भ होता है।

कश्मीर पर शासन करने वाले मुसलमान शासकों में सर्वप्रथम रेंचनशाह का नाम आता है। तिब्बत से आए इस बौद्ध ने इस्लाम-धर्म ग्रहणकर कश्मीर पर १३२५-१३२७ तक शासन किया। रेंचन के बाद कश्मीर पर शाहमीरी वंश के शासकों का लगभग २६६ वर्षों तक आधिपत्य रहा। इस वंश के तीन शासक उल्लेखनीय हैं—सुलतान शहाबुद्दीन, सुलतान सिकन्दर तथा सुलतान जैनउलाबद्दीन। सुलतान शहाबुद्दीन ने १३५४ ई० से लेकर १३७३ ई० तक राज्य किया। यह सुलतान जितना प्रजावत्सल था उतना ही पराक्रमी भी। इसने अपनी सेना भेजकर सिन्ध के राजा को परास्त कर दिया था तथा लद्दाख व बलूचिस्तान को भी जीत लिया था। इसकी सेना में अनेक हिन्दू ऊँचे-ऊँचे पदों पर थे।

१३८१ ई० में सुलतान सिकन्दर गद्दी पर बैठा यह एक कट्टर मुसलमान था। अपनी धर्मान्ध नीति से इस सुलतान ने अनेक कश्मीरी हिन्दुओं का वध करवाया तथा कइयों को इस्लामधर्म ग्रहण करने पर मजबूर किया। असहाय हिन्दू इस सुलतान के आतंक से संत्रस्त होकर कश्मीर से भाग गए। हिन्दुओं के देवस्थान, तीर्थस्थान आदि को नष्ट-भ्रष्ट करने में इस क्रूर शासक ने कोई कसर शेष न रखी। कश्मीर के इतिहास में यह शासक सिकन्दर बुतशिकन' के नाम से कुख्यात है।

१४२० ई० में सुलतान सिकन्दर का पुत्र जैनउलाबद्दीन कश्मीर के तख्त पर बैठा। इस महान शासक ने अपने पचास वर्षों के शासनकाल में कश्मीर की राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में आशातीत परिवर्तन लाया। अपनी धर्मनिरपेक्ष तथा उदार नीतियों से इस सुलतान ने तत्कालीन हिंदू जनता का दिल जीत लिया और 'बड़शाह' अर्थात् हिंदुओं का राजा कहलाया। रचनात्मक कार्यों के लिये यह सुलतान कश्मीर के इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगा। इस प्रजावत्सल शासक ने कश्मीर में अनेक गाँव बसाये, सड़कें, पुल, कुएँ आदि बनवाये। कश्मीर की हस्तकलाओं को समुन्नत करने के लिये विदेशों से कारीगर बुलाये। जो हिन्दू उसके पिता के शासनकाल में कश्मीर से भाग गये थे, उन्हें इस शासक ने वापस बुलाया तथा विभिन्न पदों पर पुनः प्रतिष्ठित किया। साहित्य और कला से इस शासक का बेहद लगाव था। इसके दरबार में श्रीवर, सोम पण्डित, भट्टावतार, जोनराज, योधभट्ट, बाबा गुरूफ़ुद्दीन, हाफ़िज़ बगदादी, सैयद मुहम्मद मदनी, मौलवी कबीर आदि जैसे सभारत्न विद्यमान थे। कश्मीरी भाषा और साहित्य को इस शासक के राजत्वकाल में पर्याप्त प्रश्रय मिला।

सुलतान जैनउलाबद्दीन की मृत्यु के पश्चात १५५५ ई० के आसपास शाहमीरी वंश का अन्त हुआ तथा कश्मीर पर दरदिस्तान वासी चकों ने २७ वर्षों तक राज्य किया। इस बीच मुगलों ने कश्मीर पर छः बार आक्रमण किया किन्तु प्रत्येक बार शक्तिशाली चक बादशाहों ने उन्हें पराजत कर दिया। अन्ततः यूसुफ शाह चक के राज्यकाल में अकबर ने १५८५ ई० में कश्मीर को अपने अधिकार में कर ही लिया। १५८५ ई० से लेकर १७५२ ई० तक कश्मीर मुगलों के शासनाधीन रहा। कला प्रेमी मुगल शासकों ने यहाँ अनेक बाग-बगीचे, इमारतें आदि बनवाईं। निशातबाग, शालीमार, नसीम, चश्माशाही, अच्छावल, वेरीनाग आदि मुगल बादशाहों की कलाप्रियता के अनुपम नमूने हैं।

आलमगीर औरंगज़ेब के बाद जब मुगलसाम्राज्य का पतन होने लगा तो शासन की अव्यवस्था से लाभ उठाकर १७५२ ई० में काबुल के अहमदशाह अब्दाली ने कश्मीर पर आक्रमण किया और इस घाटी को मुगलों से छीन कर अफगान-शासन के अन्तर्गत कर लिया। अफगानों का राज्य ६७ वर्षों तक चला। सभी अफगान सूबेदारों ने धर्मांध नीति का अनुसरण कर असंख्य हिन्दुओं को मरवा डाला तथा अनेक मन्दिर तहस-नहस कर डाले। उन्होंने यहाँ के मुसलमानों को भी नहीं छोड़ा। इन सूबेदारों का लक्ष्य कश्मीर में लूटमार करके यहाँ की सम्पत्ति को हथियाना था। अफगानों के आतंक से तंग आकर यहाँ के हिन्दू और मुसलमान मिलकर पंजाब के तत्कालीन नरेश महाराजा रणजीतसिंह के पास सहायतार्थ गये। १८१६ ई० में कश्मीर पर लगभग पाँच सौ वर्षों के मुसलमान-शासन के पश्चात् सिख-शासन स्थापित हो गया। इस अवसर पर महाराजा के आदेशानुसार सारे लाहौर में दीप जलाये गये तथा खुशियाँ मनायी गईं। सिख-शासन १७ वर्षों तक चला। इस काल में कश्मीर की राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति काफी सुधर गई।

१८४६ ई० में डोगरा-शासक महाराजा गुलाबसिंह ने ७५ लाख रुपये देकर अंग्रेज़ों से कश्मीर को खरीद लिया। डोगरा-शासन लगभग १०० वर्षों तक चला। डोगरा शासकों में महाराजा रणबीरसिंह, प्रतापसिंह एवं हरीसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। जनता इन शासकों के राज्य में हर प्रकार से सुखी रही।

सन् १९४७ में जब देश स्वतन्त्र हुआ तो अंग्रेज़ों की कूटनीति के कारण पाकिस्तान का आविर्भाव हुआ। तथाकथित भौगोलिक एवं धार्मिक आधार देकर पाकिस्तान ने कश्मीर की घाटी को हथियाने के उद्देश्य से अपनी कबाइली-सेना भेजी। आततायियों ने निरीह व निस्सहाय जनता की निर्मम हत्या की, अनेकों घर जलाये। ऐसी विकट स्थिति में तत्कालीन कश्मीरी शासक महाराजा हरीसिंह की सेनायें बहादुरी के साथ लड़ती रहीं, किन्तु जब कबाइली-सेना श्रीनगर के काफी निकट पहुँच गई तो कश्मीर-वासियों ने भारतवर्ष के साथ अपना भाग्य जोड़ देने का निश्चय किया तथा इस आपत्काल में सहायता के लिये प्रार्थना की। उसी समय भारतीय वायु-सेना कश्मीरियों की सहायता के लिए आ गई तथा पाकिस्तानी कबाइलियों को मार भगाया गया।

वर्तमान समय में कश्मीर में प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली स्थापित है। इस शासन-प्रणाली के अन्तर्गत शेख अब्दुल्ला ने कश्मीर पर [illegible] वर्षों तक, बख्शी गुलाम मुहम्मद ने दस वर्षों तक शासन व्यवस्था को चलाया। इनके शासनकाल में कश्मीर ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की। कई योजनाएँ कार्यान्वित हुईं तथा अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे स्थापित हुए। १९६४ से कश्मीर ख्वाजा गुलाम मुहम्मद सादिक के नेतृत्व में प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

## कश्मीरी भाषा और साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कश्मीरी भाषा और साहित्य ने इस प्रदेश के विभिन्न इतिहास-कालों में अनेक उतार-चढ़ाव देखे। हिन्दूकालीन शासकों के शासनकाल में संस्कृत कश्मीरवासियों के दैनिक व्यवहार की भाषा थी। बिल्हण (१०८५ ई०) अपने महाकाव्य 'विक्रमांकदेवचरित्' में स्पष्ट रूप से लिखता है — "यत्र स्त्रीणामपि किमपरं जन्मभाषावदेव प्रत्यावासं विलसति वच संस्कृत प्राकृतम्, गृहे-गृहे [illegible] सम्प्रमाणेन, ॥ कश्मीर-भूमि ने संस्कृत के अनेक कवियों, आचार्यों एवं पण्डितों को जन्म दिया है जिनका कृतित्व सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखता है। रत्नाकर (८०० ई०) कश्मीर के प्राचीनतम संस्कृत कवि हैं। ये राजा जयापीड़ के सभापण्डित थे। इन्होंने 'हरविजय' नामक एक महाकाव्य की रचना की है। इस काव्य-रचना में भगवान शंकर द्वारा अन्धकासुर के वध का वर्णन है। ध्वनि-सम्प्रदाय के प्रवर्तक तथा ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन, 'काव्यालंकार-सूत्र' के प्रणेता वामन (८०० ई०) तथा 'काव्यालंकार-संग्रह' के लेखक उद्भट कश्मीर के ऐसे बहुमूल्य रत्न हैं जिन पर संस्कृत साहित्य को गर्व है। आनन्दवर्धन कश्मीर के नरेश अवन्तिवर्मन की सभा के पण्डित थे। इन्होंने 'देवीशतक', 'अर्जुनचरित्र' आदि काव्यकृतियों की भी रचना की है। वामन जयापीड़ के मन्त्री थे। 'काव्यालंकारसूत्र' में इन्होंने अलंकारों का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण एवं विवेचन किया है। उद्भट भी जयापीड़ की सभा के पण्डित थे। इनका अलंकार-सम्प्रदाय में विशेष योगदान है। कश्मीर के अन्य संस्कृत कवियों में बिल्हण (१०८५ ई०), कल्हण (१०६८ ई०), अभिनवगुप्त (११०० ई०) क्षेमेन्द्र (११०० ई०), मम्मट (११००) आदि उल्लेखनीय हैं। बिल्हण का 'विक्रमांकदेव-चरित', कल्हण की 'राजतरंगिणी', अभिनवगुप्त का 'तन्त्रालोक' क्षेमेन्द्र का 'महाभारत-मंजरी', 'बृहत्कथामंजरी', 'औचित्यविचार' आदि तथा मम्मट का 'काव्यप्रकाश' संस्कृत साहित्य की बहुमूल्य निधियाँ हैं। भाषा की प्रकृति के अनुसार कालांतर में संस्कृत विद्वत-समाज तक ही सीमित रह गई और प्राकृत भाषाओं ने उसका स्थान ले लिया। संस्कृत भाषा का कश्मीर में पूर्ण अधिकार था, इसका प्रमाण उपर्युक्त कवियों की रचनाओं से मिलता है। प्राकृत में लिखा कोई भी प्रामाणिक ग्रन्थ कश्मीर से उपलब्ध नहीं होता। विद्वानों के मतानुसार कश्मीरी कवियों ने केवल संस्कृत में काव्य-रचना की, प्राकृत के प्रति उनकी रुचि बहुत कम रही।[१] इस अरुचि का

---

१. 'काव्य मीमांसा' स्वामी केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पृ० २

प्रमुख कारण यह हो सकता है कि कश्मीरी कवि संस्कृत के मूल्य पर प्राकृत को अपनाने के लिए तैयार न थे और न ही तत्कालीन जनभाषा 'कश्मीरी' इतनी विकसित थी कि उसे वे साहित्य-रचना का माध्यम बनाते। कुछ समय तक कश्मीरी कवि संस्कृत मे काव्य-रचना करते रहे किन्तु बाद मे उनकी भाषा प्राकृत व अपभ्रंश के अपरिहार्य प्रभाव से अछूती न रह सकी। इस परिवर्तन-प्रभाव-काल मे पहली बार कश्मीरी कवियों का ध्यान अपनी मातृ-भाषा में काव्य-रचना करने की ओर गया।

कश्मीरी भाषा के दर्शन हमे पहली बार शितिकण्ठ की तान्त्रिक कृति 'महानय-प्रकाश' मे होते हैं।[1] श्री जियालाल किलम 'महानयप्रकाश' को कश्मीरी की प्रथम कृति मानते हैं। उनके अनुसार इस कृति की भाषा शुद्ध कश्मीरी है।[2] श्री आजाद का मत है कि 'महानयप्रकाश' की भाषा ठेठ कश्मीरी नही है। वैसे सम्भव है कि उस समय कश्मीरी का यही रूप रहा हो जो 'महानयप्रकाश' मे मिलता है।[3] श्री पृथ्वीनाथ पुष्प 'महानय-प्रकाश' को अपभ्रंश में लिखित मानते हैं। उनके अनुसार यह अपभ्रंश कश्मीरी-निष्ठ है तथा यही उस समय की 'सर्वगोचर देशभाषा' थी।[4] 'महानयप्रकाश' के प्रारम्भ में स्पष्टतया उल्लिखित है—'यथोचितरुचित रुचि सर्वगोचरया देशभाषा विरचयितुमार्हं'। ग्रन्थकार ने जिस 'देशभाषा' का प्रयोग किया है वह संस्कृत से नितान्त भिन्न, प्राकृत की अपेक्षा अपभ्रंश के अधिक निकट है। इसमे सन्देह नहीं कि 'महानयप्रकाश' की भाषा वर्तमान कश्मीरी से बहुत भिन्न है किन्तु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इस कृति का विशेष महत्त्व है।

शितिकण्ठ ने जिस 'सर्वगोचर देशभाषा' को अपना अभिव्यक्ति-माध्यम बनाया, उसे आगे चलकर लल्लद्यद ने अपने 'वाखों' में पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया। लल्लद्यद की कश्मीरी वर्तमान कश्मीरी के काफी निकट है। इनका वाक्-साहित्य कश्मीरी साहित्य की अमूल्य निधि है। कश्मीरी साहित्य का समारम्भ इसी कवयित्री से माना जाता है।

१४वीं० शताब्दी के अन्त तक कश्मीर मे इस्लाम-धर्म की नींव दृढ़तर हो चुकी थी। साधारण जनजीवन तथा लोगों की चिन्तन-प्रक्रिया पर इस धर्म ने पर्याप्त

---

१. जार्ज बूलहर ने लाहोर संग्रहालय में मिले एक ऐसे शिलालेख का उल्लेख किया है जो उनके अनुसार कश्मीरी भाषा में लिखा गया है। इस शिलालेख पर कश्मीर की शासिका रानी दिद्दा (९८० ई०–१००४ ई०) का फरमान अंकित है। प्रो० पुष्प ने बूलहर साहब के मत का खण्डन करते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि यह आलेख कश्मीरी में नहीं वरन् संस्कृत मे लिखा गया है और यह संस्कृत शारदा लिपि मे लिखी गई है। 'कश्मीरी जबान और शायरी' अब्दुल-अहद आजाद, भाग १, पृ० ४२।

२. 'लिट्रेचर इन माडर्न इण्डियन लैंग्वेजज' पृ० ६६।

३. कश्मीरी जबान और शायरी, भाग १, पृ० ३६।

४. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० २३१ (भाग १)
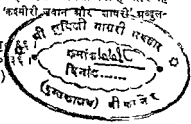
भाषा मे प्रभाव डाल दिया था। कश्मीरी भाषा और साहित्य भी इस प्रभाव से अछूते न रह सके। फारसी भाषा उत्तरोत्तर जोर पकड़ने लग गई तथा अनेकों फारसी शब्द कश्मीरी में घुलमिल गये। पहले कश्मीरी संस्कृत-निष्ठ थी अब वह फारसी-निष्ठ हो गई। इसी काल में नूरुद्दीन वली ने भक्ति एव ज्ञान की अनुपम स्वर-धारा बहायी जिससे सदाचार तथा भावात्मक एकता के बोल गूंज उठे। नूरुद्दीन वली 'ऋषि सम्प्रदाय' के प्रवर्तक कवि थे। इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध सूफी मत से था। कहते हैं कि प्रसिद्ध सूफी सत सैयदअली हमदानी जब कश्मीर आये तो उनके संग ७०० मुरीद भी यहाँ पधारे। ये लोग बाद मे यहीं बस गये तथा 'ऋषि' या 'बाबा' कहलाने लगे। इन 'ऋषियो' के कई प्रतिष्ठान अब भी कश्मीर में मिलते हैं।

शाहमीरी शासकों के राजत्वकाल में फारसी भाषा खूब पनपी तथा उसने राज-भाषा का पद भी प्राप्त कर लिया। "शाहमीरियों की हुकूमत के आगाज से फारसी की तहरीक और बढ़ी और यह दफ्तरी जबान बन गई। हर खानकाह, जियारत और मस्जिद पहले ही से एक मदरसा भी थी। अब कुछ शाही मदरसे वगैरह भी खुल गये। कश्मीर की इल्मी दुनिया में सूरतहाल यह थी कि संस्कृत मग्रसूस तबकों तक महदूद हुई और फारसी अदब और इल्म का सूरज गरीब किसानों और मजदूरों की झ[illegible] झोपड़ियों मे भी चमकने लगा।......इस दौर मे मुकामी शायरों ने कश्मी[illegible] मजहबी नज्मे जरूर लिखी होंगी लेकिन यह सरमाया ज्यादातर जाया हो चुका और हमें सिर्फ लल्लअद का कलाम मिलता है या फिर नूरुद्दीन वली का कलाम[illegible]

शाहमीरी वंश के अन्तिम उल्लेखनीय सुलतान जैनउलाबद्दीन 'बड़[illegible] (१४२०-१४७० ई०) के राज्यकाल में कश्मीरी भाषा और साहित्य का सर्वा[illegible] विकास हुआ। इस काल में कश्मीरी भाषा और साहित्य ने अपना एक स्थिर [illegible] व्यवस्थित रूप स्थापित कर लिया। कश्मीरी भाषा को पहली बार राजकीय संर[illegible] मिला। कश्मीरी भाषा में लिखी कई पुस्तकों का फारसी में अनुवाद हुआ[illegible] संस्कृत व फारसी की कुछ पुस्तकों का कश्मीरी में अनुवाद हुआ। कश्मीरी व[illegible] नूरउद्दीन वली के सम्पूर्ण कलाम का अनुवाद स्वयं सुलतान ने उस समय के प्र[illegible] विद्वान् मुल्ला अहमद से करवाया। मुल्ला अहमद फारसी, संस्कृत तथा कश्मी[illegible] भाषाओं के ज्ञाता थे। इनके अतिरिक्त सोम पण्डित ने 'जैनचरित', योधभट्ट 'जैनप्रकाश' तथा भट्टावतार ने 'बाणासुरवध' व 'जैनविलास' आदि की कश्मीरी रचना की। 'बड़शाह' के ही राज्यकाल में पहली बार लिखाई आदि विधिवत् का[illegible] पर होने लगी। कागजसाजी को बढ़ावा देने के लिए इस विद्याप्रेमी सुलतान ने विदे[illegible] से अनेक कुशल कागजसाज बुलवाये और उन्हें अपनी राजधानी नौशहरा में बसाया इससे पूर्व पुस्तकें भोजपत्र पर लिखी जाती थीं। कागजसाजी की इस सुविधा कश्मीरियों में साहित्यिक रुचि का यथेष्ट विकास हुआ[2]।

---

१. कश्मीरी जबान और शायरी, भाग २, भूमिका से पृ० ४७
२. वही पृ० ५१

शाहमीरियों के पश्चात् कश्मीर पर चकों का आधिपत्य रहा। यह शासन राजनैतिक अस्थिरता के कारण कश्मीरी साहित्य पर कोई विशेष प्रभाव न डाल सका। यद्यपि इस काल की प्रसिद्ध कवयित्री हब्बाखातून व अरणिमाल को कश्मीरी साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है, किन्तु कश्मीरी को जो प्रोत्साहन शाहमीरी वंश के शासकों की ओर से मिला था वह चक बादशाह न दे सके। चकों के शासनकाल में फारसी ने अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित कर लिया।

चकों के बाद कश्मीर-घाटी मुगलों के अधिकार में चली गई। मुगल बादशाह अधिकतर दिल्ली में रहते तथा यहाँ की शासन-व्यवस्था को चलाने के लिए सूबेदारों को नियत कर देते। जब कभी वे कश्मीर आते तो उनका मुख्य उद्देश्य सैर-सपाटा करना होता। ऐसी स्थिति में कश्मीर की साहित्यिक गतिविधियों से उनका सम्पर्क बहुत कम रहा तथा कश्मीरी भाषा उचित प्रोत्साहन के अभाव में पूर्ववत् फारसी के प्रभाव से दबती रही। (वर्तमान कश्मीरी भाषा में ऐसे अनेक फारसी-शब्द प्रचलित हैं जो अब भी कश्मीरी में अपने मूल रूप में या तनिक परिवर्तन के साथ प्रयुक्त होते हैं, जैसे—माशूक, दिलबर, यार, रकीब, दोस्त, सितमगर, मशहिद, देवता, हसीन, पाक-दामन, आफताब, गुल, नूर, हूर, खूबसूरत, आशिक, शैदा, फिदा, दीवाना, जुल्फ, कमर, रुखसार, चश्म, दीदार, गुलजार, शौक, जोश, दर्द, सोज, नकाब, ख्वाब, जुल्फ, शबाब, शराब, साज, राज, नाज अन्दाज, नाराज, मजबूर, आईना, कद्र, खंजर, आमदनी, जख्म, ताज, जेवर, आतिश, जोश, चश्म, बाग, चमन, इन्साफ, कोह, जलवा, होश, बीमार, इन्तजार, फरियाद, वायदा, बदन, बादाम, नसीहत, खुदा, जिगर, बेमुरव्वत, हकीम, मर्द, हिम्मत, दरबार, खबर, राह, सुबह, सलाम, जंगल, शिकार, सवाल, अगर, मुल्क, सुलतान, दरवेश, जमीन, खिदमत, मजाल, फुरसत, गनीमत, रहमत, नजर, रहम, उस्ताद, दलील, जहाँ, रक्स, परेशान, दुश्मन, चिराग, बेखबर, हाल, माल, लाजिम हाकिम, मुलाजिम, दरगाह, निगाह, खरीदार, तमाशा, शक्ल, मुरीद, मिजाज, आब, बेताब, जवाब, शबाब, शराब, खून, सवाब, जिन्दा, याद, सितम, गुल, मीना, खत, जहर, जमाल, मलाल, बादशाह, कमाल, अन्दाज, जंजीर, खजाना, खरबूजा, खराब, बारीक आदि।

मुगलों के अनन्तर कश्मीर में क्रमशः पठान एवं सिख-राज्य स्थापित हुआ। पठान-शासन का मुख्य लक्ष्य कश्मीर की धनसम्पत्ति को लूटना था। जो भी गवर्नर यहाँ आता वही असंख्य धनराशि लूटकर चला जाता। जनकल्याण के प्रति उनका ध्यान तनिक भी न गया। ऐसी स्थिति में कश्मीरी साहित्य उचित दिशा-निर्देश के अभाव में विकसित न हो सका। सिख-शासन की दरबारी भाषा पंजाबी तथा सरकारी भाषा फारसी थी।[1] कश्मीरी भाषा के उत्थान में सिख-शासकों ने भी कोई विशेष रुचि न ली। इस काल में अनेक पंजाबी शब्द कश्मीरी में घुल-मिल गये।

डोगरा-शासन-काल में कश्मीरी भाषा और साहित्य का यथेष्ट विकास हुआ। जनता अपनी मातृभाषा की ओर प्रवृत्त हुई तथा फारसी के स्थान पर अब कश्मीरी में

१ सोन अदब, १९६३, डा० हाजिनी पृ० ६६

विधायें भी जाने लगी। कश्मीरी की विभिन्न काव्य-विधाओं-यथा, मसनवी, गजल,
ोत, 'लोल बाल' आदि का विकास इसी काल में हुआ।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में एक नई चेतना
व वैचारिक क्रान्ति आ गई, ठीक उसी प्रकार कश्मीरी साहित्य में भी नूतन साहित्यिक
रिवर्तनों का उन्मेष मिलता है। नाटक, उपन्यास कहानी, छन्दमुक्त कविता आदि
ाहित्यिक-विधाओं का विकास हुआ तथा कश्मीरी भाषा और साहित्य ने उन विधाओं में
अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया।

## श्मीरी भाषा उद्गम और विकास

*कश्मीर को कश्मीरी भाषा में 'कशीर' तथा इस भाषा को 'कोशुर' कहते हैं।*
ारत के संविधान में जिन प्रादेशिक भाषाओं को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गई है,
नमें कश्मीरी[1] भी एक है। इस भाषा के बोलने वाले कश्मीर घाटी, किश्तवाड़,
ामबन, रियासी आदि के निवासी हैं। वैसे, कश्मीरी का शुद्ध अथवा साधु रूप कश्मीर
ाटी में ही प्रचलित है। शेष क्षेत्रों में इस भाषा की उपबोलियाँ बोली जाती हैं ज
ाड़ी बोलियों से प्रभावित होने के कारण साधु या परिनिष्ठित कश्मीरी से नितान्त
न्न हैं। इन पहाड़ी बोलियों में उल्लेखनीय हैं—किश्तवाड़ी, सिराजी, पुगुली
ामबनी तथा रियासी की बोलियाँ। आज़ाद ने कश्मीरी को एक करोड़ व्यक्तियों की
ाषा माना है।[2] श्री पृथ्वीनाथ पुष्प का मत है कि यह कुल मिलाकर ५०,०००
ाक्तियों की मातृभाषा है। ग्रियर्सन महोदय ने सन् १९११ की जनगणना के आधार
र कश्मीरी तथा उसकी उपबोलियों के बोलने वालों की संख्या इस प्रकार निर्धारित
ी है[3]—

| | |
|---|---|
| १—परिनिष्ठित कश्मीरी | १०३९९९४ |
| २—किश्तवाड़ी | ७४६४ |
| ३—पुगुली | ८१५८ |
| ४—सिराजी | १४७३२ |
| ५—रामबनी | २१७४ |
| ६—रियासी की बोलियाँ | २०२५२ |
| | १,०९२,७४४ |

१९६१ की जनगणना के अनुसार कश्मीरी भाषियों की कुल संख्या

इस भाषा के लिये 'कश्मीरी' नाम का उल्लेख सर्वप्रथम अमीर खुसरो की तेरहवीं शती की पुस्तक 'नुहसिपिह्न' में मिलता है। जहाँ इसे सिन्धी, लाहौरी, तिलंगी आदि के साथ परिगणित किया गया है। 'हिन्दी साहित्य-कोश' भाग १, पृ० २३१

आज़ाद की मान्यता किन सूचनाओं एवं तथ्यों पर आधारित है, स्पष्ट नहीं है।

लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' भाग दो, खण्ड आठ, पृ० २३४

१६३७८१७ थी।[1] १९७१ तक यह संख्या १६५६११५ तक पहुँच चुकी है।

कश्मीरी भाषा का क्षेत्र कश्मीर की घाटी तथा उसके दक्षिण-पूर्व की निकटवर्ती उपत्यकायें हैं। दक्षिण-पूर्व में इस भाषा का किश्तवाड़ तक, दक्षिण में हुवलवेरीनाग से लकेर पीर-पंचाल के उस पार तक, उत्तर में द्रावा और श्रोड़ी तक, पूर्व में पहलगांव तथा दक्षिण-पश्चिम में शोपियान, तक फैला हुआ है।[2]

कश्मीरी भाषा किस भाषाकुल से सम्बन्ध रखती है, इस पर किन-किन भाषाओं का प्रभाव है, इसका विकास कहाँ से हुआ है आदि प्रश्न विद्वानों के बीच विवाद का विषय बने हुए हैं। कश्मीरी भाषा के उद्गम और विकास के सम्बन्ध में जो प्रधान मान्यतायें हैं, वे इस प्रकार हैं—

१. कश्मीरी दरद परिवार की भाषा है।

२. कश्मीरी भारतीय आर्य परिवार की भाषाओं में संस्कृत से उद्भूत है।

३. कश्मीरी इब्रानी अथवा हिब्रू की संतति है, और

४. कश्मीरी पैशाची का एक विकसित रूप है।

उक्त मान्यताओं के विद्वानों ने विभिन्न तर्क देकर अपने मतों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है।

कश्मीरी का उद्गम दरद-परिवार की भाषाओं से मानने वाले विद्वानों में ग्रियर्सन, ज्यूल ब्लाख, ग्राहम बेली, टर्नर, अब्दुल अहद आजाद आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सर जार्ज ग्रियर्सन ने कश्मीरी भाषा के उद्गम व विकास पर जो टिप्पणियाँ दी हैं। वे इस प्रकार हैं—शब्द 'कश्मीरी' संस्कृत के 'कसमीरिका' से व्युत्पन्न है। कश्मीर-वासी अपनी भाषा को कश्मीरी न कहकर 'काशुर' कहते हैं जिससे सिद्ध होता है कि कश्मीरी दरद-परिवार की भाषा है क्योंकि आर्यकुल की भाषाओं में, 'सम' का 'श' में परिवर्तित होना नितान्त असम्भव है।……कश्मीरी दरद-परिवार की भाषा है तथा 'शीना' से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। शताब्दियों से इस पर भारतीय भाषाओं का विशेषकर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप अनेक भारतीय शब्द इसमें घुलमिल गए। अतः यहाँ के निवासी इसे संस्कृत से उद्भूत मानते हैं। किन्तु सूक्ष्म परीक्षण के अनन्तर ज्ञात होता है कि यह धारणा निराधार है।[3] ग्राहम बेली के

१. जनगणना रिपोर्ट, १९६१, भाग २, सी, खण्ड ६, पृ० २१२ (भारत सरकार द्वारा प्रकाशित)

२. आजाद के अनुसार कश्मीरी भाषा का क्षेत्र १५० मील लम्बाई में तथा ५० मील चौड़ाई में फैला हुआ है। 'कश्मीरी जबान और शायरी' भाग १, पृ० ६

3. The word 'Kashmiri' is Persian or Hindi, and is derived from the Sanskrit 'Kasmirika' It is not the name used by the people of Kasmir itself There the country is called 'Kashir' (कशीर) and the language Koshir. The word itself is an excellent example of the fact that the language belongs to the

मतानुसार शीना की भाँति कश्मीरी भी दरद-परिवार की एक भाषा है।[१] आजाद के अनुसार कश्मीरी जबान संस्कृत जबान से नहीं निकली। इसकी हैसियत एक अलग जबान की है। इसकी बुनियाद दरदी जबान है और शीना जबान की एक शाख है।[२]

कश्मीरी भाषा को आर्यकुल की भाषाओं में संस्कृत की संतति मानने वाले विद्वानों में डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पं० शालिग्राम कौल, बूह्लर साहब आदि प्रमुख है। श्री चाटुर्ज्या के अनुसार कश्मीरी पर प्राचीनकाल से ही संस्कृत का प्रभाव रहा है तथा इस दृष्टि से वह शीना या काफिरी भाषाओं से भिन्न है[३]। प० शालिग्राम कौल का मत है कि जिस प्रकार समस्त भारतीय भाषायें आर्य-परिवार से सम्बद्ध हैं, उसी प्रकार कश्मीरी भाषा भी आर्यकुल की प्रमुख भाषा संस्कृत से जन्मी है।[४] बूह्लर साहब कश्मीरी के उद्गम के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह भाषा संस्कृत से निकली है। यद्यपि अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में इसमें कुछ विशेष अन्तर देखने को मिलता है तथापि उस पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट है[५]।

कश्मीरी भाषा पर इब्रानी का प्रभाव मानने वाले विद्वान अपने पक्ष में जो तर्क देते हैं, वे इस प्रकार है—

१. कुछ इतिहासकारों का मत है कि जब सिकन्दर ने पंजाब पर आक्रमण किया तो उस समय कश्मीर के कुछ भाग यूनानियों के अधीन हो गये। इन यूनानियों के संग कुछ यहूदी भी थे जो कश्मीर मे बस गए। इनकी भाषा का तत्कालीन कश्मीरी भाषा पर विशेष प्रभाव पड़ा।

---

Dardic Sub-family, for in India the change of Sm to Sh would be impossible······Kashmiri belongs to the Dard group of the Dardic languages. It is most nearly related to Shina. It has, for many centuries been subject to Indian influence and its vocabulary includes a large number of words derived from India. Its speakers hence maintain that it is of Sanskrit origin, but a close examination reveals the fact that······*this* claim of Sanskrit cannot be sustained' *Linguistic* 'Survey of India part 2, vd VIII P. 255.

१. Gammar of Shina Language (Preface)

२. 'कश्मीरी जबान और शायरी' पृ० १०

३. 'कश्मीर' खण्ड चार, पृ० ७५

४. "Kashmiri language like all other Indian tounges belonging to the Indo-Aryan family, is mostly derived from Sanskrit" The first Kashmiri reader' (1908) preface.

५. कश्मीरी जबान और शायरी, आजाद, पृ० १८, भाग १

२. प्राय: कश्मीरी नामों के पीछे 'जू' लगाने की परंपरा है । जैसे, रामजू, हरजू, गूँदजू, रहमानजू, रमजानजू, शाहवानजू आदि । यह शब्द 'जिव' का ही विकृत रूप है।

३. प्राचीनकाल में श्याम देश से कुछ यहूदी कश्मीर में आकर बस गए। इनकी भाषा इब्रानी थी जिसका प्रभाव तत्कालीन कश्मीरी पर पड़ा । उन्होंने इस घाटी के प्राकृतिक सौंदर्य को अपने देश श्याम के समान पाकर इसका नाम 'काशीर' रखा जिसका अर्थ है—श्याम की भाँति । 'का' का शाब्दिक अर्थ है 'भाँति' तथा 'शीर' का अर्थ है श्याम देश । 'कशीर' शब्द 'काशीर' का ही विकसित रूप है ।

४. लाहौर से प्रकाशित 'क्राइस्ट हेवन आन अर्थ' के लेखक ख्वाजा नज़ीर अहमद के अनुसार कश्मीर में यहूदियों का आगमन हज़रत मूसा के समय से लेकर हज़रत ईसा के समय तक हुआ था । यहूदियों का प्रभाव यहाँ की भाषा और संस्कृति पर विशेष रूप से पड़ा है[1] ।

५. कश्मीरी भाषा में ऐसे अनेक शब्द मिलते हैं जो इब्रानी के हैं तथा कश्मीरी में अब भी अपने मूल रूप में या तनिक परिवर्तन के साथ व्यवहृत होते हैं जैसे—

| इब्रानी | कश्मीरी | अर्थ |
|---|---|---|
| अोन | अोन | अन्धा |
| अतर | अतुर | कुकर्म |
| अक्बूर | अपूर | कुर्मा |
| अकर | अकर | तराज |
| सोल | सोल | प्रेम |
| शाम | शाश | श्वास |
| अतम | यितम | आओ |
| नह | नि | ले जाओ |
| नवम | नसम | समीप |
| अज | अज | आज |
| मानून | मालून | मायका |
| नवत | नवहत | नफरत |
| हून | हून | कुत्ता |
| तोक | थोक | थूक |
| आम | अस | एक |
| आमीत | आलुच | आलस्य |

कश्मीरी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ श्री पृथ्वीनाथ पुष्प कश्मीरी को पैशाची का विकसित रूप मानते हैं । उनके अनुसार, सम्भवतः कश्मीरी का उद्गम वह

---

१. 'कोन अदब' १९६३, पृ० ६१

पैशाची है जो कभी उत्तर पश्चिम में प्रचलित थी, जिसे *ब्राह्मण-ग्रंथों में उदीच्य कहा गया है।*[1]

कश्मीरी भाषा के उद्गम पर विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मान्यताओं का परीक्षण अपेक्षित है।

'दरद' का अर्थ होता है पर्वत। पंजाब के पश्चिमोत्तर तथा पामीर के पूर्व-दक्षिण में जो पर्वतीय प्रदेश है, वह दरद भाषाओं का क्षेत्र माना जाता है। इसे *पिशाच-देश भी कहा जाता है और यहां की भाषा को पिशाची या भूत भाषा।*[2] भारत में जो आर्य मध्य एशिया से आए वे दो मार्गों से प्रविष्ट हुए—एक हिन्दूकश के पश्चिम से काबुल के मार्ग से और दूसरे वक्षु (आक्सस) नदी के उद्गम स्थान से सीधे दक्षिण के दुर्गम पर्वतों को पार करके। दूसरे *मार्ग से आने वाले कुछ आर्य हिमालय के पहाड़ी* प्रदेश में रह गए होंगे। यही भाग दरदिस्तान कहलाया और यहां की भाषा दरदी। इस भाषा पर संस्कृत का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि संस्कृत भाषा का *संस्कार तो भारत में आने पर हुआ था।*[3] दरद *भाषाओं के तीन मुख्य समूह निर्धारित* किये गये हैं—

१. पश्चिम में काफिरी जिसका कोई साहित्य नहीं है।

२. केन्द्रीय भाग में खोवारी जिसका क्षेत्र ईरान और दरदिस्तान के मध्य में है, इसकी अनेक प्रमुख बोलियों में चित्राली प्रधान है।

३. उत्तर पूर्व में *शीना, कश्मीरी और कोहिस्तानी।*

दरद वर्ग की भाषाओं में शीना प्रमुख है। इसका व्यवहार गिलगित की घाटी में होता है। विद्वानों के अनुसार इसी शीना से कश्मीरी का उद्भव हुआ है। दरद भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

दरद भाषाएं
- काफिरी
- खोवारी, चित्राली
- (तीसरी शाखा)
  - शीना
  - कश्मीरी
  - कोहिस्तानी
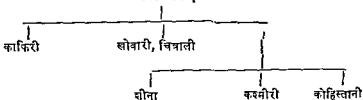
कश्मीरी को दरद-परिवार की भाषा घोषित करने वाले विद्वान अपने पक्ष में जो तर्क देते हैं उनसे इस बात की पुष्टि बहुत कम हो पाती है कि कश्मीरी दरद भाषाओं की संतति है। ग्रियर्सन ने 'भाषासर्वेक्षण' में अपने मत की पुष्टि में जो दरदी-भाषा के शब्द दिये हैं उनसे यह बात सिद्ध नहीं होती कि कश्मीरी दरद-परिवार की

१. चतुर्दश भाषा निबन्धावली, १९६७ पृ० १२४
२. *'हिन्दी उद्भव, विकास और रूप' डा० हरदेव बाहरी, पृ० १४, १९६५*
३. *'सरल भाषा विज्ञान', डा० मनमोहन गौतम, पृ० १५०*

भाषा है। ग्रियर्सन ने शीना और कश्मीरी के जो तुलनात्मक रूप-चित्र दिये हैं, उनमें इतना मौलिक साम्य नहीं कि कश्मीरी को भारत-आर्य परिवार से बाहर माना जाय।[1] कश्मीरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रमुखतया संश्लिष्ट है तथा क्रिया पदों में यह प्रकृति विशेष रूप से मिलती है। दरद-भाषाओं में यह प्रवृत्ति नहीं मिलती।[2] एक कश्मीरी क्रिया-पद के पुरुष, वचन, लिंग तथा काल की स्थिति के अनुसार जो विभिन्न रूप बनते हैं, वे इस प्रकार हैं—

'हावुन' दिखाना के विभिन्न रूप

| | |
|---|---|
| १. होवथस | तुम ने दिखाया उसको |
| २. हावथस | तुम ने दिखाई उसको |
| ३. हाव्यथस | तुम ने दिखाये उसको |
| ४. होवथम | तुम ने दिखाया मुझ को |
| ५. होवनम | उस ने दिखाया मुझ को |
| ६. होवनस | उस ने दिखाया उसे |
| ७. होवमस | मैं ने दिखाया उसे |
| ८. होवमय | मैं ने दिखाया तुम्हें |
| ९. होववोस | तुम सब ने दिखाया उसको |
| १०. हावथख | तुम ने दिखाई उनको |
| ११. हाव्यख | वह दिखायेगा उन्हें |
| १२. होवनख | उस ने दिखाया उन्हें |
| १३. हावोस | हम दिखायेंगे उसे |
| १४. हावोख | हम दिखायेंगे उन्हें आदि। |

उक्त क्रियापद अपने आप में पुरुष, लिंग, वचन तथा काल का स्पर्श लिये हुए हैं। कश्मीरी पद रचना की इस विशिष्टता के आधार पर इस भाषा को दरद-परिवार के अन्तर्गत मान लेने में संकोच होता है क्योंकि दरद-परिवार की भाषाओं में क्रिया पदों की संश्लिष्टता नहीं मिलती।[3]

कश्मीरी में सघोष व्यंजनों[4] का व्यवहार नहीं होता अतः इस कारण से भी विद्वान् इसे दरद-परिवार की संतति बताते हैं। किन्तु यह विशेषता दरदी भाषाओं के अलावा सिन्धी, डोगरी, पंजाबी आदि में भी मिलती है। इसलिए ध्वनि-साम्य के आधार पर इस भाषा को दरद-परिवार के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

भाषा-विज्ञान के नियमानुसार प्रत्येक भाषा अपनी निकटवर्ती सीमाओं में

१. 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग १, पृ० २३१
२. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', पृ० १२४
३. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली', पृ० १२४
४. कश्मीरी में घ, झ, ढ, ध, भ, आदि घोष महाप्राण व्यंजनों का प्रयोग प्रायः नहीं होता।

प्रचलित भाषाओं से प्रभावित रही है। अनेक शब्द सिक्कों की भाँति इधर-से-उधर हो जाते हैं। वाक्यविन्यास, पदविन्यास, पद रचना आदि में भी इस प्रभाव द्वारा परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यही कारण है कि कश्मीरी पर दरद भाषाओं का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इस सन्दर्भ में प्रो० अरनेस्ट कोट्न की यह महत्त्वपूर्ण टिप्पणी उद्धृत की जाती है—'कश्मीरी भाषा प्रारम्भ में दरदी भाषाओं से प्रभावित रही, तदनन्तर इस पर संस्कृत का अपरिहार्य प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव के कारण संस्कृत के अनेक शब्द कश्मीरी में प्रविष्ट हुए। अनेक कश्मीरी शब्द अपना वास्तविक रूप खोकर विकृत हो गये, अनेक का अर्थ-परिवर्तन हो गया आदि। किन्तु दरदी का व्याकरणगत प्रभाव अभी भी कश्मीरी में विद्यमान है। वस्तुतः यह प्रभाव इतना गहन है कि कश्मीरी भाषा से दरद शब्दों एवं प्रयोगों का पृथक्करण कठिन है।'[1]

जो विद्वान् कश्मीरी का उद्गम संस्कृत से मानते हैं वे सम्भवतः इस भाषा के वर्तमान रूप व उसकी शब्दावली को देख कर ही ऐसी धारणा बना लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान कश्मीरी भाषा में लगभग अस्सी प्रतिशत शब्द संस्कृत से उद्भूत हैं। कश्मीरी संख्यावाची, शारीरिक अंगों सम्बन्धी, ललित कला सम्बन्धी, पशु-पक्षियों सम्बन्धी, मास व वार सम्बन्धी शब्द संस्कृत के इतने निकट हैं कि प्रायः कश्मीरी को संस्कृत की सन्तति समझ लिया जाता है। किन्तु शब्द-साम्य के आधार पर ही कश्मीरी को संस्कृत-प्रसूता नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस प्रकार का शब्द-साम्य भारोपीय परिवार की अन्य भाषाओं में भी मिलता है। वर्तमान कश्मीरी में मिलने वाले कुछ संस्कृत के शब्दों की सूची दी जाती है जो या तो अपने मूल रूप में प्रयुक्त होते हैं या उन्हें किंचित् परिवर्तन के साथ उच्चारित किया जाता है—

| संस्कृत | कश्मीरी | अर्थ |
|---|---|---|
| मद | मद | मद, दर्प |
| लक्ष | लछ | लाख |
| अक्ष | अछ | आंख |
| मक्ष, मक्षिका | मछ | मक्खी |
| द्राक्ष | दछ | अंगूर |
| शरद् | हरुद | शरद |
| अक्षर | अछर | अक्षर |
| चन्द्र | चन्द्र | चांद |
| चौर | चूर | चोर |
| भिक्षुक | बेछु | भिखारी |
| पक्ष | पछ | अर्द्धमास |
| वक्ष | वछ | छाती |

[1] ...तीन अदब', १९६३, पृ० ५९।

| | | |
|---|---|---|
| गच्छति | गाछान | जाता है |
| सप्त | सथ | सात |
| हस्त | अथु | हाथ |
| श्वशुर | ह्टिर | ससुर |
| शत | हथ | सो |
| पशु | पोश | पशु |
| वायु | वाव | हवा |
| गौ | गाव | गाय |
| सर्प | सरुफ | साप |
| शृगाल | शाल | गीदड |
| कृमि | क्योम | कीडा |
| काक | काव | कौआ |
| त्रि | त्रे | तीन |
| पच | पांछ | पांच |
| सहस्र | साम | हजार |
| षष्ट | शे | छ |
| अष्ट | आठ | आठ |
| नव | नोंव | नया |
| पुत्र | पोथुर | पुत्र |
| भ्रातृ | बोय | भाई |
| मातृ | माज | माता |
| ताप | ताव | ताप |
| नाम | नाव | नाम |
| भगिनी | बेनि | बहिन |
| जामातृ | जामतुर | जामाता |
| छाया | छाय | छाया |
| शस्त्रकम् | शस्त्र | लोहा |
| सूर्य | सिरी | सूर्य |
| पोथी | पूथ्य | पोथी |
| भगवान | भगवान | भगवान |
| गुरु | गोर | गुरु |
| हत्या | हत्ये, हत्या | हत्या |
| नमस्कार | नमस्कार | नमस्कार |
| पंकपुष्प | पम्पोश | कमल |
| पृथ्वी | पोथुर | पृथ्वी |

| | | |
|---|---|---|
| रुष्यति | रोशुन | रूठना |
| लिखिति | लेखुन | लिखना |
| मथति | मथुन | मथना |
| पूरयति | पूरन | पूरना |
| जल | जल | जल |
| जालम् | जाल | जाल |
| नासिका | नस | नाक |
| कर्ण | कन | कान |
| ओष्ठ | वुठ | होंठ |
| दन्त | दन्द | दांत |
| जिह्वा | ज्यव | जीभ |
| दुग्ध | दोद | दूध |
| अमावस्या | मावस | अमावस्या |
| पूर्णिमा | पुनिम | पूनम |
| उत्थान | वोथुन | उठना |

कश्मीर प्राचीनकाल में धर्म-दर्शन तथा विद्या-बुद्धि का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। सभी साहित्यिक गतिविधियाँ संस्कृत भाषा में होती थीं। शैव-दर्शन के क्षेत्र में भी यहाँ संस्कृत का ही अधिक प्रयोग किया गया। अतः इस भाषा का कश्मीरी पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। यह प्रभाव आज भी शिक्षित कश्मीरी ब्राह्मणों की बोली में झलकता है।[1] वस्तुतः प्रभावमात्र से इस भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से नहीं मानी जा सकती।

कश्मीरी को इब्रानी (हिब्रू) की सन्तति मानने वाली तीसरी विचारधारा कई दृष्टियों से दोषपूर्ण है। कश्मीर में यहूदियों का आगमन कब और कैसे हुआ, इसके लिए कोई प्रामाणिक जानकारी हमारे पास नहीं है। सिकन्दर के साथ आये यहूदियों के कश्मीर में बस जाने की बात भी इतिहास द्वारा पुष्ट नहीं होती। जहाँ तक 'जू' शब्द का प्रश्न है, यह शब्द संस्कृत के 'जीव' का विकसित रूप है। यह 'जू' शब्द केवल कश्मीरी में ही प्रयुक्त नहीं होता। महाकवि सूरदास की ब्रज भाषा में अनेक बार 'हरिजू' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। हिन्दी का 'जी' शब्द भी इस 'जू' शब्द का समकक्ष शब्द है।[2] इसी प्रकार 'काशीर' वाली बात भी उचित नहीं ठहरती क्योंकि 'कशीर' शब्द की व्युत्पत्ति 'कश्मीर' से भी सम्भव है।[3] जहाँ तक

---

१. कश्मीरी भाषा : उद्गम एवं विकास, डा० जवाहरलाल हण्डू, 'त्रैमासिक भाषा' सितम्बर १९७० पृ० २९

२. 'शीराजा' अक्तूबर १९६६, पृ० १३, 'कश्मीरी भाषा' बर्जिनाथ पण्डित।

३. 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है।

कश्मीरी में व्यवहृत कुछ इब्रानी शब्दों का प्रश्न है उनमें से अधिकांश शब्द संस्कृत के या संस्कृत से प्रभावित भी मान लिये जा सकते हैं। जैसे—

| इब्रानी | संस्कृत | कश्मीरी |
|---|---|---|
| ग्रामील | ग्रालस्य | ग्रालुच् |
| दास | श्वास | दाश |
| ग्राख | एक | ग्रख |
| क्रूर | कूप | क्रूर |
| नह् | णो | नि |
| हुन | श्वान | हुन |
| योत | यौवन | यावुन |
| दह् | धूम्र | दुहँ |

ऐसी स्थिति में कश्मीरी को इब्रानी की संतति ठहराना युक्तियुक्त नहीं है।

कश्मीरी का उद्गम पैशाची से हुआ है, प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प की यह मान्यता कई दृष्टियों से विचारणीय है। पैशाची को पिशाचों की भाषा कहा गया है। पश्चिमोत्तर प्रदेश में रहने वाले वे अनार्य पिशाच कहलाते थे जिन्होंने आर्य-संस्कृति को पूर्णरूप से अपनाया नहीं था। कहा जाता है कि जिस समय कश्यप ऋषि की कृपा से वर्तमान कश्मीर का पानी निकाला गया उस समय आस-पास की पहाड़ियों पर रहने वाली कई जातियों के लोग यहाँ आकर बस गये। 'ये जातियाँ अनार्य थीं। इनमें नाग, यक्ष, पिशाच आदि प्रसिद्ध थी।'[1] उस समय यहाँ कि भाषा पैशाची रही होगी—ऐसा सम्भव है। एक अन्य धारणा के अनुसार पिशाच मूलतः आर्य ही थे। जिस समय आर्य उत्तर-पश्चिम सीमा से भारत में प्रविष्ट हुये उस समय कुछ आर्य तो हिन्दूकुश, कपिशा, कफरिस्तान, गन्धार, चित्राल, कश्मीर के उत्तर तथा पामीर के दक्षिण में बिखर गये तथा कुछ नीचे उतर कर सिन्धु-घाटी में व्यवस्थित हो गये। पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले आर्य पिशाच कहलाये जिन्हें बाद में अनार्य कहा गया क्योंकि अनेकों वर्षों तक विच्छिन्न रहने के कारण वे आर्य-संस्कृति को आत्मसात् नहीं कर पाये थे। जिस समय पिशाच कश्मीर में प्रविष्ट हुए उस समय यहाँ नागों का निवास था। नागों ने पिशाचों का विरोध नहीं किया। वे पिशाचों के साथ पूर्ण सामंजस्य स्थापित करके रहने लगे। 'नीलमत' का उद्भव यहीं पर होता है। उस समय यहाँ की भाषा पैशाची रही होगी। इस भाषा में लिखी मात्र गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' का उल्लेख मिलता है। दुर्भाग्यवश यह कृति काल-कवलित हो गई है, केवल उसके संस्कृत रूपांतर इस समय उपलब्ध हैं। यदि इस कृति का मूल पाठ सुरक्षित होता तो कश्मीरी भाषा के उद्गम की समस्या को सुलझाने में पर्याप्त सहायता मिल जाती। पुष्पजी इसी पैशाची से वर्तमान कश्मीरी का उद्गम मानते हैं जो १३वीं शती में अपभ्रंश के अपरिहार्य प्रभाव को आत्मसात् कर

---

१. 'संतूर के स्वर' चमनलाल सपरू, पृ० १६

विकसित हुई। शितिकण्ठ के 'महानयप्रकाश' में कश्मीरी-अपभ्रंश के नमूने देखने को मिलते हैं।[1]

## निष्कर्ष—

प्रारम्भिक अवस्था में कश्मीरी भाषा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व था। उसे पैशाची या दरदी[2] से प्रभावित कोई भाषा समझना चाहिये। इस भाषा का व्यवहार तब तक होता रहा जब तक भारतीय आर्य-संस्कृति ने कश्मीर में प्रवेश नहीं किया। पिशाच-नाग काल में भारत में रहने वाले आर्यों ने कश्मीर में प्रविष्ट होने के अनेक प्रयास किये थे। किन्तु दुर्गम मार्ग, अत्यधिक शीत तथा नागों व पिशाचों के खौफ के कारण वे कश्मीर में प्रवेश न कर सके थे। कालान्तर में, अनेक प्रयत्नों के बाद आर्य कश्मीर में प्रस्थापित हो ही गये। इनसे पूर्व नाग व पिशाच तथा उनके सम्मिश्रण से उत्पन्न वर्ण-संकर जातियाँ यहाँ रहती थीं। "आर्यों की आदत थी वे जिस देश में जाते थे वहाँ वालों से मिल जाते थे। अपनी नैसर्गिक सहिष्णुता के कारण नवीन स्थान तथा देश की परम्परा तथा संस्कार को किसी सीमा तक अपना लेते थे। इस प्रकार आर्यों ने सभी देशों में प्रवेश कर शान्तिमय जीवन आरम्भ किया था। वे सैद्धान्तिक विषयों में संघर्ष मोल लेना पसन्द नहीं करते थे। उनमें उदारता होती थी। खुद जीना तथा दूसरों को जीवित रहने देना चाहते थे। इन व्यवहारों तथा पारस्परिक मिलन के कारण विरोध के स्थान पर जातियों का खूब मिश्रण हुआ।"[3] यहीं से कश्मीर में 'नीलमत' का प्रभुत्व उखड़ जाता है तथा वैदिक संस्कृति का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगता है। इस प्रभाव से तत्कालीन भाषा भी अछूती नहीं रही। पैशाची, जिसका उस समय व्यवहार होता था, पर संस्कृत का गहन प्रभाव पड़ने लगा। मौर्य-काल में यह प्रभाव और भी घनिष्ठ हो गया। असंख्य संस्कृत शब्द कश्मीरी में घुलमिल गये। संस्कृतकाल १०० ई० पू० तक माना जाता है। पालीभाषा काल ५०० ई० पू० से प्रथम शती तक तथा प्राकृतकाल प्रथम शती से छठी शती तक माना जाता है।[4]

इतिहास द्वारा यह बात सिद्ध होती है कि कश्मीर प्राचीनकाल में बौद्ध-धर्म का प्रख्यात केन्द्र था। असोक (२७४-२३२ ई० पू०) कनिष्क (१०० ई० पू०),

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २३१

२. 'पैशाची भाषा को दरद भाषा भी कहा जाता है। यह उचित ही मालूम पड़ता है। नाग लोग कश्मीर के मूल निवासी थे। पिशाच कश्मीर के उत्तर-पश्चिम से आये थे। दरदिस्तान इस दिशा में पड़ता है। अतएव भाषा का पैशाची से साम्य होना स्वाभाविक है।
'राजतरंगिणी' भाष्यकार रघुनाथसिंह, पृ० परिशिष्ट ड १०३

३. 'राजतरंगिणी' भाष्यकार रघुनाथसिंह, परिशिष्ट प, पृ० ३१—

४. हिन्दी, उद्भव, विकास और रूप डा० हरदेव बाहरी, पृ० २५

ललितादित्य (६९६-६३६ ई०) आदि नरेशों के द्वारा निर्मित अनेक बौद्ध मठ, विहार, स्तूप आदि यहाँ मिलते हैं। प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन कनिष्क के समय में हुए थे और उनकी मातृभूमि कश्मीर ही थी। इस काल की भी दुर्भाग्य से कोई कृति नहीं मिलती। हाँ, कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काल के प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागसेन (१५० ई० पू०) भी कश्मीर से ही आविर्भूत हुये थे। उनकी 'मिलिन्द पञ्हो' (मिलिन्द-प्रश्न) तत्कालीन कश्मीरी में लिखी गई बतायी जाती है। इस कृति का केवल पाली व सिंहाली में रूपान्तर मिलता है, मूल पाठ काल के गर्भ में नष्ट हो गया है। इस काल के कुछ शब्द अब भी किश्तवाड़ आदि क्षेत्रों में प्रचलित है।[1]

विद्वानों के अनुसार प्राक्तनकाल में पैशाची-प्राकृत का कश्मीरी पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। गुणाढ्य की बृहत्कथा इसी प्राकृत-भाषा में लिखी गई बताई जाती है। प्रश्न उठता है कि क्या वास्तव में यह पैशाची-प्राकृत वही है जिसमें बृहत्कथा लिखी गई थी तथा जिसका उल्लेख प्राकृत वैयाकरण चण्ड, वररुचि, क्षेमेन्द्र आदि ने किया है। वस्तुतः जिस पैशाची का उल्लेख उक्त वैयाकरणों ने किया है वह मुख्य पैशाची की एक विशेष बोली थी और इसे चूलिका पैशाची कहते थे।[2] 'बृहत्कथा' की पैशाची वैयाकरणों द्वारा उल्लिखित पैशाची से भिन्न थी—ऐसा विद्वानों का मत है। वह मूल पैशाची थी तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में प्राचीनकाल से प्रचलित थी। इस प्रसंग में ग्रियर्सन महोदय की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है—'पैशाची वास्तव में प्राकृत नहीं थी। यह एक प्राचीन भाषा थी। इसे संस्कृत की पुत्री न समझकर उसकी बहिन समझना चाहिये।'......[3] 'बृहत्कथा' पैशाची-प्राकृत में नहीं लिखी गई होगी, इसके मुख्य तीन और कारण यों हो सकते हैं—

१. गुणाढ्य के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वे प्रतिष्ठान के राजा शालिवाहन या सातवाहन (सन् ७८ ई० के आसपास) के राजदरबार में रहते थे। राजा ने अत्यन्त अल्पावधि में संस्कृत भाषा सीखने की इच्छा प्रकट की थी और उस समय के प्रसिद्ध संस्कृत-विद्वान् गुणाढ्य को अपना गुरु नियत किया था। किन्तु संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा को बहुत थोड़े समय में सिखाने की गुणाढ्य ने असमर्थता प्रकट की थी। इस पर उस समय के एक अन्य संस्कृत पंडित ने आगे बढ़कर यह कार्य सम्पन्न करने का प्रस्ताव रखा। गुणाढ्य ने प्रतिज्ञा कर ली—यदि यह पण्डित राजा को संस्कृत सिखाने में सफल हुआ तो मैं भविष्य में संस्कृत से लिखना छोड़ दूँगा। कहते हैं कि वह पण्डित

---

१. 'कांगुर नसर', (कश्मीरी में लिखित) १६६७, पृ० १७-१८

२. 'कश्मीरी भाषा' डा० बलजिन्नाथ पण्डित, 'शीराज़ा' पृ० १२, अक्तूबर १६६६

३. The Pisachi was not really a Prakrit in the usual sense of the word. It was very ancient language, a sister and not a daughter......" Linguistic survey fo India.

केवल छः मास में राजा को संस्कृत तथा उसका व्याकरण भली-भाँति सिखाने में सफल हो जाता है। गुणाढ्य अपनी प्रतिज्ञानुसार न केवल संस्कृत में लिखना छोड़ देता है वरन् वह देश छोड़कर सुदूर उत्तर-पश्चिम के पर्वतीय क्षेत्रों की ओर प्रयाण करता है। यहाँ पर अनेकों वर्षों तक रहकर वह लोक-कथाओं का एक अपूर्व संग्रह तैयार करता है। ये सभी कथायें वह पैशाची भाषा मे लिखता है क्योंकि संस्कृत या उसकी किसी प्राकृत भाषा में न लिखने की उसने प्रतिज्ञा की होती है।[1] जब राजा सातवाहन को यह समाचार मिला कि गुणाढ्य ने उत्तर-पश्चिम में जाकर पैशाची भाषा में लोककथाओं का एक अपूर्व संग्रह तैयार कर लिया है तो वे मारे क्रोध के जलभुन उठे। उन्होंने इस कथा-संग्रह को देखने की अनिच्छा प्रकट की। गुणाढ्य राजा की इस अरुचि को देख क्षुब्ध हो उठे। व्याकुल मन से उन्होंने कथाओं को अपने हाथों द्वारा जलाने का निश्चय कर लिया। गुणाढ्य एक-एक पन्ने को उठाता गया तथा उसमें आग लगाता गया। कहते हैं कि गुणाढ्य की भाषा में ऐसा अपूर्व रस व संगीत था कि वन के पशु-पक्षी इस अपूर्व कृति के पन्नों को जलता देख शिथिल पड़ गये, सब-के-सब खाना-पीना भूलकर गुणाढ्य के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए तथा उस अग्निकाण्ड पर शोक प्रकट करने लगे। इधर कथाओं की संख्या असीमित थी—उन्हें जलाने में गुणाढ्य को काफी समय लगा, और उधर बेचारे पशु-पक्षियों की दशा दयनीय होती गई। वे उत्तरोत्तर दुर्बल पड़ने लगे, यहाँ तक कि उनकी हड्डियाँ प्रत्यक्ष होने लगीं। नगर में भयंकर अकाल पड़ा। राजा को जब सारी स्थिति समझायी गई तो उन्हें अपनी गलती का भान हुआ। गुणाढ्य को सम्मानपूर्वक राजदरबार में लाया गया। किन्तु उस समय तक कथा-संग्रह का अधिकांश भाग जलकर नष्ट हो चुका था। जो भाग जलने से बचा उसी के आधार पर बाद मे विभिन्न संस्कृत-विद्वानों ने 'कथा सरित्सागर', 'बृहत्कथा मंजरी' तथा 'बृहत्कथा' लिखी। उक्त घटना-प्रसंगों से स्पष्ट हो जाता है कि गुणाढ्य ने चूँकि न संस्कृत में और न किसी अन्य प्राकृत में लिखने की प्रतिज्ञा की थी अतः निश्चित है कि उनके द्वारा प्रयुक्त पैशाची शुद्ध पैशाची रही होगी जो उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी क्षेत्रों में उस समय प्रचलित रही होगी। उसे पैशाची-प्राकृत कहना उचित नहीं है। कश्मीरी की जननी यही पैशाची है।

२. गुणाढ्य का समय ७८ ई० बताया जाता है। प्राकृतकाल प्रथम शती से लेकर छठी शती तक रहा। स्पष्ट है कि साहित्यिक प्राकृतें विशेषकर पैशाची

---

१. Gunadhya vows to use niether Sanskrit Prakrit nor the vernacular if the deed was done······Gunadhya would record them, but must write in Paisachi, the language of the goblins as he is debarred from use of any other speach of his vow"

'History of Sanskrit Literature' A. B. Keith.

प्राकृत प्रथम शती मे ही इतनी विकसित नही रही होगी कि उसमे साहित्य-रचना की जा सके। विद्वानों के अनुसार प्राकृत-भाषाओं में साहित्य-रचना की परम्परा ५वीं शती से मिलती है[1] ऐसी स्थिति में यह कल्पना करना कि गुणाढ्य ने ७८ ई० में बृहत्कथा के लिए पैशाची प्राकृत का प्रयोग किया होगा—ठीक नहीं है।

३. पैशाची-प्राकृत में जो प्रमुख ध्वन्यात्मक विशेषतायें मिलती हैं, वे इस प्रकार हैं।

क—पैशाची-प्राकृत मे श-ष के स्थान पर कही स और कही-कहीं श मिलता है, यथा शोभते> सोभति, दशवदन> दसवतनो, कष्टम्> कसटं आदि।

ख—पैशाची प्राकृत में 'क्त्वा' के स्थान पर 'तून' का आदेश किया जाता है, यथा—गत्वा>गन्तूनं, चलित्वा>चलितूनं आदि।

ग—भविष्यत् काल मे 'स्सि' का आदेश न होकर 'एय्य' का आदेश होता है, यथा—भविष्यति>हुवेय्य, पठिष्यति>पठेय्य आदि।

कश्मीरी मे उक्त ध्वन्यात्मक विशेषताओं में एक भी नहीं मिलती। कश्मीरी मे प्राय: 'श' के स्थान पर 'ह' का आदेश मिलता है, 'क्ष' के स्थान पर 'छ' तथा 'तून' व 'स्सि' के स्थान पर 'इत' व 'इ' का व्यवहार मिलता है। जैसे—

शरत्>हरुद, श्वशुर>हिहुर, वक्ष>वछ, द्राक्ष>दछ, पक्ष>पछ, गत्वा> गछिन, चलित्वा>चलिन, पठिष्यति>परि, गमिष्यति>गछि आदि। इस विश्लेषण से भी स्पष्ट हो जाता है कि गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' पैशाची-प्राकृत मे नही लिखी होगी क्योंकि उस स्थिति में इसका कश्मीरी से कुछ-न-कुछ ध्वनि-साम्य अवश्य होता।

बौद्धधर्म का प्रभाव कश्मीर में अधिक समय तक न रहा। परिणाम स्वरूप कश्मीरी पर एक बार पुनः संस्कृत का प्रभुत्व स्थापित हो गया। दो सौ वर्षों तक कश्मीरी भाषा की यही स्थिति रही। राजा जयापीड (आठवीं शती) के समय में पहली बार कश्मीरी में कविता करने की परम्परा मिलती है।[2] यह परम्परा मौखिक ही रही, उसका लिपिबद्ध रूप उपलब्ध नहीं होता। कश्मीरी कवियों ने अपनी मातृभाषा में कवितायें क्यो नही की, वे कश्मीरी के प्रति उदासीन क्यों रहे आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करना आवश्यक है। आश्चर्य की बात यह है कि राजतरंगिणी-कार कल्हण भी कश्मीरी में कहीं कुछ नहीं लिख गये। उनकी राजतरंगिणी में कश्मीरी के केवल ये तीन-चार शब्द मिलते हैं—धातुल, लिद्दर, दिमाग आदि। इतना निश्चित है कि कल्हण (१२वीं शती) के समय कश्मीर में ऐसी कोई भाषा थी जिसे कल्हण कश्मीरियों की 'लोकभाषा' कहते हैं।[3] इस लोकभाषा के प्रति तत्कालीन कवियों की विरुचि क्यों रही तथा इस भाषा को उन्होंने हेय क्यो समझा, इसका

१. 'काशिरि अदबच तारीख' अवतार कृष्ण रहबर, पृ० ४६
२. 'कोन अदब' १९६३, पृ० ६२
३. वही पृ० ६३

सम्भवतः एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि उस समय तक कश्मीरी भाषा में वह अर्थशक्ति व परिपक्वता न आई थी जिसकी काव्यरचना के लिये नितान्त आवश्यकता रहती है। संस्कृत इस दृष्टि से सभी प्रकार से सम्पन्न भाषा थी और कवियों ने इसे ही अपनी साहित्य-साधना का माध्यम बनाना उचित समझा।

११वीं शती का उत्तरार्द्ध तथा १२वीं शती का पूर्वार्द्ध कश्मीर के इतिहास में विभिन्न राजनीतिक उपद्रवों तथा अव्यवस्थाओं का काल रहा। इस काल में कश्मीर पर अनेक आक्रमण हुए। आक्रांता तिब्बत, दरदिस्तान आदि क्षेत्रों से आए तथा इस प्रदेश को अपने अधिकार में करने के फिराक में रहे। इस उथल-पुथल में कश्मीरी भाषा पर पुनः दरदी भाषाओं का प्रभाव पड़ा। दरदिस्तान से आये हुए आक्रांता मुख्यतः 'सोयामा' स्थान से घाटी में प्रविष्ट हुए और जहाँ-जहाँ पर भी वे बस गए वहाँ-वहाँ उनकी भाषा के कुछ शब्द प्रचारित हुए। 'होम' शब्द उन्हीं की देन है। इस शब्द का अर्थ है 'बस्ती'। यह शब्द अनेक स्थानवाचक संज्ञाओं से जुड़ा हुआ है, यथा—वन्दहोम, बिहोम, कानिहोम, बुर्ज़होम आदि।[1] १३वीं शती के पश्चात् कश्मीरी पर फारसी भाषा का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। बाद में धीरे-धीरे इसमें हिन्दुस्तानी अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्द भी घुल-मिल गए।

सारांशतः कश्मीरी का उद्गम पैशाची भाषा से हुआ है। यह पैशाची पैशाची-प्राकृत से भिन्न है तथा कश्मीर में नाग-पिशाच-काल से प्रचलित थी। कालांतर में इस भाषा पर संस्कृत, फारसी आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा और उसका मूल रूप परिवर्तित हो गया। इस समय कश्मीरी का जो व्यवहृत रूप मिलता है वह संस्कृत, फारसी, अरबी, पंजाबी, उर्दू आदि भाषाओं से प्रभावित है। इन भाषाओं के अनेक शब्द कश्मीरी में धुलमिल गए हैं। अंग्रेजी भाषा के भी अनेक शब्द इस भाषा में समो गए हैं—जैसे टेबुल-टेबिल, सुच-स्विच, लान-लाइन, बस-बस, मोटर-मोटर, मासटर-मास्टर, बासकल-बाइसिकल, गेट-गेट, बुरश-ब्रुश सीमठ-सीमेण्ट, प्राफसर-प्रोफेसर, टिकठ-टिकट- पारक-पार्क आदि। उर्दू-फारसी के शब्दों की सूची पहले दी जा चुकी है।

## कश्मीरी भाषा की विभिन्न बोलियाँ

कश्मीरी की मुख्य तीन बोलियाँ मिलती हैं। १. किश्तवाड़ी, २. रामबनी और ३. भद्रवाही। किश्तवाड़ी कश्मीर-घाटी के दक्षिण में किश्तवाड़ में बोली जाती है। रामबनी रामबन में तथा भद्रवाही भद्रवाह में। उक्त तीन बोलियों में अन्तिम दो पर डुग्गर प्रदेश की भाषाओं का प्रभाव यथेष्ट मात्रा में पड़ा है अतः ये आधुनिक कश्मीरी के सन्निकट बहुत कम दिखती हैं। किश्तवाड़ी में अभी भी कश्मीरी के ठेठ शब्दों की भरमार है।

---

१. 'सोन अदब' १९६३, पृ० ६३।

परिनिष्ठित कश्मीरी का व्यवहार कश्मीर की घाटी में होता है। प्राचीनकाल में कश्मीर को तीन प्रशासकीय भागों में विभक्त किया गया था। उत्तरी भाग 'कामराज' कहलाता था, दक्षिणी भाग 'मराज' तथा मध्य-भाग 'यमराज'। इन तीनों भागों में व्यवहृत कश्मीरी को क्रमशः 'कामराजी', 'मराजी' तथा 'यमराजी' कहा जाता था। 'कामराजी' कश्मीरी श्रीनगर के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में बोली जाती थी तथा इसका मुख्य केन्द्र सोपोर था। मराजी श्रीनगर के दक्षिण-पूर्व क्षेत्र में बोली जाती थी तथा इसका मुख्य केन्द्र अनन्तनाग था। यमराजी श्रीनगर में व्यवहृत थी।

वर्तमान समय में, प्रचलन के आधार पर, कश्मीरी भाषा की उक्त सीमा-रेखायें यद्यपि काफी हद तक दूर हो चुकी हैं और कश्मीरी भाषा ने सम्पूर्ण घाटी में एक-रूपता स्थापित कर ली है किन्तु उसमें शहरी और ग्रामीण पुट अभी भी देखने को मिलता है। इस दृष्टि से कश्मीरी के दो रूप स्थिर किए जा सकते हैं। कश्मीरी का एक रूप वह है जो मुख्यतः शहरों में मिलता है। इसे 'शहरी-कश्मीरी' कहा जा सकता है। दूसरा रूप ग्रामीण-क्षेत्रों में प्रचलित है। इसे 'ग्रामीण-कश्मीरी' या 'पहाड़ी कश्मीरी' कहा जा सकता है। 'शहरी-कश्मीरी' तथा 'पहाड़ी कश्मीरी' में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि 'शहरी-कश्मीरी' के रकारान्त शब्द प्रायः पहाड़ी-कश्मीरी में डकारान्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ—

| शहरी-कश्मीरी | | पहाड़ी-कश्मीरी |
|---|---|---|
| गुर | घोड़ा | गुड |
| लार | भागना | लाड |
| योर | इधर | योड |
| लूर | छड़ी | लूड |
| तूर | सर्दी | तूड |
| नार | आग | नाड़ |

पहाड़ी-कश्मीरी में ऐसे कई शब्द प्रचलित हैं जो या तो बिल्कुल नये हैं या उनका अर्थ शहरी कश्मीरी में प्रचलित शब्दों से भिन्न है। श्री आजाद ने अपनी पुस्तक 'कश्मीरी जबान और शायरी' में ऐसे कुछ शब्द उद्धृत किए हैं—

| पहाड़ी-कश्मीरी | | शहरी-कश्मीरी |
|---|---|---|
| बुतुन | बच्चा | शुर |
| रय | स्त्री | जनान् |
| बगड़ | पुत्र | नेचुव |
| अवान छुग | कुशल है ? | वारय छुग |
| हाख | सब्जी | स्युन' |
| शोपट | मुख | बुथ |
| शोदुर | मित्र | यार, दोस्त |
| भटुव | कूदना | वोठ |

कश्मीर की घाटी में मुख्यतः हिन्दू व मुसलमान जातियों के लोग रहते हैं। कश्मीरी मे हिन्दू को 'बठ' तथा मुसलमान को 'मुसलमान' कहते हैं। दोनों जातियों के कश्मीरी-भाषियों में उच्चारण सम्बन्धी तथा व्यवहृत शब्दावली सम्बन्धी विशिष्ट अन्तर देखने को मिलता है। हिन्दुओं द्वारा व्यवहृत कश्मीरी संस्कृत-निष्ठ अधिक है तथा मुसलमानों की कश्मीरी में फारसी शब्दों का बाहुल्य विशेष है। इस आधार पर विद्वान कश्मीरी के दो रूप निश्चित करते हैं—१. बट काशुर तथा २. मुसलमान काशुर।[1] यद्यपि व्यावहारिक दृष्टि से यह रूप-भेद उतना स्पष्ट नहीं है और न किया जाना चाहिए किन्तु दोनों जातियों के कश्मीरी-भाषियों के उच्चारण, उनके द्वारा व्यवहृत शब्दावली आदि के आधार पर यह वर्गीकरण आवश्यक है। कश्मीरी हिन्दू ईश्वर के लिए दय (देव), भगवान, परमात्मा, प्रभु आदि शब्दों का प्रयोग करता है जबकि कश्मीरी मुसलमान इस शब्द के लिए 'खोदाय', 'अल्लाह' आदि का ही प्रयोग करता है। इसी प्रकार कश्मीरी मुसलमान सूर्य के लिए आफताब, पानी के लिए आब, बहन के लिए हमशीरा आदि शब्दों का ही प्रयोग करता है जबकि कश्मीरी हिन्दू इन शब्दों के लिए क्रमशः 'सिरी', 'पोन्य', या 'जल', 'बेनि' आदि का प्रयोग करता है। यह प्रवृत्ति इस समय भी कश्मीरी में व्याप्त है। इस विरोधात्मक प्रवृत्ति के पीछे दोनों जातियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उत्तरदायी है। हिन्दुओं की कश्मीरी तथा मुसलमानों की कश्मीरी में व्यवहृत विभिन्न शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

| हिन्दुओं की कश्मीरी | | मुसलमानों की कश्मीरी |
|---|---|---|
| दह | दस | दाह |
| ब्रार | बिल्ली | ब्योर |
| क्रु | कुआँ | कूर |
| हारल्य | गौरैया | होंरल |
| प्रारन्य | मरोंगे | प्यारुदन |
| माज | माता | मोज |
| दाठ | धीम | गाट |
| वाग | धोती | वांग |
| पारस्युन | पकाना | पोंस्युन |
| उनार | दरजी | ओनर |

श्री चन्दार ने कश्मीरी भाषा के कुछ और भेद निर्धारित किए हैं। ये भेद विभिन्न सामाजिक वर्गों में प्रचलित बोलियों के आधार पर किये हैं। जैसे, बनारों की बोली, भांडों की बोली, चमारों के बोली आदि।[2]

---

1. द्र. श्री अवतार कृष्ण रहबर, 'काशुर अदब' पृ० ३१०।
 द्र. श्री कमलनयन मन्नु, 'काशुर व अदब', पृ० १८
2. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' पृ० ६३—६६

## कश्मीरी लिपि व ध्वनियाँ

लगभग ६०० वर्ष पूर्व कश्मीरी भाषा की लिपि शारदा थी। यह शारदा ब्राह्मी का ही कश्मीरी संस्करण है।[1] १४वीं शती तक कश्मीर में इस लिपि का बराबर प्रयोग होता रहा। इसके पश्चात् फारसी के राजभाषा बनने से धीरे-धीरे कश्मीरी भाषा के लिए फारसी लिपि का प्रयोग होने लगा। फलस्वरूप कश्मीरी दो लिपियों में लिखी जाने लगी। एक फारसी और दूसरी शारदा।[2] आगे चलकर मुसलमान शासकों के राजत्वकाल में फारसी लिपि अधिक जोर पकड़ने लगी और शारदा इने-गिने पण्डितों व पुरोहितों तक ही सीमित रह गई। वर्तमान समय में फारसी लिपि को कश्मीरी ध्वनियों के अनुकूल बनाकर अपनाया जाता है। इस लिपि को राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है।

ध्यान से देखा जाय तो फारसी कश्मीरी भाषा के लिए एक उपयुक्त लिपि नहीं है। कश्मीरी भाषा की अपनी कुछ विशिष्ट ध्वनियाँ हैं[3]। इनके उच्चारण के लिए फारसी के रूढ़ संकेत अवैज्ञानिक तथा दोषपूर्ण हैं। यही कारण है कि इस लिपि में लिखी जाने वाली कश्मीरी को अनुमान व अध्यवसाय के साथ पढ़ना पड़ता है। श्री आज़ाद ने भी फारसी लिपि की अनुपयुक्तता को स्वीकार किया है।[4]

कश्मीरी भाषा के लिए कौन-सी लिपि सर्वथा वैज्ञानिक एवं उपयुक्त सिद्ध हो सकती है, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। कश्मीरी के लिए तीन लिपियाँ प्रस्तावित की जाती हैं—१ रोमन, २. फारसी, और ३. देवनागरी। शारदा को इसलिए स्थान नहीं दिया जाता क्योंकि यह लिपि अब केवल विशेष ब्राह्मण वर्ग तक ही सीमित रह गई है। इसके लिखने व समझने वालों की संख्या अत्यल्प है।

कश्मीरी के लिए रोमन लिपि का व्यवहार मुख्यतया योरोपीय विद्वानों ने प्रारम्भ किया है। इस लिपि को केवल उच्च वर्गीय शिक्षित जन-समुदाय ही लिख-पढ़ सकता है, जन-साधारण के लिए यह लिपि उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। श्री शियालाल कौल ने अपनी पुस्तक 'स्टडीज इन कश्मीरी' में रोमन लिपि की ज़ोरदार वकालत की है। समझ में नहीं आता कि श्री कौल इस लिपि को प्राथमिकता

---

१. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य', चतुर्दश भाषा निबन्धावली, श्री पुष्प पृ० १०३।
२. 'कश्मीर में उसकी दो लिपियाँ उपलब्ध हैं। इनमें से एक तो फारसी में कुछ परिवर्तन करके बनाई गई है और मुसलमानों में प्रचलित है। दूसरी लिपि शारदा है।'
'भारत का भाषा सर्वेक्षण' हिन्दी रूपान्तरकार, उदयनारायण तिवारी, पृ० २०७।
३. कश्मीरी ध्वनिमाला में कुल ५२ ध्वनिमात्र (फोनीम) हैं।
हिन्दी साहित्य कोष, भाग-१ पृ० २१२।
४. 'कश्मीरी ज़बान और शायरी', प्रथम भाग पृ० २१।

देकर जन-साधारण से कश्मीरी लिखने या पढ़ने का अधिकार क्यों छीनना चाहते हैं।[1] उधर सम्पूर्ण देश अंग्रेजी को यहाँ से खदेड़ने में लगा हुआ है और इधर कौन साहब रोमन लिपि को जबरदस्ती थोपना चाहते हैं। वे फारसी और नागरी की अपेक्षा रोमन लिपि को ही कश्मीरी भाषा के लिए अधिक वैज्ञानिक तथा समीचीन मानते हैं।

राज्य-सरकार ने १९४८ ई० में कश्मीरी के लिए एक उपयुक्त लिपि निर्धारित करने के लिए एक समिति गठित की थी। इसके सदस्य थे—स्वर्गीय गुलाम अहमद महजूर, प्रो० जियालाल कौल तथा श्री गुलाम हसन बेग 'आरिफ'। इस समिति ने अपने प्रतिवेदन में कश्मीरी के लिए फारसी लिपि की सिफारिश की तथा विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों को अंकित करने के लिए कुछ संकेत-चिह्न प्रस्तावित किये। बाद में इस लिपि के संकेत-चिह्नों को अवैज्ञानिक पाकर लेखक-समाज ने इनके औचित्य पर आपत्ति प्रकट की। तदनन्तर सन् १९५२ में एक और लिपि-समिति बिठाई गई जिसने संकेत चिह्नों पर उठाई गई आपत्तियों को ध्यान में रखा तथा कुछ परिवर्तित-परिवर्धित चिह्नों की संस्तुति की। इससे पूर्व कि इस संस्तुति को कार्यान्वित किया जाता, प्रदेश-सरकार बदल गई। १९५५ ई० में टी० एन० खजांची के नेतृत्व में पुनः एक और लिपि-समिति का निर्माण हुआ। इस समिति ने अब तक बनी सभी समितियों के प्रतिवेदनों का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन किया तथा उसके आधार पर संशोधित संकेत-चिह्नों के साथ फारसी लिपि को कश्मीरी की लिपि घोषित कर दिया।

वस्तुतः देवनागरी फारसी व रोमन के मुकाबले में कश्मीरी को लिपिबद्ध करने के लिए सर्वथा वैज्ञानिक तथा सटीक लिपि है। नागरी की यही तो एक भारी विशेषता है कि वह किसी भी भाषा को सरलतापूर्वक लिपिबद्ध करने में सक्षम है। कश्मीरी भाषा को नागरी में लिपिबद्ध करने के सफल प्रयत्न हुए हैं और हो रहे हैं। नागरी लिपि में थोड़ी-सी कठिनाइयाँ वहाँ होती हैं जहाँ अल्पप्राण अ, उ, तथा महाप्राण आ, ऊ, आदि सम्बन्धी विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियाँ स्पष्टतया अंकित नहीं हो पाती। इसके लिए भाषाविदों ने कुछ संकेत-चिह्न निर्धारित किए हैं और उनका विधिवत् प्रयोग करने से उक्त समस्या काफी सीमा तक सरलतापूर्वक सुलझ जाती है। कश्मीरी को सर्वप्रथम नागरी में लिपिबद्ध करने का श्रेय श्रीकंठ तोषखानी साहब को है। इनके बाद श्री जियालाल जलाली ने किंचित् संशोधन के साथ नागरी को कश्मीरी ध्वनियों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। श्री पृथ्वीनाथ पुष्प ने भी कश्मीरी को नागरी में अंकित करने का सफल प्रयास किया है।[2] उक्त तीनों महानुभावों द्वारा कश्मीरी के लिए नागरी लिपि का जो रूप-विधान प्रस्तावित किया गया

---

1. 'स्टडीज इन कश्मीरी', पृ० ८।
2. 'कश्मीरी भाषा और साहित्य', चतुर्दश भाषा निबन्धावली, पृ० १२३।

है, उसे उद्धृत किया जाता है—

अ॑ (⊥) — अ॑छ=आंख, ग॑र=मकान, ग॑र=घड़ी

आ॑ (+) — सा॑र=सीरा, टा॑ठ=प्यारी, हा॑र=मैना

उ़ (ॢ) — तु़र=चीथड़ा, गु़ध=लहर

ऊ़ (ॣ) — तू़र=सर्दी, द्रू़स=गदा

ओ॑ (ॊ) — ओ॑न=अन्धा, दो॑द=दूध, पो॑न=खूंटी

व्यंजनों में विशिष्ट ध्वनियों के वर्ण हैं—च़, छ़, ज़। कश्मीरी में कोई भी व्यंजन घोष-महाप्राण नहीं है। अतः घ, झ, ढ, ध, भ आदि व्यंजनों का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता।[1]

केन्द्रीय हिन्दी निर्देशालय, भारत-सरकार ने परिवर्धित-नागरी शीर्षक से जो महत्त्वपूर्ण लिपि-निर्देशिका तैयार की है उसमें काश्मीरी भाषा को नागरी में लिपिबद्ध करने के लिए जो 'कश्मीरी-देवनागरी-वर्णमाला' दी गई है, वह इस प्रकार है—

[illegible] इ — अ [illegible]
[illegible] ई — आ [illegible]
[illegible] उ (ॖ) — (⊥) ॳ [illegible]
[illegible] ऊ (ॗ) — (+) ॴ [illegible]
[illegible] उ — अ॑ [illegible]
[illegible] ऊ — (ॊ) ओ॑ [illegible]
[illegible] ए — ए [illegible]

विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों को अंकित करने के लिए निम्न मात्रा-चिह्न प्रस्तावित किये गए हैं—

ए ॆ अ, आ ⊥ +
ओ॑ उ, ऊ ॢ ॣ

च़ छ़ ज़ झ़

---

१. यही कारण है जो कश्मीरी-भाषी हिन्दी बोलते हैं उनके उच्चारण में प्रायः घोष-महाप्राण सम्बन्धी अशुद्धि यथेष्ट मात्रा में मिलती है। वे घड़े को गड़ा, भारत को बारत, दुग्ध को दुगत, धीरे को दीरे आदि बोलते हैं।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की उक्त लिपि-निर्देशिका नि.संदेह वैज्ञानिक है तथा मुद्रण व टंकन की दृष्टि से सुविधाजनक। किन्तु इस तालिका में दो बातें अखरती हैं-

१. कश्मीरी की एक विशिष्ट ध्वनि जो 'अ' और 'ओ' के बीच में है, जैसे, लॊट=दुम, चॊट=रोटी, कॊट=लड़का आदि, के लिए कोई भी संकेत-चिह्न निर्धारित नहीं किया गया है। इसके लिए 'ो' मात्रा-चिह्न को ही निर्दिष्ट किया गया है। यह मात्रा-चिह्न कश्मीर की उक्त विशिष्ट ध्वनि को व्यंजित करने में असमर्थ है। अत इस ध्वनि के लिए 'ॊ' मात्रा चिह्न होना चाहिए।

२. कश्मीरी-चवर्ग के लिए तालिका में च़, छ़, ज़, झ़, को निर्दिष्ट किया गया है। यदि इन व्यजनों के नीचे डंडा न लगाकर बिन्दी ही लगायी जाए तो सम्भवतः प्रेस व टंकण में अधिक सुविधा हो सकती है। और फिर च़, छ़, ज़, आदि व्यंजनों के च, छ ज आदि रूप काफी प्रचलित और लोकप्रिय हो चुके हैं, उन्हें उनके प्रचलित रूप से बिगाड़ना उचित नहीं लगता।

सारांशत. नागरी लिपि कश्मीरी भाषा के लिए सभी प्रकार से अनुकूल व उपयुक्त है। इस प्रसग में प्रो० चमनलाल सप्रू के नागरी की उपयुक्तता के सम्बन्ध में विचार उद्धृत किए जाते हैं--'मैं विश्वास के साथ कहता हूँ कि आने वाले समय में देवनागरी लिपि ही कश्मीरी के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी और जनता में यही लिपि लोकप्रिय हो जाएगी—हमारा सम्बन्ध अधिक-से-अधिक भारतीय समाज से बढ़ता जा रहा है। इसलिए भारतीय जनता को अधिक निकटता से समझने व उन्हें समझाने के लिए, उनको अपने नजदीक लाने के लिए जहाँ यह आवश्यक है कि हम हिंदी सीखें, वहाँ हमारे लिए यह लाजिमी है कि हम देवनागरी लिपि को भी अपनाएं जिससे कश्मीरी भाषा को काफी लाभ होगा। यही नहीं उसके साहित्य को आधुनिक भारतीय साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त होगा।'[१] आशावादी लेखक के साथ इन पंक्तियों का लेखक शत प्रतिशत सहमत है।

## कश्मीरी साहित्य का काल-विभाजन

कश्मीरी में साहित्य-सर्जन की सुपुष्ट परम्परा १३वीं शताब्दी से मिलती है। कश्मीरी का यह दुर्भाग्य है कि १३वीं शताब्दी तक कोई भी कश्मीरी कवि या लेखक अपनी मातृभाषा में साहित्य-रचना की ओर प्रवृत नहीं हुआ। इससे पूर्व कश्मीरी में लिखी जिन रचनाओं का नाम विद्वान गिनाते हैं उनका मूल रूप या तो नष्ट हो गया है या अप्राप्य है।[२] ऐसी स्थिति में कश्मीरी साहित्य के विकास-क्रम का सही अन्वेषण करना कठिन है।

कश्मीरी साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की तुलना में अल्प होते

१. 'संतूर के स्वर' पृ० ६५—६६

२. गुणाढ्य की बृहत् कथा, नागसेन की 'मिलिन्द-पण्हो' आदि

हुए भी साहित्यिक महत्व की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध है। सर जार्ज ग्रियर्सन का कहना है कि कश्मीरी भाषा का साहित्य अत्यल्प होते हुए भी विशेष महत्व का है।[1] ग्रियर्सन ने कश्मीरी में साहित्य-सर्जन की परम्परा का सूत्रपात १३वीं शती से माना है। इससे पूर्व का कश्मीरी साहित्य या तो संदिग्ध है या अन्धकार के गर्भ में पड़ा हुआ है। लगभग सात सौ वर्षों की इस साहित्यिक परम्परा को विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

श्री अब्दुल अहद आज़ाद ने 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' में कश्मीरी-साहित्य को निम्नलिखित चार कालों (दौरों) में विभाजित किया है।[2]

| | |
|---|---|
| १. पहला काल | १३२५–१४२२ |
| २. दूसरा काल | १५६६–१८४८ |
| ३. तीसरा काल | १८५५–१६०० |
| ४. चौथा काल | १६०० |

प्रो० जियालाल कौल ने कश्मीरी साहित्य का काल-विभाजन यों किया है।[3]

| | |
|---|---|
| प्रथम काल | १५५५ तक |
| द्वितीय काल | १५५५—१७५२ |
| तृतीय काल | १७५२—१६२५ |
| चतुर्थ काल | १६२५—१६४७ |

कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पृथ्वीनाथ पुष्प का वर्गीकरण पाँच कालों पर आधारित है।[4]

| | |
|---|---|
| १. आदिकाल | १२५०—१४०० |
| २. प्रबन्ध काल | १४००—१५५० |
| ३. गीत काल | १५५०—१७५० |
| ४. प्रेमाख्यान काल | १७५०—१६०० |
| ५. आधुनिक काल | १६००— |

श्री अवतार कृष्ण 'रहबर' ने अपनी पुस्तक 'काशिरि अदबुच तारीख' में कश्मीरी साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—[5]

| | |
|---|---|
| १. प्रारम्भिक अथवा निर्गुण-भक्तिकाल | १२००–१५५५ |
| २. मध्यकाल अथवा गीतकाल | १५५५–१७५७ |
| ३. सधिकाल या भक्ति-शृंगारकाल | १७५७–१६२५ |
| ४. आधुनिक काल | १६२५ |

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ७, खण्ड ८ पृ० २३३

२. भाग २, पृ० ५६–६५–७१–१०३

३. स्टडीज इन कश्मीरी, पृ० २७–२८

४. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १, पृ० २३२

५. पृ० ७८

उपर्युक्त वर्गीकरण में प्रथम दो कालमूलक हैं और शेष प्रवृत्तिमूलक। वे तीनों वर्गीकरण अपने-अपने स्थान पर उपयुक्त हैं, किन्तु इन पर विवाद गुंजाइश हो ऐसी बात नहीं है।

*आज़ाद द्वारा प्रस्तुत कश्मीरी साहित्य का वर्गीकरण* कई दृष्टियों से त्रुटिपू है। आज़ाद ने कश्मीरी साहित्य के विकास-क्रम को जिन चार काल-खण्डों में विभा जित किया है, उनमें वे प्रथम काल के अन्तर्गत लल्लद्यद व नूरउद्दीन के कृतित्व को रखते हैं। दूसरे काल में वे हब्बाख़ातून व महमूदगामी के साहित्य को सम्मिलित करते है। तीसरे काल के अन्तर्गत वे महमूदगामी से इतर दरवेश अब्दुल कादिर तक के कवियों को स्थान देते हैं। चौथे काल का श्रीगणेश वे महजूर से करते हैं। अपने वर्गीकरण के पक्ष में आज़ाद ने तर्कसम्मत प्रमाण न देकर ऊपरी ढंग से विभिन्न कालों की विभाजन रेखायें खींची हैं। 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' प्रथम भाग, पृ० २०९-२१८ में उन्होंने एक-आध स्थान पर प्रथम व द्वितीय काल की विभाजन-रेखाओं के औचित्य पर प्रकाश डाला है किन्तु वह केवल सिंहावलोकन के रूप में है। प्रत्येक काल-खण्ड की सीमाओं को प्रमाणित करने में वे असमर्थ रहे हैं।

प्रथम काल के साहित्यिक-महत्त्व का मूल्यांकन करते समय आज़ाद लल्लद्यद व नूरद्दीन के कृतित्व के बारे में लिखते हैं कि ये दो साहित्यकार कश्मीरी कविता के दो आधार-स्तम्भ ही नहीं है वरन् इनका कृतित्व कश्मीरी साहित्य का पहला व अन्तिम अध्याय है···। दूसरे स्थान पर उनकी धारणा बदल जाती है और वे लिखते हैं कि लल्लद्यद व नूरद्दीन का कलाम कश्मीरी शायरी का प्रथम अध्याय है। दूसरे काल का महत्त्वांकन करते समय वे लिखते हैं कि हब्बाख़ातून कश्मीरी कविता की आधारशिला है। इसी काल के अन्तर्गत वे मक़बूलशाह क्रालवारी व परमानन्द की साहित्यिक उपलब्धियों का भी मूल्यांकन करते हैं जबकि इन दो कवियों के कृतित्व का सम्यक् विश्लेषण उन्होंने तीसरे काल के अन्तर्गत किया है। विचारों की यह विशृंखलता आज़ाद की कालविभाजन सम्बन्धी अपूर्णता को सहज सिद्ध करती है।

श्री जियालाल कौल का वर्गीकरण विशुद्धतः इतिहासमूलक है। वह घटनामूलक अधिक है और कालमूलक अथवा प्रवृत्तिमूलक कम। पहले काल को वे १५६१ ई० तक सीमित रखते हैं जब शाहमीरी वंश का उन्मूलन हुआ और चक शासकों ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया। किन्तु इस काल का प्रारम्भ कहाँ से माना जाये इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है। दूसरे काल का विस्तार-क्रम उन्होंने मुगल साम्राज्य तक स्थिर किया है। तीसरे काल को उन्होंने तीन उपभागों में पुनः विभाजित किया है—१-१७५२-१८४६ पठान-शासन से डोगरा शासन तक, २,—१८४६-१८८५ गुलाबसिंह व रणवीरसिंह का राजत्व-काल, ३-१८८५-१९२५ प्रतापसिंह का राजत्व-काल। वस्तुतः इस प्रकार के कालविभाजन किसी भी प्रदेश की ऐतिहासिक व राजनैतिक परिस्थितियों को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं किन्तु इस क्रम

विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियों, रुचियों एवं परम्पराओं का आभास होना सम्भव नहीं है।

श्री पृथ्वीनाथ पुष्प का वर्गीकरण निःसन्देह अधिक उपयुक्त एवं व्यावहारिक है। उनका वर्गीकरण मुख्यतः प्रवृत्तिमूलक है। वे कश्मीरी साहित्य का समारम्भ १२५० ई० से मानते हैं। प्रथम काल को वे आदिकाल (१२५०-१४००) नाम से अभिहित करते हैं। इस काल के अन्तर्गत प्रधानत लल्लद्यद व नूरुद्दीन का- साहित्य आता है। इस काल के साहित्य में भक्ति-ज्ञान, धर्म-दर्शन आदि का अद्‌भुत सामंजस्य मिलता है। प्रबन्धकाल (१४००-१५५०) को पुष्पजी सुलतान जैनउलाबद्दीन का काल मानते हैं। इस काल में पौराणिक, लौकिक एवं इतिवृत्तात्मक काव्यों की बहुलता मिलती है। गीतकाल (१५५०-१७५०) के अन्तर्गत सयोग, वियोग, हर्ष, विषाद आदि भाववृत्तियों का सौन्दर्यप्रधान चित्रण मिलता है। हब्बाखातून, अरणिमाल, हबीब अल्लाह नौशहरी आदि इस काल के कीर्ति-स्तम्भ हैं। १७५० से १६०० तक की कालावधि को पुष्पजी ने 'प्रेमाख्यानकाल' से अभिहित किया है। इस काल मे जहाँ कृष्णलीला, पार्वती-परिणय और नल-दमयन्ती पर आधारित विभिन्न 'लीला-काव्य' मिलते हैं वहाँ दूसरी ओर प्रेममार्गी सूफी कवियों द्वारा रचित विभिन्न मसनवियों के सुन्दर कश्मीरी रूपांतर भी उपलब्ध होते हैं। इनमें 'लैला-मजनूं' 'अकनन्दुन' 'शीरीं-खुसरो' 'यूसुफ-जुलेखा, हीमाल-नागराय', 'गुलरेज' आदि प्रसिद्ध हैं। आधुनिक-काल (१६०० से—) कश्मीरी साहित्य की नवीनतम साहित्यिक प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी, निबन्ध आदि विभिन्न विधाओं का इस काल में विकास मिलता है। मास्टर जिन्दा कौल, नादिम, आरिफ, फाजिल रोशन, लोन, अख्तर आदि इस काल के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं।

श्री रहबर का वर्गीकरण कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। प्रारम्भिक काल का समय वे सन् १२०० से १५५५ तक मानते हैं तथा इस काल के अन्तर्गत शितिकण्ठ, सिद्धमोल, लल्लद्यद तथा नूरुद्दीन वली के साहित्य को रखते हैं। सन् १५५५ से लेकर १७५७ तक की कालावधि को उन्होंने गीतकाल की संज्ञा दी है। इसमें हब्बाखातून, अरणिमाल, हबीब अल्लाह नौशहरी, मिर्ज़ा कमालद्दीन बदख्शी, साहब कौल, रोपभवानी, नुन्दडार आदि के काव्य को सम्मिलित किया है।

सन् १७५७ से लेकर १६२५ तक जो साहित्य रचा गया उसे रहबर ने संधि-काल अथवा भक्ति-शृंगार-काल की संज्ञा दी है। इस काल में, उनके अनुसार, जहाँ सगुण भक्ति विशेषकर राम, कृष्ण व शिव भक्ति सम्बन्धी रचनायें लिखी गईं वहाँ निर्गुण-भक्ति की प्रमुख धारा प्रेममार्ग अथवा सूफीमार्ग को अनेक कवियों ने अपनी काव्य-साधना का आधार बनाया। कश्मीरी के अनेक उच्चकोटि के प्रेमाख्यान-काव्य इसी काल की देन हैं। आधुनिक काल (१६२५—) को रहबर ने दो काल-खण्डों में पुनः विभाजित किया है, १६२५ से १६४७ तक तथा १६४७ से अब तक।

ऊपर जिन वर्गीकरणों का उल्लेख किया गया है उनमें गुप्ताजी तथा रहबर के वर्गीकरण अपेक्षाकृत उपयोगी हैं। दोनों कश्मीरी साहित्य के विकास-क्रम का सही प्रतिनिधित्व करते हैं। गुप्ताजी के वर्गीकरण में यदि कोई दोष है तो वह यह है कि उन्होंने १४०० से लेकर १५५० तक की कालावधि को जो प्रबन्धकाल नाम दिया है वह उचित नहीं लगता। उन्होंने यह कहकर इसका नाम प्रबन्धकाल रखा है कि इस काल में पौराणिक, लौकिक तथा इतिवृत्तात्मक काव्यों की बहुलता मिलती है। यह सत्य है कि इस युग में कश्मीरी-भाषा और साहित्य ने बहुमुखी उन्नति की तथा जैनउलाबद्दीन बडशाह के राज्यकाल में कुछ कवियों ने प्रबन्धकाव्य लिखे जिनमें योधभट्ट का 'जैनप्रकाश', भट्टावतार का 'बाणासुरवध' व 'जैनविलास' सोमपंडित का 'जैनचरित' तथा गणक प्रशस्त का 'सुखदुखचरित' प्रमुख हैं। इनमें 'जैनप्रकाश' व 'जैनचरित' दोनों की पाण्डुलिपियाँ अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी हैं। इसी प्रकार 'बाणासुरवध' व 'सुख-दुख चरित' की पाण्डुलिपियाँ पूना के भण्डारकर शोधसंस्थान में मिली हैं किन्तु ये दोनों पाण्डुलिपियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं। अतः उनके साहित्यिक महत्व का तब तक विधिवत् परीक्षण नहीं हो सकता जब तक ये दोनों पाण्डुलिपियाँ प्रकाशित नहीं होतीं।[1] ऐसी स्थिति में बिना प्रामाणिक सामग्री के इस काल का नाम प्रबन्धकाल रखना उपयुक्त नहीं है। वैसे, यदि 'बाणासुरवध' या 'सुख-दुख चरित' प्रकाशित भी होते हैं तो भी मात्र इन दो प्रबन्धकृतियों के आधार पर इस काल को 'प्रबन्धकाल' की संज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि किसी भी काल की साहित्यिक-प्रवृत्ति की विशेषता को स्पष्ट करने के लिए उस काल का साहित्य भी उतना ही विपुल तथा यथेष्ट होना चाहिये। मात्र दो पाण्डुलिपियों के आधार पर १५० वर्ष की इस महत्त्वपूर्ण कालावधि को प्रबन्धकाल कहना संगत न होगा। श्री रहबर ने इस काल के साहित्य को प्रारम्भिक-काल के ही अन्तर्गत रखा है। वे १२०० से लेकर १५५५ तक के ३५५ वर्षीय सम्पूर्ण साहित्य को निर्गुण-भक्ति साहित्य से अभिहित करते हैं। किन्तु ध्यान से देखा जाय तो १२०० से लेकर १५५५ का सारा साहित्य निर्गुण-भक्ति से युक्त नहीं है। निर्गुण-भक्ति का प्रभाव कश्मीरी साहित्य पर १३वीं व १४वीं शताब्दी में अधिक रहा है। शितिकण्ठ, सिद्धमोल, लल्लद्यद, नुरुद्दीन वली आदि इन्हीं शताब्दियों की देन हैं। किन्तु १५वीं और १६वीं शताब्दी में जो साहित्य मिलता है वह प्रधानतः जैनउलाबद्दीन बडशाह के दरबारी कवियों द्वारा प्रणीत है जिसमें मुख्यतः जैनउलाबद्दीन की यश-कीर्ति, जीवनी तथा किंचित पौराणिक वृत्तों का वर्णन है। लल्लद्यद तथा नुरुद्दीन के काव्य जैसी सरल-सजीव धार्मिक व दार्शनिक अभिव्यक्ति का उसमें

---

१. कुछ वर्ष पूर्व 'बाणासुरवध' की फिल्म-कॉपी जम्मू व कश्मीर राज्य के अनुसंधान विभाग ने पूना से मंगवायी थी। यह ज्यों-की-त्यों अभी तक अप्रकाशित पड़ी हुई है।

ान्त प्रभाव है। अतः इस काल के साहित्य को प्रारम्भिक काल के साथ जोड़कर
नेर्गुण-भक्ति साहित्य" की संज्ञा देना भी उचित नहीं है। जैनउलाबद्दीन का शासन-
ाल कश्मीर के इतिहास में स्वर्णकाल की हैसियत रखता है। इस काल में कश्मीरी
ाव्यकला, नाट्यकला, संगीतकला तथा शिल्पकला ने खूब उन्नति की। कश्मीरी
ापा को पहली बार राजकीय प्रश्रय मिला और संस्कृत व फारसी की अनेक पुस्तकों
ा कश्मीरी में अनुवाद हुआ। नाटक खेलने के लिये रंगमंच स्थापित किया गया तथा
ोधभट्ट ने 'जैनप्रकाश' शीर्षक से जैनउलाबद्दीन के जीवन पर कश्मीरी में एक नाटक
ी लिखा। (जैनउलाबद्दीन के शासनकाल की लोकप्रियता तथा विभिन्न साहित्यिक
तिविधियों का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।) साहित्यिक दृष्टि से यह काल कश्मीरी
ाहित्य व भाषा का 'उत्थान-काल' है अतः १४०० से १५५० तक की कालावधि को
उत्थान-काल' कहना अधिक उचित होगा।

उपर्युक्त विवेचन के अनन्तर कश्मीरी साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार
किया जा सकता है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | आदि-काल | १२५०-१४०० | १५० वर्ष |
| २ | उत्थान-काल | १४००-१५५० | १५० वर्ष |
| ३. | रीति-काल | १५५०-१७५० | २०० वर्ष |
| ४ | प्रेमाख्यान-काल | १७५०-१९०० | १५० वर्ष |
| ५ | आधुनिक-काल | १९००— | |

# आदि-काल

(१२५०–१४००)

कश्मीर के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि १२५० ई० से लेकर १४०० ई० तक का समय राजनीतिक उपद्रवों, सामाजिक विषमताओं तथा धार्मिक विकृतियों का काल रहा है। वस्तुतः कश्मीर के इतिहास में ६५० ई० से ही उक्त विक्षिप्त स्थितियों के संस्कार अंकुरित मिलते हैं। कश्मीर के तत्कालीन नरेश क्षेमगुप्त (६५० ई०) की अत्यधिक विलास-प्रियता तथा अयोग्य शासन-प्र ने जहाँ कश्मीर की राजनीतिक स्थिति को अपंग बना दिया था, वहाँ कश्मीरी का नैतिक बल भी भीतर-ही-भीतर खोखला होता जा रहा था। क्षेमगुप्त की के पश्चात् उनकी पत्नी दिदा (६८० ई० से १००३ ई० तक) कश्मीर की रानी दिदा यद्यपि एक कुशल-शासिका तथा राजनीति के दाँव-पेचों को समझने वाल किन्तु उसको पदच्युत करने के लिये मन्त्रियों के षडयन्त्र बराबर चलते रहे। राज अग्निकाण्ड तथा दूसरे प्रकार के गर्हित षड्यन्त्र आये-दिन होते रहे। इनके १०१५-१०२१ ई० के बीच कश्मीर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया।[1] समय कश्मीर पर राजा संग्राम का राज्य था। संग्राम ने तुरन्त हार स्वी कर ली तथा कश्मीरियों का बचा-खुचा मनोबल भी खण्डित हो गया। समाज स्थिति बिगड़ती गई। चारों ओर अनाचार फैल गया। लूट-पाट, धोखाधड़ी, वे वृत्ति, द्यूतवृत्ति आदि जैसी दुष्प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। समाज को इन दुष्प्रवृत्ति ने पूर्णतया विशाक्त बना दिया। १२वीं शती में स्थिति और भी विकट हो जाती और उसका प्रभाव १३वीं तथा १४वीं शती तक बना रहता है।

सहदेव (१३००-१३१६) ई० के राज्यकाल में पहली बार सैकड़ों वर्षों से चला आ रहे हिन्दू-शासन की नींव हिल जाती है। आततायी जिलच् (डलच) कश्मीर आक्रमण करता है तथा क्रूर मारकाट कर इस घाटी को तहस-नहस कर देता है जोनराज ने अपने इतिहास में डिलच् की नृशंसता का वर्णन इस प्रकार किया है उस समय डलच नाम के एक सेना नायक ने अस्सी हजार सेनानियों के साथ कश्मीर पर आक्रमण किया। वैसे ही जैसे एक सिंह मृग-मण्डली पर आक्रमण करता है।

---

1. 'वाकिआति कश्मीर तारीख' पृ० ६०

डल्चु ने कश्मीरियों पर खूब शोषण तथा अत्याचार किया तथा घाटी की स्थिति एक अग्नि-कुण्ड के समान हो गई जिसमें असंख्य जीव-जन्तु झुलस रहे हों। पिता से पुत्र बिछुड़ गया और पुत्र से पिता, भाई से भाई न मिल सका। सुरम्य घाटी वीराने में बदल गई। खाने के लिए सिवा घास के और कोई खाद्य-सामग्री सुलभ न थी।[1] डिलच् के अपने वतन चले जाने पर तिब्बत-निवासी रेंचनशाह को कश्मीर पर अधिकार करने का सुअवसर मिल जाता है। प्रसिद्ध मुसलमान संत बुलबुलशाह के कहने पर वह इस्लाम-धर्म ग्रहण करता है तथा १३२० से १३२३ ई० तक कश्मीर पर राज्य करता है। रेंचन की मृत्यु के पश्चात् १५ वर्षों के लिए कश्मीर के शासन की बागडोर पुनः एक हिन्दू-नरेश उदयनदेव के हाथ में चली जाती है। इसके बाद १३३० ई० से कश्मीर स्थायी रूप से १८१९ ई० तक मुसलमान-शासकों के अधिकार में चला जाता है।

उक्त राजनीतिक अस्थिरता ने कश्मीर की धार्मिक व सामाजिक स्थिति को कई दृष्टियों से प्रभावित किया। हिन्दू-शासन की जो गरिमा छठी शती से लेकर नवीं शती तक रही वह दसवीं शती के बाद धीरे-धीरे लुप्त होती गई। १३वीं और १४वीं शती में आकर 'धर्म' का वास्तविक स्वरूप बिगड़ गया और वह एक प्रकार का 'आडम्बरपूर्ण व्यवहार' बन गया। प्राचीनकाल से चली आ रही धार्मिक पद्धतियों यथा—नीलमत, वेदान्त, बुद्धमत, शैवमत आदि में से केवल दो धार्मिक पद्धतियाँ शैवमत और वेदान्त जीवित रह पाईं किन्तु ये दोनों भी एक-दूसरे की पूरक न बनकर दोनों धर्मावलम्बियों में कटुता एवं वैमनस्य के बीज अंकुरित करने लगीं। उधर मुसलमानों के आक्रमण से इस्लाम-धर्म का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा तथा कश्मीर के धार्मिक क्षेत्रों में सूफी-मत का प्रवेश हुआ। इस धार्मिक सक्रांति-काल में बेचारी जनता, जो विदेशी आक्रमणों से पहले से ही संत्रस्त थी, विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों की

---

१. "At this time Dalcha, commander of the army of the great king Karmmtsena, came to Kashmir, as comes lion to the cave of a deer. He brought with him sixty thousand mounted force as if intending to conquer and bestow as many villagers as to his army···Dalcha like a fire brand, harassed the country and the people of Kashmir became like insects in the fire...son found not his father, non the father his son, nor did brother meet brothers. Kashmir became alomost like a region without food and full of grass."

'Kings of Kashmir' J. C. Datt, p. 16–18

मार्ग गुप्त-मुप्तकर नष्ट हो गई। यह जिस धर्म-मार्ग को अपनाये, इसका निर्ण करना उसके लिए मुश्किल हो गया। इन्हीं विकट परिस्थितियों में लल्लद्यद और नुरुद्दीन वली का आविर्भाव हुआ जिन्होंने शैव दर्शन, वेदान्त तथा सूफीमत के मूलभूत सिद्धान्तों का अपने काव्य में सम्मिश्रण कर निरक्षर कश्मीरी जनता को धर्म का सच्चा पाठ पढ़ाया जिसमें न कोई दुराव था और न कोई विभेद। दोनों ने कश्मीरी जनता के समक्ष धर्म का नूतन मार्ग खोल दिया जो मन की शुद्धता तथा सदाचार— इन दो सिद्धान्तों पर अवलम्बित था।

लल्लद्यद व नुरुद्दीन वली से पूर्व कश्मीरी में साहित्य-रचना की कोई स्पष्ट परम्परा नहीं मिलती है। कुछ विद्वान् शितिकण्ठ के 'महानयप्रकाश' को कश्मीरी की प्रथम रचना मानते हैं। यह रचना लल्लद्यद के १०० वर्ष पूर्व लिखी गई बताई जाती है। शितिकण्ठ का जीवनवृत्त भी उपलब्ध नहीं है, केवल इतना बताया जाता है कि वे १३वीं शती के कवि थे तथा जयरथ उनके गुरु का नाम था। अपने गुरु के समान ही शितिकण्ठ शैवदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान थे। 'महानयप्रकाश' एक तान्त्रिक-काव्यकृति है जिसमें कुल ९४ वाक् है। 'वाक्' चार-चार पादों के ऐसे स्फुट छन्द हैं जिनमें प्रायः अध्यात्म-वर्णन की प्रधानता रहती है। कश्मीरी में इस वाक् रचना की परम्परा नूरुद्दीन वली तक मिलती है। 'महानयप्रकाश' की भाषा वर्तमान कश्मीरी से भिन्न है। उस में अपभ्रंश की छाप स्पष्टतया झलकती है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की उसमें बहुलता है। इस काव्यकृति में परमार्थसिद्धि के विभिन्न सोपानों यथा—ज्ञान-सिद्धि, मिलाप-सिद्धि, मन्त्र-सिद्धि आदि आध्यात्मिक विषयों पर अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से चर्चा मिलती है। इस काव्य-रचना से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

इतयम्रोवल्ली परस्पर
दीपमाला जन अन्धकार।
धमित धाम उदयेत नितर
दिशिशपायवसु अविकार ॥[1]

## लल्लद्यद

लल्लद्यद को कश्मीरी जनता लल्लेश्वरी, लल्लायोगेश्वरी, लल्ला, ल लल्लारिफा आदि नामों से जानती है।[2] इस कवयित्री का जन्म-काल विद्वानों के

---

१. 'स्टडीज़ इन कश्मीरी' श्री जियालाल कौल, पृ० २८

२. लल्लद्यद का जन्म-नाम कुछ और रहा होगा। 'लल्ल' कश्मीरी में तोंद को क हैं तथा 'द्यद' किसी भी अनुभवी प्रौढ़ा के लिये प्रयुक्त आदरसूचक शब्द कहते हैं कि लल्लद्यद प्रायः अर्द्धनग्नावस्था में घूमती रहती और उसकी इतनी विकसित थी कि उसके गुप्तांग इस तोंद से ढके रहते। प० गोपीनाथ ने अपनी पुस्तक 'लल्लवाक्य' में लल्लद्यद का जन्म-नाम पद्मावती बताया यह सूचना उन्हें कहाँ से प्राप्त हुई—इसका उन्होंने उल्लेख नहीं किया है।

विवाद का विषय बना हुआ है। डा० ग्रियर्सन तथा आर० सी० टेम्पल ने लल्लद्यद की जन्म-तिथि न देकर उसकी जन्मशती का उल्लेख किया है। उनके अनुसार कवयित्री का आविर्भाव १४वीं शताब्दी में हुआ था तथा वह प्रसिद्ध सूफी संत सैयद अली हमदानी के समकालीन थी।[1] डा० जी० एम० सूफी तथा प्रेमनाथ बजाज लल्लद्यद का जन्म सन् १३३५ ई० में मानते हैं।[2] श्री जियालाल कौल के मतानुसार लल्लद्यद का जन्म १४वीं शती के मध्य में सुलतान अलाउद्दीन (१३४७ ई०) के समय हुआ है।[3] श्री जियालाल कौल जलाली लल्लद्यद का जन्म १४वीं शती के दूसरे दशक में भाद्रपद की पूर्णिमा को मानते हैं। 'वाकयाते-कश्मीर' में लल्लद्यद का जन्मकाल ७४८ हिजरी तदनुसार १३४८ ई० दिया गया है। कश्मीर के सुप्रसिद्ध इतिहासकार हसन-खूयामी ने 'तारीख-ए-कश्मीर' में लल्लद्यद का जन्मवर्ष ७३५ हिजरी तदनुसार १३३५ ई० दिया है।[4] विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न जन्म-तिथियों का विश्लेषण करने पर लल्लद्यद का जन्म-काल १३३५ ई० अधिक उपयुक्त ठहरता है।[5]

लल्लद्यद की मरण-तिथि उनकी जन्म-तिथि के सामान ही अनिश्चित है। केवल इतना कहा जाता है कि जब लल्लद्यद ने प्राण त्यागे तो उस समय उनकी देह कुन्दन के सामान दमक उठी। यह घटना इस्लामाबाद के निकट विजबिहारा में हुई बतलायी जाती है।[6] लल्लद्यद का मृत-शरीर बाद में किधर गया, उसे कहां जलाया गया आदि, इस सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता। किंवदन्ती है कि प्रसिद्ध संत-कवि शेख नूरुद्दीन वली ने, जिसका जन्म १३७६ ई० में हुआ, लल्लद्यद के स्तनों से दुग्धपान किया था। इससे लल्लद्यद का कम-से-कम १३७६ ई० तक जीवित रहना सिद्ध होता है।

लल्लद्यद का जन्म पाम्पोर के निकट सिमपुरा गांव में एक ब्राह्मण किसान के घर हुआ था। यह गांव श्रीनगर से लगभग नौ मील की दूरी पर स्थित है। तत्कालीन प्रथानुसार लल्लद्यद का विवाह उसकी बाल्यावस्था में ही पाम्पोर ग्राम के एक

---

१. 'लल्लवाक्यानि' १९२०, पृ० ३ तथा 'द वर्ड्स आफ लल्ला प्राफेटस' १९२९, पृ० १
२. 'कशीर' प्रथम भाग, पृ० ३८३, तथा 'द डॉटर्स आफ वितस्ता'
३. 'स्टडीज इन कश्मीरी' पृ० २६
४ 'काशिर अदबच तारीख' अवतार कृष्ण रहबर, पृ० १५०-१५१
५. कहा जाता है कि लल्लद्यद ने अपने जीवनकाल में तत्कालीन युवराज शहाबुद्दीन, प्रसिद्ध मुसलमान संत सैयद जलालुद्दीन बुखारी, सैयद हुसैन समनानी, सैयद अली हमदानी आदि से भेंट की थी। ये घटनायें क्रमशः ७४८ हि०, ७७३ हि०, ७८१ हि० की हैं। स्पष्ट है कि लल्लद्यद का इन हिजरी-वर्षों के पूर्व न केवल जन्म हुआ था अपितु वह पूर्णतया सयानी भी हो चुकी थी।
६. कश्मीरी जबान और शायरी', आजाद पृ० १२५, भाग २

प्रसिद्ध ब्राह्मण घराने में हुआ। उनके पति का नाम सोनपण्डित बताया जाता है।[1] बाल्यकाल से ही इस आदि-कवयित्री का मन सांसारिक बन्धनों के प्रति विद्रोह करता रहा जिसकी चरम-परिणति बाद में भावप्रवण दार्शनिक 'वाक्-साहित्य' के रूप में हुई।[2] लल्लद्यद को प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा अपने कुल-गुरु श्री सिद्धमोल से प्राप्त हुई। सिद्धमोल ने उन्हें धर्म, दर्शन, ज्ञान तथा योग सम्बन्धी विभिन्न ज्ञातव्य रहस्यों से अवगत कराया तथा गुरुपद का अपूर्व गौरव प्राप्त कर लिया। अपनी पत्नी में बढ़ती हुई विरक्ति देखकर एक बार सोनपण्डित ने सिद्धमोल से प्रार्थना की कि वे लल्लद्यद को ऐसी उचित शिक्षा दें जिससे वह सांसारिकता में रुचि लेने लगे। कहते है सिद्धमोल स्वयं लल्लद्यद के घर गये। उस समय सोनपण्डित भी वहां पर मौजूद थे। इससे पूर्व की गुरुजी लल्लद्यद को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते, एक गम्भीर चर्चा छिड़ गई। चर्चा का विषय था—

१. सभी प्रकाशों में कौन सा प्रकाश श्रेष्ठ है,
२. सभी तीर्थों मे कौन सा तीर्थ श्रेष्ठ है,
३. सभी परिजनों में कौन सा परिजन श्रेष्ठ है, तथा
४. सभी सुखद वस्तुओं मे कौन सी वस्तु श्रेष्ठ है।

सर्वप्रथम सोनपण्डित ने अपनी मान्यता यों व्यक्त की—सूर्यप्रकाश से बढ़कर और कोई प्रकाश नहीं है, गंगा के समान और कोई तीर्थ नहीं है, भाई के बराबर और कोई परिजन नहीं है तथा पत्नी के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।[3] गुरु सिद्धमोल का कहना था—नेत्र-प्रकाश के समान और कोई प्रकाश नहीं है, घुटनों[4] के समान और कोई तीर्थ नहीं है, जेब के समान और कोई परिजन नहीं है तथा शारीरिक-स्वस्थता के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।[5] योगिनी लल्लद्यद ने अपने

---

१. 'लल्लद्यद और उनकी दार्शनिक विचारधारा' डा० कृष्णा शर्मा, 'मार्तण्ड' पृ० २११

२. 'लल्लद्यद की तबीयत में बचपन ही से कुछ ऐसी बातें थीं जिन से जाहिर होता है कि इस के दिल व दिमाग पर प्रारम्भ ही से गैर मामूली प्रभाव था। वह प्रायः अकेली बैठती और गहरे सोच में डूबी रहती। दुनिया की कोई दिलचस्पी उसके लिये आकर्षण का केन्द्र न बन सकी। वह प्रायः इस असाधारण स्वभाव के कारण अपनी सहेलियों के बीच हास-परिहास का विषय बन जाती।' 'कश्मीरी जबान और शायरी', पृ० ११३ भाग २

३. गिग्यिस ह्यु न प्रकाश कुने, गंगि ह्यु न तीर्थ कांह।
बायिस ह्यु न बांदव कुने, रनि ह्यु न सौख कांह।

४. घुटनों से तात्पर्य स्वावलम्बन से है।

५. अछन ह्यु न प्रकाश कुने, कोठ्यन ह्यु न तीर्थ कांह।
चन्दस ह्यु न बांदव कुने, तनि ह्यु न सौख कांह॥

विचार यो रसे—मैं अर्थात् आत्मज्ञान के समान और कोई प्रकाश नहीं है, जिज्ञासा के बराबर कोई तीर्थ नहीं है भगवान के समान और कोई परिजन नहीं है तथा ईश्वर-भय के समान और कोई सुखद वस्तु नहीं है।[1] लल्लद्यद का यह सटीक उत्तर सुनकर दोनों सिद्धमोल तथा सोनपण्डित अवाक् रह गये।

विवाह के पश्चात् ससुराल में लल्लद्यद को अपनी सास की कटु-आलोचनाओं एवं यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। किन्तु वह उदारशीला यह सब पूर्ण धैर्य के साथ झेलती रही। एक दिन लल्लद्यद पानी भरने घाट पर गई हुई थी। मा ने पुत्र को उकसाया—देख तो यह चुड़ैल इतनी देर से घाट पर क्या कर रही है? सोनपण्डित लाठी लेकर घाट पर गये। सामने से लल्लद्यद सिर पर पानी का घड़ा लिये आ रही थी। सोनपण्डित ने ज़ोर से लाठी घड़े पर चलायी। घड़ा फूटकर खण्डित हो गया किन्तु कहते हैं कि पानी ज्यों-का-त्यों उस देवी के सिर पर टिका रहा। घर पहुँचकर लल्लद्यद ने इस पानी से बर्तन भरे तथा जो पानी बचा रहा उसे खिड़की से बाहर फेंक दिया। थोड़े दिनों के बाद उस स्थान पर एक तालाब बन गया जो अभी भी 'लल्लत्राग' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार एक दिन लल्लद्यद के ससुर ने सहभोज दिया। लल्लद्य अपनी दैनिक-चर्या के अनुसार घाट पर पानी भरने गई। वहाँ बातों-ही-बातों में सहेलियों ने उसे छेड़ा—आज तो तुम्हारे घर पर तरह-तरह के पकवान बने हैं, आज तो पेट भर स्वादिष्ट पदार्थ तुम्हें खाने को मिलेंगे। लल्लद्यद ने दीनता-पूर्वक उत्तर दिया—'घर में चाहे बकरा कटे या भेड़, मेरे भाग्य में तो पत्थर के टुकड़े ही लिखे हैं।[2] कहते हैं लल्लद्यद की निर्दयी सास उसे कभी भर-पेट भोजन नहीं देती थी। दिखावे के लिए थाली में एक पत्थर रखकर उसके ऊपर भात का लेप करती, नौकरों की तरह काम लेती आदि। इस समय तक लल्लद्यद को अन्तर्दृष्टि दैहिक चेष्टाओं की संकीर्ण परिसीमाओं को लाँघकर असीम में फैल चुकी थी। वह वन-वन अन्तर्ज्ञान का रहस्य अन्वेषित करने के लिए डोलने लगी। यहाँ तक कि उसने वस्त्रों की भी उपेक्षा कर दी। उसकी आचार-मर्यादा कृत्रिम व्यवहारों से बहुत ऊपर उठकर समष्टि में गोते लगाने लगी। नाचती, गाती तथा आनन्द-मग्न होकर विवस्त्र घूमती रहती। पुरुष उन्हीं को मानती जो भगवान से डरते हों और ऐसे पुरुष उसके अनुसार इस संसार में बहुत कम थे। शेष के सामने नग्नावस्था में फिर घूमने-फिरने में शर्म कैसी? एक दिन लल्लद्यद को प्रसिद्ध सूफी संत मीर सैयद हमदानी सामने से आते दिखाई पड़े। उसने एकदम अपनी देह को आवृत्त करने का प्रयास किया। निकट पहुँचकर संत हमदानी ने पूछा—हे देवी, तुमने अपनी देह की यह क्या हालत बना रखी है,

---

१. मेयस ह्यु न प्रकाश कुने, पेयस ह्यु न तीर्थ कांह।
   दयस ह्यु न बान्दव कुने, वेयस ह्यु न सोख काह॥

२. इस घटना का आधार लेकर कश्मीर में एक कहावत प्रचलित हो गई है—'ललि नीलवठ चलि न जांह' अर्थात् लल्ला के भाग्य से पत्थर कहीं टलेंगे।

तुम्हें नहीं मालूम की तुम नंगी हो। लल्लद्यद ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—हे खुदा-दोस्त, अब तक मेरे पास से केवल औरतें गुज़रती रहीं, उनमें से कोई भी पुरुष अथवा आँख वाला नहीं था। आप मुझे मर्द-खुदा तथा तत्वज्ञानी दीख पड़े, इसलिए आपसे अपनी देह छिपा रही हूँ। एक और घटना-प्रसंग इस प्रकार है। कहते हैं कि जब लल्लद्यद ने संत हमदानी को दूर से आते देखा तो वह चिल्लाती हुई दौड़ पड़ी कि आज मुझे असली पुरुष के दर्शन हो रहे हैं। वह एक बनिए के पास गई और उससे अपने तन को ढाँकने के लिए वस्त्र माँगे। बनिये ने कहा आज तक जब तुम्हें वस्त्रों की आवश्यकता नहीं पड़ी तो फिर इस समय क्यों माँग रही हो। लल्लद्यद ने उत्तर दिया—वे जो महापुरुष सामने से आ रहे हैं मुझे पहचानते हैं और मैं उन्हें। इतने में संत हमदानी समीप पहुँच गये। पास ही एक नानबाई का तन्दूर जल रहा था। लल्लद्यद तुरन्त उसमें कूद पड़ी। मुस्लिम संत पूछताछ करते वहाँ पहुँच गए और उन्होंने आवाज़ दी—ऐ लल्ला, बाहर आओ, देखो तो कौन खड़ा है। उसी क्षण लल्लद्यद सुन्दर दिव्य वस्त्र धारण किये प्रत्यक्ष हो गई।[1]

लल्लद्यद की कोई सन्तान न हुई थी। प्रकृति ने इस बन्धन से उसे मुक्त ही रखा था। कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर कहा है—'न मैं प्रसूता बनी और न मैंने प्रसूता का आहार ही किया।[2]

विपरीत पारिवारिक परिस्थितियों ने लल्लद्यद को एक नयी जीवन-दृष्टि प्रदान की। उसने अपनी समस्त अभीप्ट-पूर्तियों को व्यापक रूप दे दिया तथा अपनी आत्मा के चिर-अन्वेषित सत्य को ज्ञान एवं भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में साकार कर दिया। ये स्फुट किन्तु सरस अभिव्यक्तियाँ 'वाक्' कहलाती हैं। कबीर की भाँति लल्लद्यद ने भी 'मसि-कागज़' का प्रयोग कभी नहीं किया। उसके वाक् गेय हैं जो प्रारम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहे तथा इन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम ग्रियर्सन महोदय का नाम उल्लेखनीय है।[3]

---

१. इस घटना पर भी एक कहावत प्रचलित है—'आये वानिस त गयि कांदरस' अर्थात् आई तो थी बनिये के पास किन्तु गई नानबाई के पास।

२. 'न प्यायस, न जायस, न खेयस हून्द त न शोंठ'

३. सन् १९१४ में ग्रियर्सन ने लल्लवाक् एकत्रित कर उन्हें पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की। इस कार्य के लिए उन्होंने उस समय के प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान् प० मुकुन्दराम शास्त्री का सहयोग लिया। मुकुन्दराम ने काफी खोज की किन्तु लल्लवाक् सम्बन्धी कोई भी सामग्री उनके हाथ न लगी। एक बार वे बारामूला से ३० मील दूर 'गुश' नाम के गाँव में पहुँचे। वहीं पर इनकी भेंट धर्मदास नामक एक हिन्दू-सन्त से हुई। इस सन्त को लल्लद्यद के अनेक वाक् कण्ठस्थ थे। मुकुन्दरामजी ने इन वाखों का संग्रह कर उन्हें संस्कृत व हिन्दी रूपान्तर के साथ ग्रियर्सन महोदय को सौंप दिया। इन्हीं 'वाखों' को बाद में ग्रियर्सन ने सन् १९२० में लन्दन से प्रकाशित करवाया।

उन्होंने महामहोपाध्याय प० मुकुन्दराम शास्त्री की सहायता से १०६ वाक् एकत्रित किए तथा इन्हें 'लल्लवाक्यानि' के अन्तर्गत सम्पादित किया। यह पुस्तक सन् १९२० में रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन से प्रकाशित हुई है। श्री आर० सी० टेंपल की पुस्तक 'द वर्ड आफ लल्ला' में लल्लद्यद के वाकों का गम्भीर अध्ययन मिलता है। यह पुस्तक सन् १९२४ में विश्वविद्यालय प्रेस, कैम्ब्रिज में प्रकाशित हुई है। राजानक भास्कराचार्य का लल्लद्यद के ६० वाकों का संस्कृत रूपान्तर भी मिलता है। लल्लद्यद के वाकों का संकलन व अनुवाद करने में जिन दूसरे विद्वानों ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनके नाम हैं—सर्वश्री सर्वानन्द चरागी, आनन्दकौल बामजई, रामजू पन्डा, जियालाल कौल जलाली, गोपीनाथ रैना, जियालाल कौल, आर० के० वाँचू तथा नन्दलाल तालिब। श्री सर्वानन्द चरागी ने 'कलाम-ए-लल्लारिफा' के अन्तर्गत लल्लद्यद के १०० वाकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। श्री आनन्द कौल बामजई ने ७४ तथा रामजू पन्डा ने 'अमृतवाणी' में १४६ लल्ल-वाकों को प्रकाशित किया है। प० जियालाल कौल जलाली ने अपनी पुस्तिका 'लल्लवाक्' में ३८ वाकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। जम्मू व कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा प्रकाशित 'लल्लद्यद' १९६१ में लगभग १३५ 'वाक्' संकलित है। इस पुस्तक के सम्पादक श्री जियालाल कौल तथा श्री नन्दलाल तालिब हैं।

लल्लद्यद के 'वाक्' प्रायः छन्द-मुक्त हैं। चार-चार पादों के ये स्फुट 'वाक्' लययुक्त हैं। इनमें कवयित्री ने जीवन-दर्शन की गूढ़तम गुत्थियों को सहज-सरल रूप में गूँथ दिया है। लल्लद्यद के कृतित्व का परिचय पहली बार 'तारीख-ए-कश्मीर' (१७३० ई०) में मिलता है। इससे पूर्व वह उपेक्षिता ही रही है। श्रीवर की 'जैनराज-तरंगिणी' तथा जोनराज की 'जैनतरंगिणी' में भी उसका कोई उल्लेख नहीं मिलता है। वस्तुतः १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में लल्लद्यद के कृतित्व की ओर जनता का ध्यान गया और उसका विधिवत् महत्वांकन होने लगा।

लल्लद्यद के वाक्-साहित्य का मूलाधार दर्शन है। उसका प्रत्येक वाक् दार्शनिक-चेतना का आगार है जिस पर प्रमुखतः शैव, वेदान्त तथा सूफी दर्शन की छाप स्पष्ट है। जिस समय लल्लद्यद का आविर्भाव हुआ उस समय कश्मीर में इस्लाम-धर्म का एक विचार-पद्धति के रूप में आगमन हो चुका था। देश में घोर अशान्ति व धार्मिक अव्यवस्था व्याप्त थी। धर्मान्ध कट्टरपंथी अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों का प्रचार-प्रसार करने में दत्तचित्त थे। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विषमतायें भी जनता को आड़े हाथों ले रही थीं। ऐसे विकट क्षणों में लल्लद्यद ने जनता के समक्ष धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए जनवाणी में परमतत्व की सार्वभौमता को ऐसी व्यापक तथा सर्वसुलभ सपदिनी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया जिसमें न कोई दुराव था, न कोई आवरण और न कोई विरोध। लल्लद्यद की यह सत्य-अन्वेषिका विशुद्धता उसकी अन्तरनुभूति की देन है।

लल्लद्यद विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती है। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ था—

> गोरन दोपनम कुनुय वचुन,
> न्यबर दोपनम अन्दर अचुन,
> सुयमे ललि गोम वाख त वचुन,
> तवय ह्योतुम नंगय नचुन ॥

गुरु ने मुझे एक रहस्य की बात बताई—बाहर से मुख मोड़ और अपने अन्तर को खोज। बस, तभी से यह बात हृदय को छू गई और मैं विवस्त्र नाचने लगी।

लल्लद्यद उस सिद्धावस्था को पहुंच चुकी थी जहां स्व और पर की भावनायें लुप्त हो जाती हैं—जहां मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि भावनायें मन की सङ्कुचितता को लक्षित करती हैं, जहां पचभौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठकर विशुद्ध स्फुरणाओं का केन्द्रीभूत पुंज बन जाती है—

> युस हो मालि हेड्येम, गेल्यम मसखर करयेम
> सुय हो मालि मनस खरेम न जांह।
> शिव पनुन येलि अनुग्रह करयेम
> लुकहुन्द हेडुन में करयेम क्याह ॥

चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या तिरस्कार, मैं कभी मन में इसका बुरा न मानूंगी। जब मेरे शिव का मुझ पर अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा कहने से क्या होता है।

इस असार-संसार में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों को देखकर लल्लद्यद का अन्तर्मन विह्वल हो उठा और उसे स्वानुभूति का अनूठा प्रसाद मिल गया—

> गादुला अख वुछुम बोछि सोत्य मरान,
> पन जन हरान पोहन्य वाव लाह।
> निश बोद अख वुछुम वाजस मारान,
> तन लल्ल ब प्रारान छेन्यम नाप्राह[1] ॥

शंकर के अद्वैत का लल्लद्यद ने पूर्ण सहृदयता के साथ निरूपण किया है। सकल सृष्टि में जो गोचर है वह परमात्मा का ही व्यक्त रूप है। 'मैं ही ब्रह्म हूं', यह

---

[1] एक प्रबुद्ध को भूख से मरते देखा,
जीर्ण-शीर्ण हुआ पड़ा,
से रसोइये को पिटते देखा,
मन बाहर निकल पड़ा ॥

सुययेलि ड्यूठम निशि पानस,
सोस्य सुय त ब नो कांह ।।

धुल गई जब मैल मन-दर्पण से तो उसे अपने में ही स्थित पाया।
तब सर्वत्र ही दिखने लगा वह, और व्यक्तित्व मेरा शून्य हो आया॥

लल्लद्यद ने धर्म के नाम पर प्रचलित मिथ्याचारों, बाह्याडम्बरों तथा विरोधों का खुलकर खण्डन किया है। कबीर की भाँति उसने दोनों हिन्दुओं तथा मुसलमानों को खरी-खोटी सुनाई है। धर्म का वास्तविक अर्थ है मन की शुद्धता। वस्तुतः यही शुद्धता जीव को परमतत्व तक पहुँचा सकती है—

१—बुथ क्याह् जान छुय ब्योन्द छुय कन्य
असलच कथ जांह सनिय नो।
परान त लेखान वुठ त ओंगज गजी,
अंद्रिम दुय जांह चजिय नो ।।

मुखाकृति अत्यन्त सुन्दर है किन्तु हृदय पत्थर-तुल्य है—उसमें तत्व की बात कभी समायी नहीं। पढ़-पढ़ व लिख-लिखकर तुम्हारे होंठ व तुम्हारी उंगलियाँ घिस गई मगर तेरे अन्तर का दुराव कभी दूर न हुआ।

२—अविचारी हा मालि छि पोथ्यन परान
यिथ तोत परान राम पन्जरस,
गीता परान हस्या लबान,
पर्‌म गीता त परान छस ।।

अविचारी पोथियाँ ऐसे पढ़ते हैं जैसे तोता पिंजरे में राम-राम रटता है। ऐसे व्यक्ति गीता पढ़ते हैं तो केवल दिखावे के लिए। मैंने सचमुच गीता पढ़ी है तथा उसे पढ़ रही हूँ।

३—अटनच सान दिथ माथान भटन
सूबबोद्ध बोलान ध्यानच कथ
फट्‌स फटय नेरान तिम कति वटन,
बुरू ऐ मालि छुन्य ह गोर गद्‌य पथ ।।

एक स्थान से माल छीनकर दूसरे स्थान पर रखते हैं और ऊपर से वे योगी ज्ञान की बातें करते हैं। ऐसे पाखण्डी भला क्या प्राप्त कर सकते हैं। हे मनुष्य, यदि तू बुद्धिमान है तो इस पाखण्ड को त्याग दे।

४—शिव छुय थलि थलि रोजान
मो जान हयोर त मुसलमान,
त्रुक ए छुख त पान पर्जनाव,
सोय छय साहिबस सास्य ज़ान ।।

शिव सर्वत्र व्याप्त है। अन. हे मनुष्य, तू हिन्दू व मुसलमान मे भेद न जान यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आप को पहचान, यही रहस्य की बात है।

५—लज् कासि शीत निवारि
अन चलि करि आहार
यि कम्य उपदेश कोरये हा वटो
अचेतन वटस चेतन कठ दिन आहार ॥

यह तेरी लज्जा को ढांकता है, शीत से भी रक्षा करता है। स्वयं तृण-जल का आहार करता है। यह उपदेश तुझको किसने दिया जो तू अचेतन पत्थर पर चेतन बकरे की बलि चढ़ाता है।

लल्लद्यद ने भाग्य की अनिवार्यता को यत्र-तत्र स्वीकार किया है। भाग्य का लेख अमिट है, उसे कोई मिटा नही सकता—

हा मनुष्य क्याजि् छुख वुठान सेकि लूर
अमी रंबि हा माति पकि न नाव,
ल्यूखुय यि नाराय्न करमनि रिखी
सी मालि हुरि न फीरिथ ड्राँह ॥

हे मनुष्य तू क्यों रेत की रस्सी बनाता है, इससे तेरी जीवन-नैया पार नही लग सकती। नारायण ने तेरी जो भाग्य-रेखा खींची है वह कभी बदल नहीं सकती।

लल्लद्यद के साधना-पक्ष में योग को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह योग कोरे बौद्धिक चिन्तन का प्रतिफलन नहीं है, उसमे प्रेम की मधुरता विद्यमान है। योग की अनेक अन्तर्दशायें तथा कोटियाँ है। योगी को इन से विधिवत् गुजरना पड़ता है और तब उस अमर-तत्त्व की प्राप्ति होती है—

१—शेह वन चटिथ शशिकल वुजुम
प्रकृत वुजुम पवन सात्य।
लोलकि नार सात्य वालिज बुजुम
शंकर लोबुम तमी सात्य ॥

शरीर मे स्थित षट्चक्रो मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा को वश मे करके मैंने ब्रह्मरन्ध्र को जगाया तथा प्राणायाम द्वारा अपने अन्तर को वश मे करके प्रेम की अग्नि से उसे कुन्दन बना दिया, तब कहीं शिव के दर्शन हुए।

२—क्याह् कर पांचन दहन त काहन
वुशुन यथ लेजि करिथ यिम गय,

सारिय समहन यय रजि लमहन,
अद क्याजि रावहे कहन गाव ।।

पचभूत काया में वर्तमान पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा एक मन भिन्न दिशाओं की ओर अग्रसर हो रहे हैं। यदि ये सभी मिलकर एक ही दिश ओर प्रवृत हों तो निश्चय ही परम-सत्य की प्राप्ति सुगम होगी।

इस असार संसार मे कोई भी वस्तु चिर-स्थायी नहीं है। चिर-स्थायी केवल शिव हैं—

दमी ड्याठुम नद प्रज़वनी
दमी ड्यूठुम सुम नत तार
दमी ड्याठुम थर फोलवनी
दमी ड्यूठुम गुल नत खार ।।

अभी-अभी नदी को गर्जते देखा, अभी अभी उस पर पुल बनते देखे। अभी फलों से लदी डाली देखी और अभी अभी उस पर फूल देखे न काँटे।

लल्लद्यद का कृतित्व सांस्कृतिक पुनर्जागरण, मानवकल्याण तथा सामा पुनरुत्थान की दार्शनिक अभिव्यक्ति है जिसमें सरसता, स्पष्टता एवं सजीवता एक गुम्फित है। उसके वाकों में धर्मदर्शन सम्बन्धी तथ्यों की प्रधानता के साथ काव्यात्मक सौन्दर्य की गहनता भी विपुल मात्रा में दृष्टिगत होती है। अपनी भावना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए कवयित्री ने प्रमुखतया उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभ अनुप्रास आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। अप्रस्तुत-विधान के अन्तर्गत सर्वाधि कार्य व्यापार साधारण जनजीवन से लिये गये हैं जिनमें सहजता के साथ-साथ पर्या अभिव्यंजना शक्ति समाहित है। रस-परिपाक की दृष्टि से सम्पूर्ण वाक्-साहित्य प्राय. शान्तरस की प्रबलता है।

भाषागत दृष्टि से लल्लद्यद के वाक् विशेष महत्व के हैं। लल्लद्यद से पूर्व की भी ऐसी रचना नहीं मिलती जो कश्मीरी मे लिखी गई हो। यद्यपि कुछ विद्वा शितिकण्ठ की 'महानयप्रकाश' को कश्मीरी की प्रथम कृति मानते हैं किन्तु उस भाषा कश्मीरी के उतनी निकट नहीं है जितनी लल्लद्यद के वाकों की है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इन वाकों का अध्ययन अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। लल्लद्यद की भाषा मूलतः संस्कृत-निष्ठ है जिसपर यत्र-तत्र फारसी-अरबी शब्दों का प्रभाव भी मिलता है। संस्कृत के अनेक शब्द कवयित्री ने अपने मूल रूप में प्रयुक्त किये हैं जैसे—प्रकाश, तीर्थ, अनुग्रह, कर्म, वायव, मूढ़, मनुष्य, नारायण, मन, जीव, शून्य, उपदेश, अचेतन, आहार, शिव, हर, गगन, भूतल, पवन, पाप, दीप, शम्भु, धर्म, ज्ञान, नाम, शीश, मूर्ख, पण्डित, मान, संन्यास आदि। किन्हीं संस्कृत शब्दों का कश्मीरी-रूपान्तरण करके प्रयोग किया गया है जैसे—समसार=संसार, दर्पण...

दर्शन, बोद=बुद्धि, गोपत=गुप्त, सोख=सुख, मोख=मुख, शिन्य=शून्य, लज=लज्जा, रख=रेखा, त्रेशना=तृष्णा, आदि। अरबी-फारसी से लिये गए कुछ शब्द इस प्रकार हैं—साहिब, दिल, जिगर, मुश्क, गुल, खार, बाग, कलमा, शिकार, आदि।

## शेख नूरद्दीन वली

शेख नूरद्दीन वली को कश्मीरी जनता उनके लोकप्रिय नाम 'नुन्दर्योश' से अधिक जानती है। नुन्दर्योश कश्मीरी ऋषि-सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत कवि हुये हैं। ऋषि सम्प्रदाय का कश्मीर के धार्मिक-संचेतना विकास-क्रम में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। 'ऋषि' मूलतः संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ है—मन्त्रद्रष्टा, वेदमन्त्रों का साक्षात्कार और प्रकाशन करने वाला, बहुत बड़ा तपस्वी, मुनि आदि।[1] फारसी शब्द 'दिलरेश' से इस शब्द की व्युत्पत्ति का अनुमान करना असंगत है। यह ऋषि-सम्प्रदाय जिन मूलभूत धार्मिक सिद्धान्तों पर केन्द्रित है उनमें प्रमुख हैं—चर-अचर में आत्मा की समान स्थिति आत्म-संयम, सदाचार आदि। इस सम्प्रदाय के अनुयायी प्रायः विवस्त्र रहते हैं, घर-गृहस्थी से मुख मोड़ लेते हैं, मांसाहार का त्याग करते हैं केवल सामान्य भोजन-शाक आदि पर गुज़ारा करते हैं, एकान्तप्रिय होते हैं तथा अत्यधिक भावुक होने के कारण कवितायें भी करते हैं। कश्मीर मे ऋषि-सम्प्रदाय का आविर्भाव १४वीं शताब्दी से माना जाता है। इस सम्प्रदाय पर इस्लाम-धर्म का विशेष प्रभाव है। सुलतान शहाबुद्दीन (१३७२ ई०) के राजत्वकाल मे जब सैयद अली हमदानी कश्मीर आये तो उन्होंने यहां इस्लाम-धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिये भरसक प्रयत्न किए। उनके संग सात सौ मुस्लिम संत (सादात) भी आये थे। ये संत कश्मीर पहुँचकर यहाँ विभिन्न स्थानों मे रहने लगे। कश्मीरी ऋषि जहाँ अपनी उदार धार्मिक नीति, अपने आचरण, सदाचार एवं सादगी से जनता का हृदय जीत रहे थे वहाँ इस्लाम के ये अनुयायी धार्मिक-कट्टरता का परिचय देने लगे। इस्लाम के अनुयायियों ने उदारवादी दृष्टिकोण को न अपना-कर अपने धर्म को ठेठ ईरानी-इस्लाम के रूप में प्रचारित किया जिसमे अन्य किसी भी धर्म के समावेश की गुंजाइश न थी।[2] कश्मीरी ऋषि-सम्प्रदाय इस्लाम-धर्म की अनुदारता को स्वीकार करने के लिये कदापि तैयार न था। परिणामस्वरूप इस विषय को लेकर दोनों मे अन्तर्द्वन्द्व आरम्भ हो गया। एक धर्म के उदार पक्ष को प्राथमिकता देने लगा और दूसरा उसकी संकीर्णता पर जोर देने लगा। ऐसे विषम वातावरण में शेख नूरद्दीन वली का एक सच्चे धार्मिक नेता के रूप मे आविर्भाव हुआ। उन्होंने धर्म के उदारवादी दृष्टिकोण को सर्वोपरि माना। धर्म के समन्वयवादी दृष्टिकोण को दृढ़तर करने के लिये उन्होने ऋषि-सम्प्रदाय को एक नई दिशा प्रदान की जिससे यह

---

१. ज्ञान-शब्द-कोश पृ० १२६

२. 'नूरनामा' सं० अमीन कामिल, पृ० २५

सम्प्रदाय उनके हाथों खूब पनपा और वे एक प्रकार से इस सम्प्रदाय के बानी हो गये। इससे पूर्व लल्लद्यद ने जिस सर्वधर्म की प्रतिष्ठा की थी उसी परम्परा में शेख नुरुद्दीन वली ने अपने सद्प्रयत्नों द्वारा ऋषि-सम्प्रदाय को चलाया। भक्ति व ज्ञान की इस नूतन चेतना-लहर का तत्कालीन जनता ने सहर्ष स्वागत किया तथा इसकी लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अनेकों इस नवीन धर्म सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये तथा इसके मूलभूत सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने में जुट गये। ये सभी अनुयायी ऋषि कहलाए। इनकी अनेक ज़ियारत-गाहें अब भी कश्मीर में यत्र-तत्र मिलती हैं। सदाचार इनकी जीवन-पद्धति का प्रधान अंग था। अब्बुल फ़ज़ल ने 'आईन-ए-अकबरी' में इन ऋषियों के सम्बन्ध में लिखा है कि ये कश्मीर के अत्यन्त सम्मानित व्यक्ति थे। ईश्वर के ये सच्चे भक्त न किसी धर्मसम्प्रदाय के विरुद्ध थे और न किसी से कुछ माँगते थे, न ये माँस का आहार करते और न गृहस्थी में फँसते। धार्मिक-सहिष्णुता इनका विशेष सम्बल था। कश्मीर में इस समय दो हज़ार के करीब ऋषि मौजूद हैं।[१] ऋषिनामों में विभिन्न ऋषियों का नामोल्लेख उनकी ज़ियारतगाह सहित मिलता है। कुछ नाम इस प्रकार हैं—

| ऋषि का नाम | ज़ियारत-गाह का नाम |
|---|---|
| १. रुमर्‌योश | रामोह |
| २. लदरमनर्‌योश | आरीराव |
| ३. खलासमन | येजिब्रोर |
| ४. पलासमन | येजिब्रोर |
| ५. ज़ेगिर्‌योश | चूर |
| ६. सोजन | इक्हाल |
| ७. बाबा संगर्‌योश | काग |
| ८. रैगी र्‌योश | कोश शेरकोट |
| ९. रत्ती र्‌योश | मंगनीपोरा |
| १०. बाबा सदमल | हिन्दोल पोरा |
| ११. वूत्य माजी | बोठू |
| १२. महदीर्‌योश | रेशीपोरा |
| १३. फकीरर्‌योश | ऐशमुकाम |
| १४. हाकर्‌योश | ऐशमुकाम |
| १५. रोपर्‌योश | ऐशमुकाम |
| १६. ख्वाजाबाबा | बदरकोट |
| १७. कमीर्‌योश | चूर |
| १८. सहीर्‌योश | दारा सैंदपोर |

१. 'नूरनामा', स० अमीन कामिल पृ० २८

| ऋषि का नाम | जियारत-गाह का नाम |
|---|---|
| १६. शकरर्‌योश | येजिब्रोर |
| २०. सालारुद्दीन | केमु |
| २१. सदर माजी | केमु |
| २२. जयदेदी | केमु |
| २३. बाबा नन्दर्‌योश | नागनारत |
| २४ बाबा शमसद्दीन | तारिगोम |
| २५. रतनर्‌योश | बुमिजुव |
| २६. शगर्‌योश | अनन्तनाग |
| २७ नूरुद्दीनर्‌योश | चूरार इत्यादि । |

शेख नूरुद्दीन वली की जीवनी के सम्बन्ध मे जो सामग्री मिलती है, वह
त्यतः विभिन्न ऋषिनामों पर आधारित है। ऋषिनामे वे काव्यकृतियाँ हैं जो विभिन्न
रचि-सम्पन्न मुसलमान सन्तो ने ऋषियो की प्रशसा मे आज से लगभग ३०० वर्ष
ई समय-समय पर लिखी हैं। इनकी भाषा फारसी है। इन ऋषिनामो के लेखकों
नसीवउद्दीन गाजी, बाबा खलील तथा बाबा कमाल के नाम उल्लेखनीय हैं। इन
नों के ऋषिनामे अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन होने के कारण विशेष महत्त्व रखते हैं।
रमे नूरुद्दीन वली की जीवनी से सम्बन्धित जो तथ्य मिलते हैं वे अतिशयोक्तिपूर्ण ढग
वर्णित किये गये है। इनमे नूरुद्दीन की दिव्यता, अलौकिकता आदि का ही वर्णन
हुग्रा है। जिसके कारण उनकी जीवनी-विषयक मूल सूचनायें दब-सी गई हैं। फिर भी
: ऋषिनामो के आधार पर शेख नूरुद्दीन वली की जीवनी-सम्बन्धी जो सूचनायें
लती हैं, वे इस प्रकार हैं:—शेख नूरुद्दीन के पूर्वज किश्तवाड़ के राजवश से सम्बन्ध
ते थे और सज नाम से प्रसिद्ध थे। इस वश के दो भाई किश्तवाड मे बढ़ती हुई
शान्ति के कारण कश्मीर भाग आये। एक भाई वर्तमान दोदरकूट (तहसील कुलगाँव)
बस गया और दूसरे भाई ने जिसका नाम योगरा-सज था वर्तमान चूरार के समीप
लसर गाँव के मुखिया सरदार सलमनी वानी के यहाँ शरण ली। योगरासज अपनी
ाप योग्यता के कारण सलमनी वानी का विश्वसनीय पात्र बन गया तथा तिलसर गाँव
मनसबदार बना दिया गया। एक दिन सलमनी वानी शिकार खेलने के लिये पास के
गाँव 'ह्राजनकोट' गया और शासनाधिकार योगरासज को सौंप दिया। इसी बीच
नी वानी के एक पुराने प्रतिद्वन्द्वी मुकन्दर-राजा ने मौके से लाभ उठाकर तिलसर
आक्रमण किया। योगरासज ने आक्रमण का बहादुरी के साथ प्रतिकार किया
र अन्त मे मारा गया। इधर जब सलमनी वानी ने यह खबर सुनी तो वह तुरन्त
रस्थल पर पहुँच गया तथा मुकन्दर-राजा को बुरी तरह खदेड़ दिया। इसके बाद
ी वानी ने योगरासज के पुत्र सालारगीर को उनके पिता का पद प्रदान किया।
गीर के पुत्र का नाम [illegible] के दो पुत्र हुये—शन्दू और सोन्दू।

दूसरा पुत्र यानी सालू अत्यन्त वीर एवं पराक्रमी था। वह जकासंज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके दो पुत्र थे। हुनरसंज तथा सलरसंज। सलरसंज स्वभाव से अत्यन्त गंभीर प्रकृति का था। वह परमसत्य की खोज में कई वर्षों तक इधर-उधर भटकता रहा। अन्त में प्रसिद्ध मुसलमान-संत सैयद हुसैन समनानी के सम्पर्क में आकर उसे सद्गति प्राप्त हुई और उसने इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया। सैयद समनानी ने उसे शेखसालार उपनाम से विभूषित किया। उसका विवाह 'सदरमाजि' नाम की एक विधवा से हुआ और वे दोनों 'क्योमोह' गाँव में रहने लगे। सदरमाजि की पहले पति से दो सन्तान थीं—शुरा और गन्दर। सितम्बर सन् १३७६ में शेखनूरुद्दीन ने जन्म लिया। प्रारम्भ में इनका नाम 'नुंद' रखा गया। कहते हैं कि जन्मोपरांत नूरुद्दीन ने कई दिनों तक माँ का दूध नहीं पिया। एक दिन प्रसिद्ध संतयोगिन लल्लद्यद वहां पहुंच गई और उसने अपनी उंगली नूरुद्दीन के मुंह में रखकर फटकार लगाई—जन्म लेने मे जब तुम्हें शर्म नहीं आयी तो फिर दूध पीने मे क्यों शर्माते हो। तभी उंगली से स्तनों की भाँति टप-टप दूध की धारा गिरने लगी और नूरुद्दीन पीने लगा।

शेख नूरुद्दीन के जीवन में बाल्यकाल से ही विरक्ति के संस्कार मिलते हैं। जब शेख साढ़े-चार वर्ष के हुये तो उनकी माता ने उन्हें विद्यार्जन के लिये एक उस्ताद के पास भेजा। शेख ने अपने अकाट्य तर्कों से भौतिक विद्यार्जन का खंडन किया तथा वे मकतब छोड़कर अपने घर चले आये। जब वे तेरह वर्ष के हुये तो उनके पिता इस संसार से चल बसे। शेख में सांसारिकता के प्रति रुचि पैदा करने के लिये उनकी शादी सागाम (अंग) गांव की एक खातून जय से कर दी गई। तीन वर्षोपरान्त शेख एक पुत्री (जून) के पिता हो गये। पुनः तीन वर्षों के बाद उनके एक पुत्र हैदर हुआ। एक दिन माँ सदरमाजि ने शेख से कहा, बेटे, अब तू दो बच्चों का बाप हो गया है, जीविकोपार्जन के लिये कुछ दौड़-धूप तो कर। शेख एक जुलाहे के पास काम सीखने के लिये गये किन्तु वहां पर भी उनका मन न लग सका। उनका विरक्त मन विह्वल हो उठा तथा उन्होंने सांसारिक सुखों का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया। कई दिनों तक केवल जल का सेवन करते रहे और एक गुफा में बैठकर परमात्म-चिन्तन में लीन हो गये। इसके बाद उन्होंने कश्मीर के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया। १२ वर्षों तक वे दरिगाम में शांगी गनय नामक एक जमींदार के यहाँ रहे। एक वर्ष तक चमर देवसर में, सात वर्षों तक कोचीपुर बीरु में और पुनः सात वर्षों तक रोपवन में गुप्तवास करते रहे। ६३ वर्ष की आयु में सन् १४३८ ई० में उनका देहावसान हुआ। कहते हैं कि उनके जनाज़े में तत्कालीन कश्मीरी सुलतान बड़शाह भी शरीक हुये थे।[1]

शेख नूरुद्दीन का कलाम श्रुक[2] कहलाता है। यह कलाम उन अमृत-वचनों पर

१. 'नूरनामा' सं० अमीन कामिल, पृ० ३२
२. 'श्रुक' सम्भवतः संस्कृत के 'श्लोक' शब्द का विकृत रूप है।

आधारित है जो उन्होंने समय-समय पर अपने शिष्यों एवं अनुयायियों को कहे थे। इनके पाँच प्रिय शिष्य थे- १- बाबा बामद्दीन (बुमिसाद), २-जैनद्दीन (जयासिंह), ३- बाबा लतीफद्दीन (लदीरैना), ४- बाबा नसीरद्दीन और ५- बाबा कुतुबद्दीन (वितपण्डित)। इन शिष्यों में से बाबा कुतुबद्दीन (वितपण्डित) सदैव शेख के संग रहते तथा उनके अमृत वचनों को लिपिबद्ध करते जाते।

शेख नूरद्दीन के साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है, १. श्रुक अथवा श्लोक-साहित्य और २. वाय-वन्दी अथवा गीतिसाहित्य। श्रुक प्रायः चार-चार पादों के ऐसे छन्द हैं जिनमें पहले व तीसरे तथा दूसरे व चौथे पाद की अन्तिम मात्रायें एक दूसरे से मिलती हैं। इन श्रुकों द्वारा कवि ने धर्मदर्शन के गूढ़तम रहस्यों को व्यक्त किया है। प्रत्येक श्रुक में एक स्वतन्त्र विचार समाहित है। 'वायवन्दो' के अन्तर्गत कवि ने इस्लामी धर्म के मूलभूत अंगोपांगों तथा निमाज, स्नान, रोजा आदि का गहन विवेचन किया है। ये सभी गीत गेय हैं। शेख नूरद्दीन के कलाम के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

१—दोद त्राविथ पोन्य युस मन्दे
मु समसारस कन्दे जाव,
पर त पान युस हयुहुय वन्दे
सुपर्वा स्मन्दे तारिथ नाव ॥

जो दूध को छोड़कर पानी को मथते हैं उनका इस संसार में जन्म लेना व्यर्थ है। जो स्व और पर को एक समान समझते हैं वे भाव-सागर के पार हो जाते हैं।

२—नफसय मोरुम त वाये
खटिथ ह्युम गटे,
अथि यी हेम वयाये
करतल शुनहास हटे ॥

हाय, मुझे माया-जाल ने मार डाला। वह माया अन्धेरे में छिपकर बैठी हुई हैं। काश मेरे हाथ लगती! मैं उसके गले में कटार घोंप देता।

३—यस ग्रोर यमुन योर वसे
तस आलम वदि त लसि मो,
युस डायन गजन तल च्से
सुय नबी आसि त खसि मो ॥

जिसके पास यम का संदेश आया हो यदि उसके लिये सारा आलम रोये तो भी वह जीवित नहीं रह सकता। जो ढाई गज जमीन में धंस गया वह वापस जीवित नहीं हो सकता भले ही वह स्वयं नबी ही क्यों न हो।

४—ख़ूरि रोस्तुय जहाज तोरुम
मोरुम मद सूब त मोह,——

मैंने अपना जहाज बिना पतवार के पार लगा दिया—मद, लोभ और मोह को नष्ट करके।

५—ग्रादनय करख त ग्रद न लगी
ग्रादनय करख त लगी सूत्य,
यिम फल ववख छ्रय क्योह् खगी
यिम तति ग्राखरस लोनख क्रूत्य ॥

जो काम प्रारम्भिक अवस्था में हो सकता है, वह बाद में किया नहीं जा सकता। जो काम प्रारम्भिक अवस्था में किये जायें वहीं अन्त समय तक साथ देते हैं। यहाँ जो जैसा बीज बोता है वहाँ वैसा ही फल पाता है।

६—सर्फस चलिजे ग्रस्तस लंडस
सहस चलिजे कुहस ताम,
बीनदारस चलिजे वरीहस लंडस
सानिस चलिजे न प्रयमुहूरताम ॥

साप से गज भर दूर, शेर से एक कोस दूर तथा पाखण्डी से साल-भर दूर रहना चाहिए। किन्तु भाग्य (तकदीर) से क्षण भर के लिए भी दूर नहीं रहा जा सकता।

७—पानस मोल युस पजि न हारि
बेयिस सात्य करि न मान मान,
पर त पान युस सदरस तारि,
सु है पजि त जि मुसलमान ॥

जो अपने को कौड़ी के समान निर्मूल्य समझे, दूसरों के साथ मनमानी न करे, स्व और पर में कोई अन्तर न समझे—वही सच्चा मुसलमान है।

८—साहिबो केंह गयि चाने बेरि
केंह गयि बेरि क्रकि गुमराह,
केंह्न क्वरि छि थोरा बन शेरि
केंह्न क्वर छि स्याह् चाह् ॥

हे भगवान, कुछ तो तुम्हारे रास्ते गए—तर गए। कुछ बेचारे ज्ञान की भूल के कारण गुमराह हो गए। कइयों की कई जुनों में मग्न उठी और कइयों की बर्फों में बाग्यें बह गई।

९—साहिब बोह् छकि बोर करे
बब अपमारन करि गुनगार,
बर्षेन त बामबाब च्यव छुरि-छुरे
न बब् बब दुम्नाब न दिवम बार ॥

माजि कोरि प्रयवास करिय नेरन
दोह् यम बरन परयन सूत्य ॥

आने वाले समय के लक्षण कुछ ऐसे होंगे—नाशपाती व सेब खूबानियों के संग पकने लगेंगी (यद्यपि दोनों भिन्न ऋतुओं में पकती हैं) माताएँ और पुत्रियाँ एक साथ हाथों मे हाथ डालकर स्वच्छन्दगामिनी होंगी तथा परायों के यहाँ दिन बितायेंगी। (कवि का सकेत कलियुग में बढ़ते हुए पापाचार की ओर है।)

१५—धारबल मंज़ नागा रोवुस
सादा रोवुस चूरन मंज़,
मुदगरन मंज़ गोरा रोवुस
राजहॉंज़ रोवुस कावन मंज़ ॥

झरनो के बीच एक स्रोत खो गया, चोरों के बीच एक सन्त खो गया, मूर्ख-मण्डली के बीच एक गुरु खो गया तथा कौवों के बीच एक राजहंस खो गया। (कवि का संकेत कुसंगत के दुष्प्रभाव की ओर है)।

नुरुद्दीन का काव्य उस युग का प्रतिनिधित्व करता है जो धार्मिक सहिष्णुता एवं वैचारिक-संक्राति का सम्बल लेकर एक नयी धार्मिक-संचेतना को जन्म दे रहा था। लल्लद्यद की भाँति ही नूरुद्दीन ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को जनता के सामने रखने का प्रयास किया। सदाचार उनके धर्मनिरूपण का एक अनिवार्य अंग था। उनका एक-एक श्रुक (श्लोक) सारगर्भित है जिसमें धर्म-दर्शन की व्याख्या अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से की गयी है। जिस कार्य को लल्लद्यद ने अपने हाथों में लिया था उसे बाद में नूरुद्दीन ने एक सच्चे अनुयायी के रूप में पूर्ण किया। उस महान कवयित्री को नूरुद्दीन ने अपनी श्रद्धांजलि यों अर्पित की हैं—

तस पदमानपोरचि लल्ले
तमि गले अमृयत चव,
सो सान्यति अवतार लोलय
तिथ्य मे वर दितम खोदायि ॥

पांपोर की उस देवी लल्लद्यद ने अपने गले से जिस प्रकार अमृत-कण उगले, वैसा ही वरदान हे खुदा, मुझे भी मिले।

शामबीबी'

ये शेखनूरुद्दीन वली की समकालीन कवयित्री हैं। ऋषि संप्रदाय की कवयित्रियों में इन्हें एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इनका जन्म व मरण काल अविदित है। कहते हैं कि पुष्कर गाँव में इन्होंने काफी समय तक निवास किया और बाद में वहीं पर इनका देहान्त हुआ। पुष्कर में इनकी जियारत-गाह मौजूद है। इनके लिए प्रसिद्ध है कि शादी के पहले दिन जब वे अपने पति के घर जा रही थीं तो अकस्मात् शेख

नूरद्दीन सामने से आते दिखाई पड़े। शेख की दिव्यता ने उन्हें प्रभावित किया और वे डोली से उतर कर शेख के चरणों में गिर पड़ीं। शेख उनकी भक्ति-भावना से प्रभावित हुए और उन्हें प्रवृत्ति की ओर प्रेरित होने का उपदेश देकर लौटा दिया।

शामबीबी का सम्पूर्ण काव्य प्रायः लुप्त हो चुका है। शेख नूरद्दीन वली की मृत्यु पर रचा गया इनका केवल एक शोकगीत (मरसिया) मिलता है। इस गीत से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

नुन्द संज गव सोरगस मोतो
असि सञ गव सोरगस मोतो
हज़रत अमीर सन्दि चाटो——।

नुन्द मस्ताना स्वर्ग चला गया, हाय! हमारा धर्मगुरु स्वर्ग चला गया। हज़रत अमीर हमदान का शिष्य स्वर्ग चला गया——।

सुलतान का शौक बन गया था। विद्वानों को सम्मान देना तथा उनकी सुख-सुविधा के लिये समुचित साधन जुटाना इस सुलतान की विशेषता थी। ऐसे कलाकारों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं जो साहित्य, संगीत आदि कलाओं के क्षेत्र में साधनारत थे। अनेक को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कश्मीर से बाहर देशों में भेजा गया। उनके परिवार वालों को भी सरकारी कोष से आर्थिक सहायता मिलती थी। इसी प्रकार सिन्ध, बुखारा, हिन्दुस्तान, अरब, रोम आदि से भी उच्चकोटि के अरबी, फारसी, संस्कृत आदि के विद्वानों को बुलाया गया तथा उन्हें उचित वेतन देकर कश्मीर में बसाया गया।[1] कहा जाता है कि बड़शाह ने अपने प्रयत्नों से एक अपूर्व पुस्तकालय भी तैयार कराया था जिसमें फारसी, संस्कृत तथा कश्मीरी भाषाओं की अत्यन्त दुर्लभ पुस्तकें संगृहीत थीं। यह पुस्तकालय सुलतान के राज्यकाल के पश्चात् लगभग १०० वर्ष तक रहा। इसके बाद काल के क्रूर हाथों द्वारा इस पुस्तकालय की सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। 'तवारीखे बड़शाही' में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है–'इस प्रकार सुलतान ने एक ऐसा अपूर्व पुस्तकालय तैयार कराया जो उस समय के अन्य किसी भी बादशाह के पास नहीं था। सुलतान के बाद यह पुस्तकालय एक सौ वर्ष तक सुरक्षित रहा और तत्पश्चात् इसकी सारी संपत्ति नष्ट हो गई...।'[2] 'तवारीखे-रशीदी' में उल्लिखित है कि सुलतान की राजधानी नौशहरा में न केवल एक उच्चकोटि का दवाखाना तथा लंगरखाना था अपितु वहाँ पर एक अपूर्व शिक्षा व अनुसंधान केन्द्र भी था। इस केन्द्र में मुल्ला पारसा, मुल्ला अहमद, मुल्ला नादरी जैसे प्रसिद्ध विद्वान कार्यरत थे।'[3]

जैनउलाबदीन बड़शाह के शासनकाल में जिन कवियों ने कश्मीरी में काव्य-रचना की उनमें उल्लेखनीय हैं—श्रीवर, सोमपण्डित, बाबा नसीरुद्दीन, बाबा कमालुद्दीन, योधभट्ट और भट्ट-अवतार।

## श्रीवर

ये सुलतान जैनउलाबदीन के शासनकाल के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं इतिहासज्ञ थे। संगीतकला में भी पारंगत थे। इनके गुरु का नाम जोनराज था। जोनराज ने सुलतान जैनउलाबदीन के कहने पर प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण की राजतरंगिणी में ११४९ ई० से लेकर १४५९ ई० तक के ऐतिहासिक घटनाओं को जोड़कर 'जैनतरंगिणी' लिखी थी। इनके कार्य को श्रीवर ने आगे बढ़ाया और उन्होंने अपनी 'जैनराजतरंगिणी'

---

१. 'तवारीखे-बड़शाही', मुहम्मदसफदीन गौरी, पृ० ३५६
२. वही पृ० ३४३
३. 'तवारीखे-रशीदी', मिर्ज़ा हैदर। यह इतिहास-ग्रन्थ १५४१ ई० से लेकर १५४६ ई० के बीच लिखा गया है।

मे सन् १४५९ ई० से लेकर १४८६ तक की सभी ऐतिहासिक घटनाओं को उसमे सम्मिलित किया। उक्त दोनों इतिहास-ग्रन्थ सस्कृत भाषा में लिखे गए हैं। श्रीवर ने जामी की प्रसिद्ध मसनवी 'यूसुफ जुलैखा' को भी 'कथाकौतुक' शीर्षक से सस्कृत मे रूपान्तरित किया है।

श्रीवर कश्मीरी में भी कवितायें करते थे किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी कश्मीरी मे विरचित कोई भी कृति उपलब्ध नही है। विद्वानों के मतानुसार वाल्मीकि की 'वशिष्ठ ब्रह्मदर्शन' का श्रीवर ने ही कश्मीरी में अनुवाद किया था। श्रीवर ने अपनी 'जैनराज-तरंगिणी में लिखा है—राजा ने 'वशिष्ठ ब्रह्मदर्शन' के श्लोकों को मेरे कण्ठ से सुना और वे उनमें निहित आध्यात्मिक-सन्देश की मार्मिकता से प्रभावित हुए। जनसाधारण तक इस ज्ञान-गर्भित संदेश को सुलभ कराने हेतु उन्होंने इन श्लोकों को फारसी तथा कश्मीरी में रूपान्तरित कराया।[1]

## सोम पण्डित

सोम पण्डित उत्पसोम के नाम से भी प्रसिद्ध है। ये फारसी, तिब्बती, सस्कृत, दर्शनों तथा कश्मीरी भाषाओं के ज्ञाता थे। कश्मीरी मे लिखित इनकी काव्य-कृति 'जैनाचरित' का उल्लेख मिलता है। इस कृति में सुलतान जैनउलाबद्दीन के जीवन तथा उनकी उपलब्धियों का वर्णन किया गया था। श्रीवर ने सोम पण्डित के सम्बन्ध मे लिखा है कि सोमपण्डित सस्कृत तथा कश्मीरी मे कवितायें करते थे। उन्होंने बडशाह के जीवन की समस्त घटनाओं को कश्मीरी मे पद्यबद्ध किया था और यह पुस्तक सुलतान को भेंट की गई थी।[2] सोम पण्डित सगीतकला मे भी पारगत थे। उन्होने सस्कृत मे सगीतकला पर एक पुस्तक लिखी थी जिसका नाम 'माणक' बताया जाता है।[3]

बाबा नसीरउद्दीन तथा बाबा बामउद्दीन उच्चकोटि के मुसलमान-सन्त थे। शेखनूरुद्दीन वली के सात्विक जीवन से प्रभावित होकर इन्होंने भी परमात्म-साधना को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था। कहा जाता है कि ये दोनो सन्त कश्मीरी में कवितायें करते थे। इस समय दोनों का कलाम या तो लुप्त हो चुका है या तत्कालीन अन्य कवियों के कलाम के साथ घुलमिल गया है।

## योधभट्ट

सुलतान सिकन्दर के शासनकाल में योधभट्ट के पूर्वज कश्मीर छोडकर महाराष्ट्र मे जाकर बस गये थे। जैनउलाबद्दीन के राजत्वकाल में योधभट्ट कश्मीर लौट आये। ये संस्कृत और कश्मीरी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। नाट्यकला मे पारंगत थे।

---

१. कॉशिरि अदबुच तारीख, अवतार कृष्ण रहबर, पृ० १८८

२. वही पृ० १८९

३. वही पृ० १८८

सुलतान का शौक बन गया था। विद्वानों को सम्मान देना तथा उनकी सुख-सुविधा के लिये समुचित साधन जुटाना इस सुलतान की विशेषता थी। ऐसे कलाकारों को सहायतावृत्तियाँ प्रदान की गई जो साहित्य, संगीत आदि कलाओं के क्षेत्र में साधनारत थे। अनेक को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कश्मीर से बाहर देशों में भेजा गया। उनके परिवार वालों को भी सरकारी कोष से आर्थिक सहायता मिलती थी। इसी प्रकार सिन्ध, बुखारा, हिन्दुस्तान, अरब, रोम आदि से भी उच्चकोटि के अरबी, फ़ारसी, संस्कृत आदि के विद्वानों को बुलाया गया तथा उन्हें उचित वेतन देकर कश्मीर में बसाया गया।[1] कहा जाता है कि बड़शाह ने अपने प्रयत्नों से एक अपूर्व पुस्तकालय भी तैयार कराया था जिसमें फारसी, संस्कृत तथा कश्मीरी भाषाओं की अत्यन्त दुर्लभ पुस्तकें संगृहीत थीं। यह पुस्तकालय सुलतान के राज्यकाल के पश्चात् लगभग १०० वर्ष तक रहा। इसके बाद काल के क्रूर हाथों द्वारा इस पुस्तकालय की सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। 'तवारीखे बड़शाही' में इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है-'इस प्रकार सुलतान ने एक ऐसा अपूर्व पुस्तकालय तैयार कराया जो उस समय के अन्य किसी भी बादशाह के पास नहीं था। सुलतान के बाद यह पुस्तकालय एक सौ वर्ष तक सुरक्षित रहा और तत्पश्चात् इसकी सारी संपत्ति नष्ट हो गई…'।[2] 'तवारीखे-रशीदी' में उल्लिखित है कि सुलतान की राजधानी नौशहरा में न केवल एक उच्चकोटि का शफ़ाखाना तथा लगरखाना था अपितु वहाँ पर एक अपूर्व शिक्षा व अनुसंधान केन्द्र भी था। इस केन्द्र में मुल्ला पारसा, मुल्ला अहमद, मुल्ला नादरी जैसे प्रसिद्ध विद्वान कार्यरत थे।'[3]

जैनउलाबद्दीन बड़शाह के शासनकाल में जिन कवियों ने कश्मीरी में काव्य-रचना की उनमें उल्लेखनीय हैं—श्रीवर, सोमपण्डित, बाबा नसीरअलद्दीन, बाबा बामअलद्दीन, योधभट्ट और भट्ट-अवतार।

### श्रीवर

ये सुलतान जैनउलाबद्दीन के शासनकाल के एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ एवं इतिहासज्ञ थे। संगीतकला में भी पारंगत थे। इनके गुरु का नाम जोनराज था। जोनराज ने सुलतान जैनउलाबद्दीन के कहने पर प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण की राजतरंगिणी में ११४९ ई० से लेकर १४५९ ई० तक के ऐतिहासिक वृत्तों को जोड़कर लिखी थी। इनके कार्य को श्रीवर ने आगे बढ़ाया और उन्होंने अपनी

---

१. 'तवारीखे-बड़शाही', मुहम्मदअलद्दीन फौक, पृ० ३४६
२. वही पृ० ३४३
३. 'तवारीखे-रशीदी', मिर्ज़ा हैदर। यह इतिहास-ग्रन्थ ई० के बीच लिखा गया है।

# गीतिकाल

## (१५५०-१७५०)

शाहमीरी-वंश का शासन कश्मीर पर लगभग २६६ वर्षों तक रहा। इस वंश के उल्लेखनीय सुलतान जैनउलाब्दीन 'बडशाह' के सद्प्रयत्नों से उनके शासनकाल में कश्मीरी भाषा और साहित्य ने जिस आशातीत गति से बहुमुखी उन्नति की थी वह गति बाद के सुलतानों के राजत्वकाल में मन्थर पड गई या यों कहिये रुक गई। शाहज़ादे राजाधिकार को प्राप्त करने के लिए आपस में लडते-भिडते रहे तथा एक-दूसरे के विरुद्ध षडयन्त्र तथा प्रपंच रचने लगे। सुलतान फतहशाह (१५१४ ई०) के समय में स्थिति और भी विकट हो गई। विभिन्न मौकापरस्त जागीरदारों ने अव्यवस्थित शासन प्रणाली से लाभ उठाकर खुले-आम बगावत कर दी। उन्हें चुप कराने हेतु कश्मीर घाटी को चार हिस्सों में बाँटा गया और तीन हिस्सों का राजाधिकार खुद-मुख्तार जागीरदारों को सौंपा गया। जागीरदारों की बढ़ती हुई बदअमली के कारण सुलतान मुहम्मदशाह(१५२६ई०)के समय घाटी को पुनः पाँच हिस्सों में तक़सीम किया गया। यहाँ तक कि सुलतान नाज़ुकशाह (१५४० ई०) के समय में केन्द्रीय शासन बिल्कुल नाममात्र को रहा।[1] शाहमीरी वंश का पतन यहीं से शुरू होता है। १५५४-५५ में पहली बार दर्दिस्तान-वासी अली चक ने शाहमीरी-वंश के आखिरी सुलतान हबीबशाह से ज़बरदस्ती ताजो-तख्त छीनकर अपने भाई गाज़ी चक को कश्मीर का शासक घोषित कर दिया।

उक्त राजनीतिक अस्थिरता तथा अव्यवस्थित शासन-व्यवस्था कश्मीरी समाज के लिए कई दृष्टियों से घातक सिद्ध हुई। आये-दिन खुदमुख्तार जागीरदारों के आतंक व उनके कुचक्रों को देख भोली जनता सुख की एक साँस लेने के लिए तरसने लगी। जागीरदारों का लक्ष्य केवल यह था कि जैसे भी हो अपनी जागीर से दौलत लूट ली जाये। निरीह जनता की उन्हें कोई चिन्ता न थी। बढते हुए आर्थिक-संकट ने तो लोगों की कमर ही तोड डाली। चारों ओर धोखा-धडी, अशान्ति, अनास्था आदि का बोलबाला हो गया। सुन्नियों व शियों के खूनखराबे से भरपूर झगडों ने समाज को और भी विषाक्त बना डाला। चक वंश के बादशाह चूंकि स्वयं शिया-संप्रदाय से

---

१—'ह्ब्बाखातून', स० अमीन कामिल, भूमिका से, पृ० १२

श्रीवर के अनुसार योधभट्ट कश्मीरी में कवितायें करते थे। इन्होंने 'जैनप्रकाश' से एक नाटक भी लिखा था। यह नाटक सुलतान बड़शाह के जीवन पर आधा था। इसकी भाषा अत्यन्त प्रांजल थी।[1]

भट्ट-अवतार

ये भी अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान, कवि तथा संगीतज्ञ थे। कहा जा फिरदौसी का सम्पूर्ण 'शाहनामा इन्हें कण्ठस्थ था। कश्मीरी में रचित इनकी प्र कृति 'बाणासुरवध' कश्मीरी प्रबन्धकाव्यों की परम्परा में विशिष्ट स्थान रखती *'बाणासुरवध' काव्य की कथा हरिवंश पुराण पर आधारित है।* इसमें उषा-अनि की प्रेम कथा वर्णित है।[2] इस प्रबन्ध कृति से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

सुनेत वनों कुंभाजे बाणस्
आनोत मंगेत कित् विनाश,
युद्ध महा दुस्सह ए पानस
चल देवो अपवचन म माथ।[3]

यह सुनकर कुंभज ने बाणासुर से कहा—तू अपने लिए स्वयं विनाश माँग लाया है। युद्ध करना तेरे लिए दुस्सह है। अतः तू चला जा और देव को अपवच न कह।

१. काशिरि अदबच तारीख, अवतार कृष्ण रहबर पृ० १६०
२. 'बाणासुरवध' की पाण्डुलिपि कुछ वर्ष पूर्व भण्डारकर शोध-संस्थान में मिली है। इसकी फिल्म-कापी जम्मू व कश्मीर राज्य के अनु पड़ी हुई है।
३. 'चतुर्दश भाषा निबन्धावली' कश्मीरी भाषा और सा पृ० १२३ से उद्धृत

के लिए ही इस काल के कवियों ने प्रेम व शृंगार के गीत गाये। वस्तुतः प्रेम-तत्व मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। उसमें मानव-जीवन को सरस, सृजनशील तथा सुन्दर बनाने की शक्ति कूट-कूट कर भरी पड़ी है। उसकी प्रेरणा सबसे बड़ी प्रेरणा है। तभी प्रसाद ने 'स्कन्दगुप्त' में देवसेना से कहलाया है—'क्या तुम्हारा हृदय कहीं पराजित नहीं हुआ? विजया विचार कर कहो, किसी भी असाधारण महत्व से तुम्हारा उद्दण्ड हृदय अभिभूत नहीं हुआ? यदि हुआ है तो वही स्वर्ग है जहाँ हमारी सुन्दर कल्पना आदर्श का नीड़ बनाकर विश्राम करती है। वही विहार का, वही प्रेम करने का स्थल स्वर्ग है, और वह इसी लोक में मिलता है। जिसे नहीं मिला, वह इस संसार में अभागा है।'[१] गीतिकाल में जिस (लोल)[२] प्रेम-तत्व का वर्णन कवियों ने किया वह इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है—लौकिक है। उसमें कवियों का व्यक्तित्व मुखर हो उठा है। निःसहाय जनता की मानसिक व बौद्धिक प्रक्रिया में जो एक प्रकार का ठहराव-सा आ गया था उसे क्रियाशील बनाने के लिए कवियों ने रसराज शृंगार को अपनी अभिव्यक्ति का वर्ण्य-विषय बनाया।

हब्बाखातून के अलावा गीतिकाल के अन्य कवियों में उल्लेखनीय हैं—हबीब अल्लाह् नौशहरी, मिर्जा अकमल अलदीनखान बदख्शी, अरणिमाल, रूपभवानी, साहब कौल आदि।

## हब्बाखातून

हब्बाखातून गीतिकाल की प्रवर्तक-कवयित्री है। दुर्भाग्य से इस महान् कवयित्री का जीवन-वृत्त तथ्यों के अभाव के कारण अस्पष्ट है। जिन पुस्तकों में इस कवयित्री के जीवन-वृत्त पर आंशिक रूप से प्रकाश पड़ता है उनमें प्रमुख हैं—पं० बीरबल काचरू की 'तवारीखे-कश्मीर', हसन खोयामी की 'तवारीखे-हसन' तथा मुहम्मदअलदीन फौक की 'ख्वातीने-कश्मीर'।

पं० बीरबल काचरू ने हब्बाखातून का जीवन-परिचय इस प्रकार दिया है—यूसुफ-शाह चक, जो कश्मीर के सुलतान थे, हब्बाखातून नाम की एक अत्यन्त सुन्दरी व अप्रतिम गायिका पर आसक्त थे। इस सुन्दरी के पूर्वज पांपोर के निकट चन्द्रहार के रहने वाले थे। जब वह सयानी हो गई तो उसका विवाह उसके वंश में एक लड़के के साथ किया गया। कुछ समय के पश्चात् भावुकता में आकर वह कश्मीरी गीत गाने लगी, जिस पर उसके ससुराल वालों ने आपत्ति की और उसे तथा उसके पति को निर्दयतापूर्वक घर से निकाल दिया। मायके जाते हुये रास्ते में हब्बाखातून को यूसुफशाह के आदमियों ने देख लिया। उन्होंने उसे यूसुफशाह के पास पहुँचा दिया। यूसुफशाह हब्बाखातून

---

१. 'स्कन्दगुप्त' पृ० ५१
२. 'लोल' कश्मीरी शब्द है तथा हिन्दी के प्रेम के सन्निकट है।

सम्बन्धित थे अतः शियों को सुन्नियों के विरुद्ध उकसाने में वे भी पीछे न रहे। इधर १५३४ ई० में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा—असंख्य लोग दम तोड़ गये और उधर १५७६ ई० में असामयिक हिमपात ने घाटी को तहस-नहस कर डाला। कई गाँव उजड़ गये। जान-माल को भी खूब क्षति पहुँची। कहा जाता है कि इस दैवी-प्रकोप से कश्मीरियों को उबारने के लिए उस समय के शाहंशाहे-हिन्द अकबर ने एक करोड़ दस लाख रुपये की आर्थिक सहायता कश्मीर भेजी थी।[1] चक-बादशाहों ने यद्यपि कश्मीर की शासन-व्यवस्था तथा समाज को सुदृढ़ बनाने के भरसक प्रयत्न किये किन्तु शाहमीरी-वंश के आखिरी सुलतानों की अयोग्यता व अकर्मण्यता ने कश्मीरी समाज व यहाँ की राजनीतिक स्थिति को इतना खोखला बना दिया था कि चक-बादशाह भी उसे सम्भालने में असमर्थ रहे। इसी बीच मुगलों ने कश्मीर पर छः बार आक्रमण किया किन्तु प्रत्येक बार चक-बादशाहों ने उन्हें परास्त कर दिया। अंत में युसुफशाह चक के राज्यकाल में अकबर ने १५८५ ई० में कश्मीर को अपने अधिकार में कर ही लिया। कलाप्रेमी मुगल शासकों के शासनकाल में समाज की हालत काफी सुधर गई। निरीह जनता लगभग ५० वर्षों की लगातार बदहाली के बाद पहली बार अपने को एक ऐसे वातावरण में पाने लगी जहाँ धीरे-धीरे राजनीतिक सुव्यवस्था तथा शान्ति छा रही थी।

रीतिकाल का आविर्भाव उपर्युक्त राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में हुआ। हब्बाखातून इस काल की प्रवर्तक-कवयित्री है। हब्बाखातून ने जब साहित्यिक-क्षेत्र में पैर रखा तो उपर्युक्त विषम परिस्थितियों के कारण जीवन के मूल्यों एवं विश्वासों में पर्याप्त अन्तर आ चुका था। लल्लद्यद का दार्शनिक-चिन्तन, नूरउद्दीन वली का सदाचार-वर्णन तथा उत्थानकाल के कवियों का रचनाकौशल-प्रदर्शन हताश जनता के लिए प्रेरणा का कार्य न करके उबाऊ सिद्ध हो रहा था। ऐसे विरक्त, निराश तथा संकटपूर्ण वातावरण में जनता आध्यात्मिकता तथा धर्म-दर्शन के क्षेत्र से हटकर भावुकता की तरल गहराइयों में खो जाना चाहती थी। हब्बाखातून ने आगे बढ़कर यह काम किया। 'भावुक कवयित्री ने प्रचलित लीक पर न चलकर कश्मीरी काव्य को एक स्वस्थ और प्राणवान दिशा दी। '[illegible]' के मोह में न पड़कर उसने 'लोल कीनी' को वाणी दी। अपने वैयक्तिक अनुभवों तथा अनुभूतियों को समेटकर इस भाव-विह्वल नारी ने ऐसे मधुर-करुण (गीति) काव्य का सृजन किया जो स्वयं में ही अपना उदाहरण है।'[2] प्रेम व शृंगार इस काल की कविता के प्रधान विषय रहे। दरअसल, अशुभ वातावरण की कटुअनुभूतियों को भुलाने

---

१—'हब्बाखातून' ले० अमीन कामिल, पृ० १४, भूमिका से

२—'हब्बाखातून-एक परिचय', वितस्ता १९६८ में प्रकाशित श्री० काशीनाथ तिक्कू। पृ० २२

संगीत का अत्यन्त प्रेमी था। उसके दरबार में कई उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे जिनके सम्पर्क मे आकर हब्बाखातून थोड़े ही समय में संगीतकला में पारंगत हो गई। इन्हीं संगीतकारों की मदद से उसने फारसी संगीत-शैली के आधार पर अपनी कश्मीरी गज़लों को स्वरबद्ध किया। १५८५ ई० में जब अकबर ने कश्मीर को जीत लिया और युसुफशाह को बन्दी बनाकर बंगाल भिजवा दिया गया तो हब्बाखातून को भी बन्दी बनाने के लिए शाही परवाना जारी किया गया किन्तु वह पहले ही साधारण वस्त्र पहन कर महलों से भाग खड़ी हुई। उसने झेलम के किनारे 'पांतछोक' स्थान पर अपनी कुटिया बना ली। कुछ समय बाद वह इस संसार से चल बसी और इसी स्थान पर दफना दी गई।[1]

श्री आज़ाद ने अपने कश्मीरी भाषा और साहित्य के इतिहास से हब्बाखातून के जीवन-वृत का इस प्रकार उल्लेख किया है–मलिका हब्बाखातून का असली नाम जून था। उसकी शादी एक ज़मींदार के लड़के अज़ीज़लोन से हुई थी। अज़ीज़लोन निहायत ही रूश तथा निर्मम व्यक्ति था। वह हब्बाखातून के साथ हमेशा बुरी तरह से पेश आता किन्तु वह पतिव्रता उसके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित थी। काफी समय तक अपने ऊपर वह इस अनाचार को सहती रही। किन्तु उसका भावुक हृदय इस घुटन के प्रति बराबर विद्रोह करता रहा। यह विद्रोह उसकी वाणी द्वारा विभिन्न मर्मस्पर्शी उद्गारों के रूप में फूट पड़ा जिसमें व्यथित हृदय का अपूर्व दर्द समाया हुआ था–

मेहो करुय चे कित फम्ब मोयान,
हा अज़ीज़ो यूनि मो रोश।
खोतूनि पारिम पूरि सामानय,
दाव ম्याम्य बानय पोश॥

मैंने तेरे लिए रूई का बिस्तर सजा दिया, ऐ मेरे अज़ीज़, अपने चांद से यों न रूठ। तुम्हारी हब्बाखातून ने सोलह-शृंगार किये हैं, आ, मेरे अनार के फूलों के समान यौवन को लूटा।

एक दिन हब्बा अपने खेत मे निराई कर रही थी। कड़कती धूप थी। वह अपने गीत की कुछ पंक्तियाँ गुनगुना रही थी–

वारिव्यन मु.ह्य वार छस मो
वार कर म्योन मालिनो हो···।

ससुराल में मैं सुखी नहीं हूँ–ऐ मेरे मायके, मुझे सम्भाल ले······।

इसी बीच युसुफ घर शिकार खेलते हुए उधर से गुज़रा। वह उस परी के अपूर्व सौन्दर्य तथा उसकी सुरीली आवाज़ पर मुग्ध हो गया तथा कुछ समय के बाद

---

१. सवानेह कश्मीर, पृ० ७१-८६, १९४० (लाहौर)

के रूप-लावण्य तथा उसके सगीत-गौरव को देखकर उस पर हजार जान से फ़िदा हो गये और उसे अपनी 'सहवासिनी' बनने का सम्मान दिया।[1] श्री काचरू का इतिहास, जिसमें उक्त प्रसंग है, हब्बाखातून के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद लिखा गया है।

हसन खोयामी ने हब्बाखातून के जीवन-वृत्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—कहते है कि हब्बाखातून पाँपोर के निकट स्थित चन्द्रहार गाँव के एक जमींदार की लड़की थी। उसकी शादी एक हृदयहीन व रूक्ष व्यक्ति से हुई जिसके कारण ससुराल में उसका जीवन दूभर हो गया तथा वह अपने पति से अलग हो गई। एक दिन रास्ते में युसुफशाह चक की नजर उस पर पड़ी। उस समय हब्बाखातून कोई कश्मीरी गाना गुनगुना रही थी। हब्बाखातून के रूप व उसके कण्ठ पर सुलतान युसुफशाह मुग्ध हो गये। दूसरे ही दिन सुलतान ने हब्बाखातूल के माता-पिता को असंख्य धनराशि देकर उस अन्यतम सुन्दरी को अपनी सहवासिनी बनने का सम्मान दिया।[2]

श्री काचरू तथा श्री हसन के वृत्तोल्लेखों में यद्यपि अधिक मौलिक अन्तर नहं है तथापि इतना स्पष्ट है कि हब्बाखातून का सम्बन्ध चन्द्रहार गाँव से था, व परित्यक्ता न होकर अपने पति द्वारा उपेक्षिता थी तथा सुलतान युसुफशाह की परिणीता न होकर उनकी प्रेयसी-मात्र थी।

श्री फौक साहब ने हब्बाखातून के जीवन-वृत्त को यों प्रस्तुत किया है—चन्द्रहार गाँव में एक किसान अब्दी राथर रहता था। उसके एक लड़की हुई जिसका नाम जून (चाँद) रखा गया। वह इतनी सुन्दर थी कि दूर-दूर के लोग उसे देखने के लिए आते थे। पिता ने पहले तो पाँच साल तक उसे गाँव के एक मुल्ला के पास कुराने-पाक पढ़ने के लिए भेजा फिर एक मस्जिद के इमाम को उसे फारसी व अरबी सिखाने के लिए नियुक्त किया—। सयानी हो जाने पर उसकी शादी उसके ही वंश में एक लड़के के साथ कर दी गई। यह लड़का न केवल अपढ़ था अपितु परले दर्जे का लम्पट एवं दुराचारी भी। जून ने अपनी इच्छा के विरुद्ध सास और ससुर के कहने पर किताबों को पढ़ना छोड़ दिया तथा वह व्यावहारिक रूप से खेती-बाड़ी में जुट गई। लेकिन उसके भावुक हृदय को जो ठेस लगी उसे वह भूल न सकी। एक दिन जून ने एक सूफी सत ख्वाजा मसूद को अपना दुखड़ा सुनाया। ख्वाजा ने दयार्द्र होकर उसका नाम हब्बाखातून रख दिया। १५७१ ई० की बात है कि हब्बाखातून खेत में काम करते हुए ईरानी तर्ज पर कोई कश्मीरी गीत गा रही थी कि कश्मीर के सुलतान युसुफशाह वहाँ से गुजरे। वे हब्बाखातून पर मुग्ध हो गये और उन्होंने हब्बाखातून को तलाक दिलवाने के लिए उसके पति को ५००० दिरहम दिये। उस वक्त युसुफशाह की आयु २८ और हब्बाखातून की १८-१६ साल के करीब थी। इसके बाद हब्बाखातून ने मलिकाये-कश्मीर बनकर शाहाना जिन्दगी बसर की। युसुफशाह राग-रंग तथा

---

१. 'तवारीखे-कश्मीर' फारसी में लिखित, यह तारीख सन् १८३५ में लिखी गई है।
२. 'तवारीखे-हसन'

हब्बाखातून की भावप्रवण कविताओं में अन्तस्तल की मौलिक उद्भावनाओं का उन्मेष है। प्रेमाकुल मन से निकली भावभिव्यंजना में कुछ ऐसा आकर्षण और मार्मिकता है कि पाठक का ग्रहणशील व संवेदनशील हृदय आन्दोलित हो उठता है। कवयित्री के गीतों में जो संताप और दर्द है वह अन्यत्र मिलना मुश्किल है। वस्तुतः इस कवयित्री के कृतित्व में वेदना और करुणा के भाव ही प्रधान हैं जिनसे इसकी कविताओं में अश्रुकण-से झरते रहते हैं। कवयित्री का प्रबल भावावेग भीतरी निष्ठा की तन्मयता को लेकर अग्रसर होता है। उसमें कोमलता है, कल्पना है और अनुभूति की सच्चाई है। हब्बाखातून के कलाम से उनके दो प्रसिद्ध प्रेमगीत प्रस्तुत हैं—

च् कम्यू सोनि म्यानि ब्रम दिथ न्यूनखो
चे़ह क्योहॖजि गयि म्यान दु.य,
च़ल त्राव दुय मलाल बोंव छुय न विवान
चे़ह क्योहॖजि़ गयि म्यान दु.य ॥

म्यमुक रातन बर थवुथ आंपमय
साया यिल नावय,
फेर छु न कॅहृत फेर छुल पावान
चे़ह क्योहॖजि़ गयि म्यान दु.य ॥

मरनवारव ब़दन ज़ोलयम
गोछ़हम में आवनय चय,
बावाम वेदमव लून छ्स्या होरान
चे़.ह क्योहॖजि़ गयि म्यान दु.य ।

आवनुन दोन ज़न ब गसान आयस
आगस फोजिस ब हो,
कोनुय वाल़ ल च़य वनो छावान
चे़ह क्योहॖजि़ दयि म्यान दु.य ।

तन छुन मावान वाधु छ्स पारान
हावान छ्स्या वान्य छू्य,
पननिम पानस दायि छुला मारान
चे़ह क्योहॖजि़ गयि म्यान दु.य ।
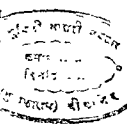
उससे निकाह कर लिया ।[1]

ऊपर विभिन्न इतिहासकारों द्वारा दी गई सूचनाओं का विश्लेषण करने के उपरान्त स्पष्ट होता कि हब्बाखातून का जन्म-स्थान चन्द्रहार है जो पांपोर नामक गाँव से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है । उसका विवाह अज़ीज़लोन नामक एक जमीदार के लड़के के साथ हुआ था जिसकी निठुरता के कारण हब्बाखातून गार्हस्थ्य-सुख से वंचित रही । सुलतान यूसुफशाह चक उसकी सुन्दरता पर आशिक हो गया और उसे अपने रनिवास मे ले आया । कुछ समय तक सुलतान के संग रहकर हब्बाखातून ने संयोग-शृंगार के राग अलपाये किन्तु जब १५८५ ई० में अकबर की सेनाओं ने कश्मीर पर अधिकार कर लिया तो सुलतान को बंदी बनाकर बंगाल भिजवा दिया गया । हब्बाखातून का भावुक हृदय विरह-वेदना मे संतप्त हो उठा और उसने अन्त समय तक अत्यन्त दर्द-भरे गीत गाये ।

हब्बाखातून का जन्मकाल अभी तक अनिश्चित है । इतिहास द्वारा कश्मीर के अन्तिम स्वाधीन सुलतान यूसुफशाह चक का राजत्वकाल, जिसकी हब्बाखातून प्रेयसी थी, सन् १५७९ से सन् १५८५ तक सिद्ध होता है । यूसुफशाह चक और हब्बाखातून के मिलन की घटना सन् १५७१ की बताई जाती है और उस समय सुलतान की आयु २८ तथा हब्बाखातून की १८-१९ बताई जाती है । इस प्रकार से हब्बाखातून का जन्मकाल सन् १५५२-५३ बैठता है । कहा जाता है कि सुलतान के बन्दी बनाये जाने के बाद हब्बाखातून केवल बीस वर्षों तक जीवित रही ।[2] इस प्रकार उसका निधनकाल सन् १६०५ निश्चित किया जा सकता है ।[3]

हब्बाखातून[4] कश्मीरी प्रेमगीतों की जननी है । उसके एक-एक गीत में संयोग व वियोग शृंगार की हृदयभेदिनी भाववृत्तियों का ऐसा सहज उद्रेक मिलता है जो विरह-व्यथा की विभिन्न दिशाओं को छूता हुआ चलता है । हब्बाखातून ने कुछ समय के लिए अपने प्रेमी यूसुफशाह के संग रहकर संयोग के मधुर राग अलपाये किन्तु बाद में मुगलों द्वारा यूसुफ को निर्वासित किए जाने पर हब्बाखातून का हृदय टूट गया । विरह-वेदना गीतों में साकार हो उठी । अपने प्रियतम के विरह में विवश उसकी वाणी से जो स्वर फूटे वे १६ वीं शती की कश्मीरी कविता के प्राण बन गए ।

---

१. 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' पृ० २०४, भाग २
२. 'काशिर', डा० मोहीउद्दीन गूरी
३. 'वाक़िआति कश्मीर तारीख' में श्री अवतार कृष्ण रहबर ने भी हब्बाखातून का यही निधन काल बताया है ।
४. 'हब्बा' शब्द हबीब का स्त्रीवाचक है जिसका अर्थ है प्यारी । अपने मधुर कलाम के कारण वह न केवल यूसुफशाह की प्रेयसी थी बल्कि समस्त कश्मीरी जनता की प्यारी खातून थी ।
'हब्बाखातून' : एक परिचय, प्रो० काशीनाथ दर, 'वितस्ता' विशेषांक पृ० ११

या त दितौ नटि नोटा
न त नटिचं हार मालिनो ।

सुर्‌य पानस स्यन्दर गयिमो
वुडर खसुन कुडुर प्योम,
कतरि छारान कतर सनिमो
वितरि नून प्योम मालिनो हो ।
।
हशि लायनम टोपिसय थफ
सुय मे गोम मरन खोत सख,
चन्द्रपचि प्यठ न्यन्द प्येयमो
खखर फुटमो मालिनो हो ।

यार दादे सारि गमि सो
वारि बुख छुम मामतावो,
हब्बखोतूनि योन इशारा
दिल हशारा मालिनो हो ।।

ससुराल मे मैं सुखी नहीं हूँ, रे मायके वालो मेरा उद्धार करो । घर से मैं पानी का घड़ा भरने के लिए निकली थी किन्तु मेरी बदकिस्मती से घड़ा टूट गया । अब या तो घड़े के बदले नया घड़ा मुझे लाकर दो या घड़े के दाम चुका दो ।

मेरी यह उभरती जवानी अब ढलने लगी है । इन चाटियो की चढ़ाई अब चढ़ी नहीं जाती । कंकर बीनते बीनते मेरे हाथों में छाले पड़ गए हैं और ऊपर से उन छालों पर नमक छिड़का जाता है । मेरा उद्धार करो रे मेरे मायके वालो ।

चर्खा कातते-कातते मेरी आंख लग गई । जिससे चर्खे की माला टूट गई । सास ने मेरी चोटी जोर से खींची । जिसकी पीड़ा मृत्यु से भी बढ़कर थी । ससुराल मे मैं सुखी नहीं हूँ, मेरा उद्धार करो, रे मेरे मायके वालो ।

अपने प्रियतम के अभाव मे मैं व्याकुल हो रही हूँ । अब यह जीवन भी भार स्वरूप लग रहा है । रे मायके वालो हब्बाखातून के दुःख भरे इशारे को समझो । ससुराल मे मैं सुखी नहीं हूँ, मेरा उद्धार करो, रे मेरे मायके वालो ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कश्मीरी कविता में प्रेमगीतों का श्रीगणेश हब्बाखातून द्वारा हुआ । उसका यह प्रेम-वर्णन नितान्त लौकिक है । दूसरे शब्दों में यह इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है । उसमें योग की अपेक्षा भोग की प्रधानता है । प्रो० काशीनाथ दर के मतानुसार—"इन्द्रियसुख के प्रति तृष्णा में कभी भी विरक्ति पैदा नहीं हुई, भोग की परिणति उसके विचारानुसार योग मे नहीं, वह मुड़-मुड़कर उस भोग की प्राप्ति के लिए लालायित है जो उससे छिन चुका है । सुहागिन होकर

ओश छस आवान ब छालि-छाले
म्ये बालि गछहोम चय,
च कव वत म्यानि आस मशरावान
च्हे क्योहजि गयि म्यान दुय।
हब्बखोतून छि अरमान स्यवान
करयेम ना जांह बन्दगी,
यावुन रोवमुत छुमा याद यिवान
च्हे क्योहजि गयि म्यान दुय।

तुझे मेरी किस सौत ने भरमाया जो तू मुझसे नफरत करने लगा। रे मेरे महबूब, क्या तेरा दिल यह गुस्सा व नफरत छोड़ नहीं सकता। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

मैंने आधी-आधी रात तक तेरे लिये द्वार खुले छोड़ दिए कि शायद तू घड़ी-भर के लिए आजाए। (किन्तु तू लौट के न आया।) हम दोनों में कोई मनमुटाव न हुआ किन्तु फिर भी तू रूठ कर चला गया। मुझसे नफरत क्यों मेरे महबूब।

विरहाग्नि के मारे मेरा बदन जल गया है, मुझे बस तेरी ही आरजू है। मैं अपने बादामी नेत्रों से खून के आँसू रो रही हूँ। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

सावन की प्रचण्ड धूप में मैं बर्फ के समान पिघल रही हूँ। (कभी मैं) बाग में खिली जूही की भाँति मैं मस्त हो रही थी। यह बाग तेरा ही है और तू झूमकर इसका आनन्द ले। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

मैं तेरे लिए नित्य नहा-धो सोलह-सिंगार करती हूँ। तेरी कसम यह सब सब बह रही हूँ। किन्तु तू अपनी ही धुन में खोया हुआ है। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

मेरे नयनों से अश्रुधारा बह रही है। मुझे बस एक तू चाहिए। रे निर्दयी तू क्यों मेरी राहें भुला रहा है। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

हब्बाखातून को केवल इस बात का अफसोस है कि क्या मैंने कभी तेरी सेवा नहीं की थी जो तू इस बेरुखी से बदला चुका रहा है। हाय, मुझे अपने यौवन की बीती रंगीनियाँ याद आ रही हैं। मुझसे नफरत क्यों रे मेरे महबूब।

वारिस्यन गुरस वार दम मो
वार कर म्योन मालिनो हो।
गरि बु आवास आव मटिस
मोट म्ये कूटमो मालिनो हो,

या त दितौ नदि नोटा  
न त नटिचे हार मालिनो ।

शुर्य मानस स्वन्दर गथिमो  
घुडर खसुन कुड़ुर प्योम,  
कतरि छारान कतर सनिमो  
वितरि नून प्योम मालिनो हो ।

हशि सायनम टोपिसय धफ  
मुथ मे योम मरन सोत सल,  
यन्द्रपवि प्यठ स्वन्द्र प्येयमो  
चक्षर फुटमो मालिनो हो ।

यार दावे सारि गथि सो  
कारि बुख छुम मामतावी,  
हब्बखोतूनि योन इशारा  
दिल इशारा मालिनो हो ॥

ससुराल मे मैं सुखी नहीं हूँ, रे मायके वालो मेरा उद्धार करो। घर से मैं पानी का घड़ा भरने के लिए निकली थी किन्तु मेरी बदकिस्मती से घड़ा टूट गया। अब या तो घड़े के बदले नया घड़ा मुझे लाकर दो या घड़े के दाम चुका दो।

मेरी यह उभरती जवानी अब ढलने लगी है। इन घाटियों की चढ़ाई अब चढ़ी नहीं जाती। कंकर बीनते बीनते मेरे हाथों में छाले पड़ गए हैं और ऊपर से उन छालों पर नमक छिड़का जाता है। मेरा उद्धार करो रे मेरे मायके वालो।

चर्खा कातते-कातते मेरी आँख लग गई। जिससे चर्खे की माला टूट गई। सास ने मेरी चोटी जोर से खींची। जिसकी पीड़ा मृत्यु से भी बढ़कर थी। ससुराल मे मैं सुखी नहीं हूँ, मेरा उद्धार करो, रे मेरे मायके वालो।

अपने प्रियतम के अभाव मे मैं व्याकुल हो रही हूँ। अब यह जीवन भी भार स्वरूप लग रहा है। रे मायके वालो हब्बाखातून के दुःख भरे इशारे को समझो। ससुराल में मैं सुखी नही हूँ, मेरा उद्धार करो, रे मेरे मायके वालो।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कश्मीरी कविता में प्रेमगीतों का श्रीगणेश हब्बाखातून द्वारा हुआ। उसका यह प्रेम-वर्णन नितान्त लौकिक है। दूसरे शब्दों मे वह इन्द्रियातीत न होकर इन्द्रियजनित है। उसमे योग की अपेक्षा भोग की प्रधानता है। प्रो० काशीनाथ दर के मतानुसार—"इन्द्रियसुख के प्रति हब्बा में कभी भी वितृष्णा पैदा नहीं हुई, भोग की परिणति उसके विचारानुसार योग में नहीं, वह मुड़-मुड़कर उस भोग की प्राप्ति के लिए लालायित है जो उससे छिन चुका है। मुक्षालित होकर

यह वियोगिनी बनने के लिए तैयार नहीं, वियोग में भी वह संयोग का मातम करती है।...इतना सब करने के बाद भी उसमें आत्मतुष्टि नहीं अपितु व्यग्रता है, बेचैनी है और इसी अधीनता का पुट उसके समस्त काव्य में मुखर हो उठा है।"[1]

## ख्वाजा हबीब अल्लाह नौशहरी

इनका जन्म नौशहरा गाँव में सन् १५५५ में तथा निधन सन् १६१७-१८ में हुआ था। इनके पिता का नाम क्ममन गनाई बताया जाता है। पिता के कहने पर इन्होंने प्रारम्भ में नमक की दुकान की। किन्तु दुकानदारी में इनका जी नहीं लगा। इनके लिए प्रसिद्ध है कि इन्होंने कभी तराजू को हाथ में नहीं लिया। दुकान पर बैठकर वे कुराने-पाक का अध्ययन करने में व्यस्त रहते और ग्राहक स्वयं सौदा तौल कर ले जाते। फारसी भाषा का इन्हें अच्छा-खासा ज्ञान था तथा संगीत के प्रति विशेष रुचि थी। इनके कलाम की मात्रा बहुत कम है। कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

च रोसतुय द्यन क्योह् करयो मदनो  
म्यानि मदनो लदयो दानपोश त हो.  
छारान लूसस कोह नोवदयो  
दपतो च कम्यू प्रय छेय,  
हावतम दीदार छम चान्य लादिनो  
म्यानि मदनो लदयो दानपोश त हो ॥

ऐ मेरे प्रेमी, मैं तेरे बिना दिन कैसे बिताऊं ? आ, तुझे अनार और जूही के फूल दूं। तुझे ढूंढते-ढूंढते मैं ढलते सूर्य की भांति क्षीण हो गई। रे निर्दयी, अब बोल तू कहाँ छिप गया है। मुझे दीदार दे, मैं तेरी आस लगाये बैठी हूं। आ, तुझे अ और जूही के फूल दूं।

सुरम त चेश्मन हा ह्युह्य रंग छुय  
गोमुस दमि दमि ललवुन नार,  
काकुल प्येचान क्याह ताबदार  
हा वुम्बन त संजरन पानवन्य जंग छुय,  
गोमुस दमि दमि ललवुन नार ॥

तुम्हारी आँखों का रंग तथा सुरमे का रंग एक समान है। तेरे इश्क की आग मुझे हर समय जलाती है। तुम्हारी पेचदार जुल्फों के लिए तुम्हारे ये गाल ...

---

१—हब्बाखातून, एक परिचय, 'शीराजा' में प्रकाशित प्रो० काशीनाथ का निबन्ध। पृ० ५२-५४

का काम कर रहे हैं। तुम्हारी भौंहो व खंजरों के बीच युद्ध ठना हुआ है। तेरे इश्क की अग्नि मुझे हर समय जलाती रहती है।

## साहब कौल

इनका जन्म सन् १६२६ ई० मे हब्बाकदल, श्रीनगर में हुआ था।[1] ये कश्मीरी तथा संस्कृत दोनों मे कवितायें करते थे। संस्कृत में रचित इनकी काव्य रचनाओं के नाम हैं—'देवी विलास,' 'शिव-सिद्धि-नीति,' गुरुव्रत-चिन्तामणि,' 'गीता-सार' आदि। इन सभी में वेदान्त व शैव दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो का सहज उन्मेष है। कश्मीरी में विरचित इनकी जिन दो काव्यरचनाओं का पता लगा है—उनके नाम हैं 'कल्पवृक्ष' और 'जन्मचरित।' 'कल्प-वृक्ष' एक कलापूर्ण कृति है जिसमें कश्मीरी के अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, अरबी, पंजाबी, लद्दाखी आदि भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत शब्दों को बहुलता के कारण यह कृति कश्मीरी की कम तथा संस्कृत की अधिक लगती है।

'जन्मचरित' साहब कौल की सर्वाधिक प्रसिद्ध काव्यकृति है। दरअसल, यह एक लम्बी कविता है जिसमे मानव-जीवन के रहस्य को दार्शनिक ढंग से वर्णित किया गया है। जीवन स्वयं अपनी कहानी इस कविता मे कहता है। वह कहाँ से आया, वह कश्मीर कैसे पहुँचा, उस पर किन-किन दार्शनिक सम्प्रदायों का प्रभाव पड़ा, मानव उस परमधाम तक कैसे पहुँच सकता है जहाँ से जीवन आया है आदि इस कविता के मुख्य विषय हैं। साहब कौल की कश्मीरी में लिखित दो अन्य रचनाओं 'कृष्णावतारचरित' व 'आत्मचरित' का भी उल्लेख मिलता है। 'कृष्णावतारचरित' पाण्डुलिपि की खोज श्री बूहलर साहब ने की थी और श्री ग्रियर्सन ने इसे 'कृष्णावतारलीला' शीर्षक से प्रकाशित किया था।[2] 'कृष्णावतारचरित' की एक हस्तलिखित प्रतिलिपि जम्मू व कश्मीर के अनुसंधान विभाग मे सुरक्षित पड़ी हुई है। इस रचना का मूलाधार भागवत का दशम् स्कन्ध है।

---

१. कहा जाता है कि साहब कौल ने ४७ वर्ष की आयु में सन् १६७६ ई० में 'कल्पवृक्ष' की रचना की थी। इस आधार पर इनका जन्मकाल सन् १६२६ ई० बैठता है। 'काशिरि अदबच तारीख, अवतार कृष्ण रहबर।

२. यह रचना १६२८ ई० मे 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित हुई है। ग्रियर्सन ने इस रचना के लेखक का नाम दीनानाथ बताया है किन्तु यह दीनानाथ की रचना न होकर साहब कौल की रचना है। ग्रियर्सन ने इस रचना में उल्लिखित ११७२ छन्द में 'दीन' शब्द के आधार पर इसके रचनाकार का नाम दीनानाथ स्थिर किया है। वस्तुतः 'दीन' शब्द यहाँ पर दीन-भक्त के रूप मे प्रयुक्त हुआ है, नाम-विशेष के रूप मे नहीं।

साहब कौल की काव्यकृति 'जन्मचरित' से एक नमूना प्रस्तुत है—

गोरस तन मन धन दीज़ि
गोरस ति पार्यपार्य यि तय
गोर दरशुन न्येय करिज़ि
गोरस ति बलिबलिहार्य यि तय
गोरस न सीवा क्याह प्राविज़ि
तारि जि भवसागरि यि तय ।।

गुरु की तन, मन और धन से सेवा करनी चाहिये । गुरु के दर्शन नित्य करने चाहिए । जो गुरु की सेवा नहीं करता वह भवसागर के पार कैसे लग सकता है? गुरु पर सब कुछ बलिदान करना चाहिए ।

## मिर्ज़ा अकमल-अलद्दीनबेग खान बदख़्शी

इनके पूर्वज सम्राट् अकबर के समय में भारत से कश्मीर आ गए थे । इनका जन्म १६४२ ई० में हुआ था तथा निधन १७१७ ई० में ।

मिर्ज़ा साहब प्रेम व सौन्दर्य के अनन्य उपासक थे । फारसी भाषा पर विशेष अधिकार था । फारसी में लिखित इनकी 'बहर-उल-इरफ़ान' एक उच्चकोटि की मसनवी बन पड़ी है । इस मसनवी में ८०,००० छन्द आकलित हैं । मिर्ज़ा साहब का कश्मीरी में लिखित कलाम मात्रा में बहुत कम है । एक नमूना प्रस्तुत है—

लोलो मे करिमय पोश चमन गयि मे कलन चानिये
रम रम वन्दय सर ब रमन रम शूबो डालिये,
रम आव रमन आहूछि अगन गयि मे कल चानिये
मोख मोन डीशित माह छु गुलन मोख वाजियस ब नारिये,
मोख मोख छहम च़ रि चलन गयि मे कल चानिये ।।[१]

रे इश्क, मैंने तेरे लिए फूलों का चमन सजाया है । मेरा रोम-रोम तेरे ऊपर बलिहारी है । तेरी महिमा अपरम्पार है । तुझे देख दोनों चर और अचर भ्रमित हो जाते हैं । मेरे दिल को भी तूने भ्रमित कर डाला है—मैं तेरे पाश में बँधता जा रहा हूँ ।

## रूपभवानी (अलखेश्वरी)

रूपभवानी को कश्मीरी जनता 'रोपभवान्य' नाम से अधिक जानती है । अलख' इनका उपनाम था इसीलिए अलखेश्वरी भी कहलाती हैं । इनका जन्म १६२५ ई० में

---

१. कादिर शायरी, मोहीउद्दीन हाजिनी, पृ० १८

पं० माधवराम दर के यहाँ हुआ था। निधन ६६ वर्ष की आयु में सन् १७२१ ई० में हुआ। इनके नाम से एक धार्मिक प्रतिष्ठान श्रीनगर में वितस्ता नदी के किनारे पर स्थित है। रूपभवानी की वंश-परंपरा की सूचना इस प्रकार मिलती है—
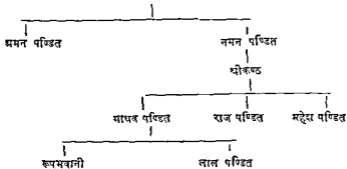
रूपभवानी का विवाह सप्रू वंश में पण्डित श्यामसुन्दर कौल के साथ हुआ था। प्रसिद्ध संत कवयित्री लल्लद्यद की भाँति रूपभवानी को भी ससुराल में अपनी सास की यन्त्रणाओं का शिकार होना पड़ा। परिणामस्वरूप थोड़े समय के बाद ही ससुराल से अपने मायके चली आई और कहा जाता है कि फिर आजीवन वहीं पर रही। इनके जीवन के साथ कुछ दिव्य-घटनायें भी जुड़ी हुई हैं। कहा जाता है कि 'पक्षामावस्या' के दिन पिता ने रूपभवानी की ससुराल खीर की एक देगची भेंट स्वरूप भेजी। कर्कशा सास चिल्लायी—इतनी-सी खीर का क्या होगा, इसे मैं किस-किस को दूँगी। रूपभवानी विनम्रतापूर्वक बोली—आप इसे बाँटिये, आवश्यकता हुई तो पिताजी और खीर भेज देंगे। सास ने जब खीर बाँटनी शुरू की तो वह उसे बाँटते-बाँटते थक गई किन्तु देगची की खीर सायंकाल तक भी समाप्त न हुई। इसी प्रकार एक अन्य घटना इस प्रकार बतलाई जाती है। रूपभवानी नित्य प्रातः चार बजे अपने कमरे से निकल कर कहीं चली जाती। आँगन में रोज एक शेर उपस्थित होता और वह उसकी आहट पाकर अपने कमरे के एक सुई-तुल्य छेद से निकलकर शेर पर सवार हो कहीं चली जाती। एक दिन पति उसके पीछे-पीछे हो लिया। क्या देखता है कि शेर पर बैठकर रूपभवानी सीधे हारीपर्वत (यहाँ पर भगवती शारिका का मन्दिर है) गई और वहाँ पूजा-पाठ करके पुन. उसी शेर पर बैठकर घर लौट आई। पति अपनी पत्नी की दिव्यता पर विस्मित हो गया तथा उसकी भगवद्भक्ति पर विश्वास करने लगा।

रूपभवानी को प्रारम्भिक-शिक्षा उनके पिता पं० माधव दर से प्राप्त हुई थी। एक स्थान पर वे स्वयं कहती हैं—

> युसुय गोर पिता सुय द्यु मोल
> सुय पि प्रबल दीव प्रकाश।

मेरे पिता-तुल्य गुरु स्वयं मेरे पितामो हैं। उन्होंने ही मेरे हृदय में प्रक दीप-शिखा जलायी है।

रूपभवानी का सम्पूर्ण काव्य प्रमुखतः ज्ञान एवं भक्ति की सामंजस्यपूर्ण प्रवृत्तियों पर अवलम्बित है जिसमें सामाजिक और व्यवहारिक शिक्षा-ज्ञान सम्बन्धी विभिन्न अनुभवपूर्ण तथ्यों की अभिव्यंजना यत्र-तत्र मिलती है। इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है। वैसे, इन्हें फारसी का भी यथेष्ट ज्ञान था। इनकी कविताओं के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

> च कुस ब कुस, कुँह विचारा,
> अक्षिम्न दारा सुयचोन रूप।
> ध्यानस मे च त पानय ब च,
> अथ्य ग्यानस चे मे नमस्कार।
> पानयपान प्रज्ञानी त पानय वेचय,
> नत भनजानस वेचो जानिय कोंह।
> रूप न रस न स्पर्श गन्द न देहो,
> दुयी दयस न घुस केवलोहम्।।

## अरणिमाल

इनका जन्मकाल अविदित है। निधन सन् १८०० ई० में हुआ बताया जाता है।[1] पलहालन गाँव जो श्रीनगर के दक्षिण मे १६ मील की दूरी पर स्थित है, इनका जन्म-स्थान था। इस बात का उल्लेख कवयित्री ने स्वयं एक स्थान पर किया है—

> सोन ही फोजिवय वनन त भ्रंडवालन
> पलहालन माल्युन छुये।

रे यासमन के सुनहरी पुष्प, तू जंगलों व झाड़ियों में खिल उठा। पलहालन तेरा नैहर है।

अरणिमाल का विवाह एक उच्चकोटि के प्रतिभाशाली फारसी कवि मुंशी भवानीदास से हुआ था।[2] भवानीदास अरणिमाल के प्रति उतना ही विरक्त था जितना वह उसके प्रति समर्पित थी। परिणामस्वरूप अरणिमाल को भी रूपभवानी की तरह अपने जीवन का शेष भाग मायके में चर्खा कातते हुए व्यतीत करना पड़ा।

---

१. श्री अवतार कृष्ण रहबर ने 'काशिरि अदबच तारीख' में अरणिमाल का जन्मकाल १८३८ ई० तथा निधन काल १८७८ ई० दिया है। किन्तु यह सूचना उन्हें कहाँ से मिली—स्पष्ट नहीं है।

२. इनकी कृति 'बहर-ए-तवील' बताई जाती है।

अरणिमाल का समस्त काव्य प्रेम की पीर से आप्लावित है। उसने अपनी कविताओं में निठुर प्रियतम के वियोग में तड़प-तड़प कर अपनी विरह-वेदना को साकार कर दिया है। कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

अरणि रंग गोम आवनि हिये
कर पियें दर्शन दिये।
शाम सोन्दे पामन लाजुस
आम ताबि कोताह गाजिस।
नाम ब पागाम तस कुस नियें
कर पियें दर्शन दिये।······
हचि लोमनम म्यदरि हचि मचि
अछि मछुबन्द सतिथ गोम,
सोन म्यूनम रचि रचि
कुन्यूब करिथ गोम,
मनत ह्यस्य बौन्य कुस कस पचि।।

री सखी, प्रियतम के विरह में मेरा रंग पीला पड़ गया। न जाने वे बेदर्दी कब आयेंगे और मेरे नयनों की प्यास बुझायेंगे। वे नहीं आये और मुझे लोगों के ताने सुनने पड़े। इन अग्नि-बाणों से मेरा हृदय दहक रहा है। मेरा संदेश उन तक कौन पहुँचाये······।

गहरी नींद में उसने मुझे जगाया तथा मेरी कलाई को मरोड़ा जिससे मेरी देह में बाजूबन्द चुभ गया। उसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया तथा मुझे उन्मत्त बनाकर छोड़ दिया। री सखी, तुम ही कहो अब कोई किसी पर कैसे भरोसा करे!

# प्रेमाख्यान-काल

## (१७५०-१९००)

प्रेमाख्यान-काल का संपूर्ण काव्य मुख्यतः दो भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग के अन्तर्गत वह काव्य आता है जिसका मूलाधार सूफी-दर्शन है। इस काव्य-वर्ग के कवियों ने फारसी काव्य-पद्धति का अनुसरण किया तथा कश्मीरी में फारसी मसनवियों के आधार पर अनेक प्रेमकाव्य लिखे। इन प्रेम-काव्यों के लिए उन्होंने फारसी मसनवियों से कथानक लिये तथा उन्हें कश्मीरी में लिपिबद्ध किया। ये सभी कवि प्रायः मुसलमान थे। इनमे उल्लेखनीय हैं—शाह गफूर, स्वच्छकाल, महमूद गामी, वली अल्लाह मत्तू, अब्दुल अहद नाज़िम, रसूल मीर, मकबूलशाह कालवारी, रहमान डार, शमस फकीर, अब्दुल वाहब परे, वहाब खार, अहमद बटवारी, हकानी आदि। दूसरे भाग के अन्तर्गत वह काव्य आता है जिसका मूलाधार राम-भक्ति व कृष्ण-भक्ति है। इस काव्य-वर्ग के कवियों ने भारतीय काव्य-पद्धति का अनुसरण किया तथा राम व कृष्ण सम्बन्धित चरित-काव्यों को कश्मीरी मे रूपान्तरित किया। ये सभी कवि प्रायः हिन्दू थे। इनमें उल्लेखनीय हैं—प्रकाशराम, कृष्णराजदान, परमानन्द, लक्ष्मण रैणा बुलबुल आदि।

### कश्मीर में सूफी-दर्शन का विकास

सूफी शब्द 'सूफ' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—ऊन। सूफी सन्त प्रायः सादे ऊनी वस्त्र धारण करते थे, अतः सूफी कहे गये। ईश्वर से प्रेम करना, सदाचार का पालन करना, सादा जीवन व्यतीत करना— ये सूफियों की विशेषतायें थीं।

सूफी-साधना का मूलाधार 'कुरान' है जिसमें आगे चलकर कुछ परिवर्तन-परिवर्द्धन मिलता है। मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् खलीफाओं का युग आया। इनमें प्रमुख हैं—खलीफा अबुबकर (६३४ ई०), उमर (६४३ ई०), उस्मान (६५५ ई०)। ये सभी खलीफा अत्यधिक धार्मिक, सदाचारी तथा आदर्शवादी व्यक्ति थे। इनके बाद के खलीफाओं में शासन-लिप्सा तथा राज्यविस्तार की भावना बढ़ी। परिणामस्वरूप खलीफाओं की प्रवृत्ति साम्प्रदायिक तथा एकांगी होती गई। इधर दोस्तों एवं मुल्लाओं ने इस्लाम को शुद्ध आचार-धर्म बना डाला। निमाज़, रोज़ा आदि को धर्म का अंग

मान लिया गया। जो इन्हें न मानता उसका सिर उड़ा दिया जाता। इस पवित्र कार्य को 'जिहाद' कहा गया। जिहाद के लिये खलीफाओं ने भारत, ईरान आदि देशों पर अपना विस्तार जमाया।

शुद्ध आचार-धर्मवाद के विरुद्ध भावनावाद की प्रस्थापना की गई। यहीं से सूफी आन्दोलन का सूत्रपात होता है। सूफियों ने निमाज, रोजा आदि बाह्याडम्बरों के स्थान पर लौकिक प्रेम, सौन्दर्य-प्रियता आदि को ईश्वर-साधना का प्रमुख अंग मान लिया। कट्टरपंथी शेखों एवं मुल्लाओं ने इस नवजात आन्दोलन का पूर्णतया दमन करना चाहा। उन्होंने मनसूर को सूली पर चढ़वाकर इस आन्दोलन के अनुयायियों को आतंकित कर दिया। किन्तु यह धार्मिक-आन्दोलन उत्तरोत्तर ज़ोर पकड़ता गया। मनसूर ने प्राण त्यागने से पूर्व जनता को उद्‌बोधन किया—'हे खुदा के बन्दों!' तुम मेरी यह स्थिति देखकर खुदा की कृपा-वत्सलता पर अविश्वास न कर बैठना। खुदा मेरे साथ वही व्यवहार कर रहे हैं जैसा एक दोस्त दूसरे से करता है। वे मुझे विष का प्याला भेंट कर रहे हैं जिसका सेवन पहले उन्होंने स्वयं किया था।' इधर कट्टरपंथियों का दमन चक्र तीव्रतर होता गया और उधर सूफी साधना के समर्थक अपने आन्दोलन को और तेज़ करने लगे। तब सूफी साधना तथा परम्परावादी इस्लाम धर्म में सामंजस्य का मार्ग अन्वेषित किया गया। इस कार्य को सम्पन्न करने का श्रेय बगदाद के हज़रत गज़ाली को है। उन्होंने सर्वदा के लिये सूफी साधना को इस्लामी धर्म के अनुकूल बना दिया। अब निमाज़ और रोज़ा को सूफियों ने अपनी साधना के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सूफियों का दर्शन परम्परावादियों का दर्शन (तसव्वुफ) बन गया[1]। आगे चलकर सुहरावर्दी व मुहीउद्दीन इब्न अरबी नामक दो सूफियों ने पुनः सूफी दर्शन को नई व्यवस्था दी। सुहरावर्दी का 'अवारिफुल माअरूफ' सूफी दर्शन का उल्लेखनीय धर्म-ग्रंथ है।

भारत में सूफीमत का प्रचार मुस्लिम-शासन की वृद्धि के साथ-साथ हुआ। इस देश में इस दर्शन का प्रवेश प्रथम बार ईसा की १२वीं शताब्दी में हुआ। यह दर्शन चार सम्प्रदायों में प्रचारित हुआ[2]—

| | |
|---|---|
| १. चिश्ती सम्प्रदाय | १२वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध |
| २. सुहरावर्दी ,, | १३वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध |
| ३. कादिरी ,, | १५वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध |
| ४. नक्शबन्दी ,, | १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध |

भारतीय सूफी साधकों की यह विशेषता रही कि उन्होंने प्रेममार्ग से इस्लाम का प्रचार किया तथा अपने त्यागमय तथा सदाचारी जीवन से भारतीय जनता का

---

१. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, पृ० ३०३
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ३०२

दिल जीत लिया। वस्तुतः सूफी दर्शन पर वेदान्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से मिलता है। क्योंकि जिस समय सूफी दर्शन का भारत में प्रवेश हुआ उस समय भारत के दर्शन-क्षेत्र में वेदान्त का विशेष ज़ोर था। अतः भारतभूमि में आकर सूफीमत वेदान्त के अपरिहार्य प्रभाव से अछूता न रह सका।[1] सूफी दर्शन की मुख्य विशेषतायें एवं मान्यतायें इस प्रकार हैं—

१. जगत् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है।
२. ब्रह्म और जीव में तात्विक एकता है।
३. ब्रह्म प्रेयसी है और जीव प्रेमी। ब्रह्म सौन्दर्य युक्त है, जीव प्रेम युक्त। सच्चे प्रेम (इश्क़) से सौन्दर्य को खोजा जा सकता है।
४. ब्रह्म व जीव की एकता ही साधना का लक्ष्य है, जिसके लिए सांसारिकता का त्याग परमावश्क है।

कश्मीर में सूफी दर्शन का प्रचार-प्रसार १३वीं शती से मिलता है। इससे पूर्व कश्मीर के दर्शन-क्षेत्र में शैव एवं वेदान्त का प्रभाव था। यह प्रभाव लल्लद्यद व नूरउद्दीन के साहित्य में स्पष्टतया परिलक्षित होता है। कश्मीर में इस्लामधर्म का आगमन ८वीं शती (मुहम्मदबिन कासिम के समय) में माना जाता है। किन्तु उसका पूर्ण विकास ११वीं व १२वीं शती में ही हुआ। कश्मीर में इस्लामधर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हज़रत मीरसैयद हमदानी (मृत्यु १२८७ ई०) तथा हज़रत बुलबुलशाह (मृत्यु १३२६ ई०) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन दोनों धर्म प्रचारकों के सतत प्रयत्नों द्वारा इस्लाम ने कश्मीर में एक स्थायी प्रभाव जमा लिया। ये दोनों प्रचारक कश्मीर में इस्लाम धर्म के संस्थापक माने जाते हैं।

जिस समय इस्लाम धर्म कश्मीर में प्रविष्ट हुआ उस समय इस्लाम ने सूफी दर्शन का प्रभाव ग्रहण कर लिया था। फलतः कश्मीर में पहुँचकर इस्लाम परम्परावादियों का आचार-धर्म न रहकर एक समन्वित धर्म प्रणाली के रूप में विकसित हुआ। कश्मीर का 'ऋषि-सम्प्रदाय' वस्तुतः इसी परम्परावादी आचार-धर्म के विरुद्ध आविर्भूत हुआ था और उसने एक समन्वित व भावात्मक धर्म-मार्ग को अपनाया था। कश्मीर का सूफी दर्शन मूलतः इस्लाम एवं वेदान्त के समन्वित स्वरूप की देन है। जिस समय इस्लाम धर्म कश्मीर पहुँचा उस समय कश्मीर में शैव तथा वेदान्त का प्रभुत्व था। बाद में इस्लाम के व्यापक प्रचार के कारण शैव तथा वेदान्त जन-मानस के क्षेत्र से विस्थापित होने लगे। दोनों विचारधाराओं में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप दोनों के बीच में एक मध्यम मार्ग खोजा गया। यह समन्वित धर्म-मार्ग वेदान्त, शैव तथा इस्लाम की मान्यताओं को लेकर आगे बढ़ा। कश्मीरी सूफी दर्शन इसी समन्वित धर्म-मार्ग पर आधारित है।

जिन कश्मीरी कवियों ने सूफी दर्शन के उक्त स्वरूप को अपनी काव्य-साधना

---

१. 'अरब और भारत के सम्बन्ध', मौलाना सुलेमान नदवी, पृ० २०३

का माध्यम बनाया. वे सभी प्रायः अशिक्षित थे। अशिक्षित होने हुए भी उनकी कविताओं में सूफी दर्शन का ऐसा सजीव अंकन मिलता है जो सभी दृष्टियों से पूर्ण है। ये सभी कवि सामंजस्यवादी थे। इन्होंने कभी एक लीक नहीं पकड़ी। ये कवि जिस वातावरण में पले, उसके प्रभाव को इन्होंने आत्मसात् कर लिया था जिसका सहज दिग्दर्शन इनकी कविताओं में होता है। ये धर्म प्रचारक न होकर प्रकृति व प्रेम के अनन्यतम पुजारी थे। स्वच्छकाल की कविता 'बु कुस गोस' (मैं कौन हूँ) 'यि छु गुमाने' (यह भ्रम है) न्याम साब की 'मु छुम निशि' (वे मेरे पास हैं) रहमान डार की 'प्रजनोवुम समार' (मैंने संसार को पहचान लिया), अहमद बटवारी की 'जान छुम जहानस गुल्य' (शरीर जगत् से मिला हुआ है), 'सोऽहम् सो' (वह मैं हूँ), मोमिनसाब की 'पान प्रजनाव्यो सो' (अपने आप को पहचान), वहाबखार की 'नि क्याह गव' (वह क्या है), आदि कविताएँ वेदान्त, शैव तथा इस्लाम-धर्म का सुन्दर निरूपण करती हैं।[1] इसी प्रकार प्रेम और सौन्दर्य-उपासना से युक्त स्वच्छकाल की 'हासिल दर्द मुहब्बत' (परिणाम मिला प्रेम का दर्द), न्याम साब की 'वालयार यीते' (प्रियतम यदि आयेंगे), 'च्यूनम चूरि दिल' (मेरा दिल चोरी ले लिया), रहमान डार की 'चु पैयमाल ओवनम' (मुझे मदिरा पिलाई), अहमद बटवारी की 'सूरतस छुख' (तुम सुन्दर हो), शाह गफूर की 'माशूक हद कथ गारि' (माशूका कहाँ छिप गई), रहीम साब की 'दिल', शाह कलन्दर की 'मे छुम दीवानगी' (मैं दीवाना हूँ) येमव चव म्यचुन शार व' (जिसने इश्क की शराब पी) आदि, वहाबखार की 'चमन गोमुत सोम यार' (मेरा प्रियतम किनके साथ गया), अमद परे की 'ललिये' (री प्यारी) आदि कविताएँ सूफी दर्शन की प्रवृत्तियों का आभास कराती हैं। इन शृंगारपरक कविताओं में कवियों ने प्रायः इश्क की महिमा, प्रेयसी के रूपगुण, विरह-वेदना आदि का तन्मयता-पूर्वक चित्रण किया है। कहीं-कहीं पर सुरा व सुन्दरी का चित्रण भी किया गया है किन्तु इस चित्रण के पीछे कवियों की विशुद्ध आध्यात्मिक चिन्तधारा ही प्रमुख रही है। उनमें लोलुपता अथवा अन्य किसी प्रकार की छिछली भावनाओं का उन्मेष नहीं है। सूफी कवियों की भाषा मूलतः फारसी-निष्ठ है। किन्तु कुछ कवियों ने यत्र-तत्र संस्कृत भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। शाह गफूर ने अपनी एक कविता 'सोऽहम्' में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, अवतार, ईश्वर, राम, आकाश आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार संसार, शून्य, तन, मन आदि शब्दों का प्रयोग भी अन्य सूफी कवियों ने किया

---

१. ये कविताएँ अमीन कामिल द्वारा सम्पादित 'सूफी शायर' भाग १ और भाग २ में संकलित हैं।

है। प्रेमाख्यान काल के विभिन्न कवियों के जीवन व कृतित्व का सोदाहरण परिचय प्रस्तुत है।

## शाह गफ़ूर

ये सूफी सम्प्रदाय के प्रथम कवि हैं। इनकी जन्म-तिथि अज्ञात है। जन्म-स्थान बड़गाम तहसील में 'छोन' नामक गाँव बताया जाता है। इनके वंशज अब 'सदरबल' में रहते हैं।

शाह गफ़ूर का काव्य सूफी दर्शन के प्रेम तत्त्व को स्वीकार करता हुआ वेदान्त का भी सुन्दर निरूपण करता है। इस अपूर्व सामंजस्य से शाह गफ़ूर ने कश्मीरी सूफी कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। इनके कलाम के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

यौत यिथ जनमस कँह छुनु लारुन
दारनायि दारुन सो हम सो,
ब्रह्मा विष्न महीशर गछि गारुन
शवि शक्ति आसी तिहिंजि जेव,
पान है सटनय जान हँयस मारुन
दारनायि दारुन सो हम सो।

बशर आविथ ईश्वर चे गारुन
ईश्वर सूत्य रोज सपदस सु,
ईश्वर सपदुन गव शरीर मारुन
दारनायि दारुन सो हम सो।
आकाशि समन्दर मन चायनावुन
वारु दपनावुन 'बुथ छुस सु'
कन दिथ सोखनन गछि माने छारुन,
दारनायि दारुन सो हम सो।

यह संसार मिथ्या है, यहाँ आकर कुछ मिलने का नहीं है। रे मनुष्य, तू उसको याद कर जो तुझमें समाया हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर उस ब्रह्म के ही रूप हैं अतः तू उस परम ब्रह्म की तलाश कर। व्यक्ति को छोड़ और ईश्वर की तलाश कर। ऐसा करने से तू उसी का अंग बन जायेगा। ईश्वर को पाने का मतलब है इन्द्रियों को वश में करना, उन्हें मारना। मन को व्यापक रूप देकर 'मैं ही वह हूँ' में ढालना चाहिये तथा ब्रह्म-तत्त्व के भेद को भली-भाँति समझ लेना चाहिए। रे मनुष्य, तू उसको याद कर जो तुझमें समाया हुआ है।

स्वच्छकाल

ये पुलवामा तहसील में यन्द्र नामक गाँव के रहने वाले थे। जाति के कुम्हार (क्राल) थे जो इनके नाम से ही स्पष्ट है। इनकी जन्म-मरण सम्बन्धी तिथियाँ अविदित हैं। केवल इतना कहा जाता है कि ये प्रसिद्ध कश्मीरी कवि महमूदगामी के समकालीन थे।[1]

स्वच्छकाल की कवितायें अध्यात्म-स्वचिन्तन की सहजता को लेकर जीवनानुभूतियों के सुन्दर सम्मिश्रण से युक्त हैं। इनमें प्रेम की मधुरता के साथ-साथ विरह-वेदना का उत्पीड़न भी समाहित है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

हता पान बु कुसगोस
पानय ओस बु बहानय,
माजि येलि जास यनय प्योस
वुछुम जून त आफताब
पुछुम आस त्युथुय गोस
पानय ओस बु बहानय।

कँह न ओस क्याह्ता ओस
कँहनस माने छु कँह्ता
कँहनस माने पनुन छु कोस
पानय ओस बु बहानय।

रे मेरे मन, मैं कौन हूँ। इस संसार में मेरा जन्म एक बहाना-मात्र है। जब मैं माँ की कोख से निकला तो चन्द्रमा और सूर्य देखे। जैसा मैं इस संसार में आया वैसा ही यहाँ से चला भी जाऊँगा। "सत्य कुछ भी नहीं" में भी एक सत्य छिपा हुआ है जिसकी व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है। इस संसार में मेरा जन्म एक बहाना-मात्र है।

× × ×

वासिल क्या छु वसान छय
हासिल दर्द मुहब्बत
चथि गुँय छि मनानच

1. 'कुलि शायर' भाग १ पृ० ६१, सं० अमीन कामिल।

हाकिम वदँ मुरादन ।
वन मुच मे गमन वव
मन वन ब गो मुरकव
पनने शाखे पनवो वव

हाकिम वदँ मुरादन ।
शमा दान शमा हृदय
पोंपुर माय करां गव
दोनय यच वाराह् म्व वय

हाकिम वदँ मुरादन ।

## महमूदगामी

इनका जन्म जिला अनन्तनाग की शाहाबादडूर तहसील के 'मारवारि'[1] नामक गाँव में हुआ। इनका जन्म-सन् अविदित है। मृत्यु सन् १८५५ ई० में हुई बताई जाती है।[2] कश्मीरी के ये एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने जीवनकाल में तीन शासन बदलते देखे। पठान-शासन में वे जन्मे तथा युवा हुये, सिक्ख शासन का उत्थान व अन्त देखा तथा डोगरा शासन के कुछ वर्ष बुढ़ापे में देखे।

जिस समय महमूदगामी साहित्यक्षेत्र में उतरे उस समय कश्मीर में फारसी का प्रभाव अपने चरमोत्कर्ष पर था। राजकाज की भाषा होने के साथ-साथ दैनिक व्यवहार में भी फारसी का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में कश्मीरी में काव्य रचना करना नितान्त कठिन हो गया था। कोई कवि यदि अपनी मातृभाषा में कविता करने का प्रयास करता भी तो लोग उसे फूहड़ समझकर उसकी अवहेलना करते। महमूदगामी से पूर्व सरफी, खाकी, गनी आदि फारसी कवि कश्मीरी काव्य-जगत पर ऐसे छा गये थे कि मातृभाषा में कविता करने वालों की ओर कोई ध्यान ही देता नहीं था। महमूदगामी ऐसे प्रथम कवि हैं जिन्होंने जन-रुचि की ओर ध्यान न देकर कश्मीरी में ही काव्य रचना की। उनको लोगों की कटु-आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा—उन्हें गवार (गामी) तक कहा गया किन्तु वे विचलित न हुये। वे जानते थे कि एक दिन लोगों की रुचि में परिष्कार होगा तथा वे कश्मीरी की भाव-गरिमा का आदर करेंगे। कश्मीरी के प्रति उनकी अटूट आस्था व लगन के परिणामस्वरूप कश्मीरी साहित्य में उन्हें एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। तत्कालीन फारसी-प्रिय समाज को कश्मीरी के प्रति प्रवृत्त करने में महमूदगामी का जो योगदान रहा है वह बहुमूल्य है। इस नाते इनका कश्मीरी भाषा तथा साहित्य पर काफी

---

१. अब यह गाँव 'महमूदाबाद' कहलाता है।
२. कश्मीरी जबान और शायरी, आज़ाद पृ० २५१ भाग २

उपकार है।

महमूदगामी एक बहुमुखी-प्रतिभा वाले कलाकार थे। इन्होंने साहित्य की विभिन्न विधाओं पर सफलतापूर्वक लेखनी चलाई। मसनवियाँ, गजल, गीत, 'लोलवाथ' आदि लिखकर इन्होंने कश्मीरी साहित्य-भण्डार को पर्याप्त समोन्नत किया। महमूदगामी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ उन्होंने एक ओर फारसी काव्य-शैली के आधार पर काव्य-रचना की, वहाँ दूसरी ओर परम्परागत कश्मीरी काव्य-शैली का सुन्दर अनुकरण भी किया जिसके संस्कार हब्बाखातून व अरणिमाल की कविताओं में मिलते हैं। इस दृष्टि से उनका सम्पूर्ण काव्य फारसी तथा परम्परागत कश्मीरी काव्य-शैलियों का सुन्दर सम्मिश्रण बन पड़ा है।

महमूदगामी अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे। इनके समकालीन कवि इन्हें 'मर्द-ए-उस्ताद' कहा करते थे। कविवर वली अल्लाह मत्तू अपनी मसनवी 'हीमाल' में लिखते हैं—

खसूसन काशिर्यन मंज मद नामो
छु वयाह कम अयजमां महमूदगामो,
मे कोरनम तम्य स्यठा शाहवार दिल शाद
सु छुय अज काशिर्यन मंज मर्द-ए-उस्ताद॥

(विशेषकर कश्मीरी कवियों में इस समय महमूदगामी सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने शाहवाद में मेरा दिल प्रसन्न कर दिया। वे कश्मीरी कवियों के उस्ताद हैं।)

महमूदगामी की लिखी नौ मसनवियाँ मिलती हैं। इनके नाम हैं—

१—लैला-मजनूँ
२—यूसुफ-जुलेखाँ
३—शीरी-खुसरो
४—हारुन-रशीद
५—महमूद
६

की है। मूल फारसी मसनवी को कश्मीरी में रूपान्तरित कर उसे संक्षिप्त प्रस्तुत करने में महमूदगामी को विशेष सफलता मिली है। कहीं-कहीं पर अपनी ओर से भी कुछ कश्मीरी गीत मसनवियों में जोड़ दिए हैं। इससे उनमें भी सरसता तथा प्रभावोत्पादकता आ गई है।

"लैला-मजनूं" महमूद की प्रथम मसनवी है। इसमें काव्योचित सौष्ठव प्रबन्धात्मकता की न्यूनता है। 'युसुफ-जुलेखा' मौलाना अब्दुर रहमान जामी प्रसिद्ध मसनवी "युसुफ-जुलेखा" पर आधारित है। कवि के अनुसार इस मसनवी रचना 'पीड़ित-आशिकों के मनोविनोद' के लिए की गई है। महमूद ने जामी आभार यों स्वीकार किया है—"दर जुलेखा वोन यि हजरत, जामियन वोन यि रिय पाठ्य महमूद गामियन' अर्थात् जुलेखा का किस्सा हजरत जामी ने कहा मैं अथवा महमूदगामी ने इसे कश्मीरी में कहा।

'यूसुफ-जुलेखा' महमूद गामी की सर्वाधिक लोकप्रिय मसनवी है। सरल भावपूर्ण भाषा-शैली में लिखी इस मसनवी के अधिकांश गीत आज भी लोग बड़े से गाते हैं। इस मसनवी के कुछ अंश जर्मन विद्वान कार्ल फ्रेड्रिक ने अपनी भाषा अनूदित किये थे। इस मसनवी पर उनका एक गवेषणात्मक लेख भी जर्मनी की शोध-पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

'शीरीं-खुसरो' शेखी व निजामी की मसनवियों पर आधारित है। यह सामान्य कोटि की मसनवी बन पड़ी है। 'हारून-रशीद' भी फारसी कवि निज़ामी की मसनवी का कश्मीरी रूपान्तर है। इसमें महमूद ने निज़ामी का नामोल्लेख मसनवी के प्रारम्भ में कर दिया है। मसनवी 'महमूद-गजनवी' लोल मरजान और दूरमल खान की प्रेमगाथा पर आधारित है। 'शेखसनान' शेख फरीदुद्दीन अत्तार की 'मन्तिक अलतीरा' का कश्मीरी रूपांतर है। इसमें एक हिन्दू रूपसी पर आसक्त शेख सनान की प्रेमकथा वर्णित है। शेखसनान उस रूपसी को पाने के लिए अपने धर्म तक को तिलांजलि दे देता है। अन्त में शेख को अपने लक्ष्य में सफलता मिल जाती है। काव्यात्मक सौंदर्य की दृष्टि से यह महमूद की सर्वश्रेष्ठ मसनवी कही जा सकती है। इसमें भाव व भाषागत सौन्दर्य दोनों मौजूद हैं। एक पद्यावतरण प्रस्तुत है—

> शेखन बुछुय पोख्तु, सरा तयमंज अख सोन्दरा
> बे जुफ्त विहिश्तबरताक पानय छि पानस मुश्ताक,
> मस्तस वालान कंगु न्य मस्तान सरका नंगय
> रंबिल मोय अस पाराम उन शाहमारन मारान,

सेंदरिमंज मोलि ट्योकुय सुय दाग साखन रोटुय,
तेज़ आस नाज़च शमशेर अज़ गमज़ मार गय शमशेर
दूबान अज़ सोराम् नाज़ देवान गव शेख जानबाज,
दूबान रोखसारन खाल हूरन मंज मय बलाला।
साफी बयाह आस सीनस तिथ् छनू शाह आईनस,
सम यार संदि हुस्नय मस चय हैवस रटुस न
हुस्नन त इश्कन कोर जोश गव सना शेख बेहोश ॥

शेख ने एक पक्का मकान देखा जिसमें एक रूपसी बैठी हुई थी। वह अकेली थी तथा अपनी उपमा स्वयं आप थी। वह बालों को कंघी कर रही थी तथा सिर उसका नंगा था। कोमल बालों की चोटी बनाते समय ऐसा लग रहा था मानो असंख्य नागिनों को मरोड रही हो। सिन्दूर का टीका उसके माथे पर सुशोभित हो रहा था तथा टीके की लाली चमक रही थी। सिन्दूर के बीच में लगी काली बिन्दी का क्या कहना, उसी बिन्दी ने तो उसके दिल पर दाग़ लगाया। उसके नाज की तलवार अत्यन्त तेज़ थी, इस तलवार के वार से न जाने कितने आशिक घायल हो चुके हैं। उस रूपसी की आँखों में काजल लगा हुआ था जिसे देख शेख सहसा दीवाना हो गया। उसके रुखसारों की रौनक ऐसी थी मानो हूरों ने अपना लावण्य चिपका दिया हो। उसका वक्षस्थल इतना स्वस्थ था कि आईना भी लजाता था। ऐसे यार के हुस्न को देखकर शेखमनान के होश जाते रहे। हुस्न और इश्क ने जोश मारा और शेख बेहोश हो गये।

'शेखमंसूर' मसनवी के लिये भी महमूद ने जामी का आभार माना है। इस मसनवी में प्रसिद्ध सूफी संत मनसूर के प्रेम-संदेश तथा उनको सूली पर चढ़ाए जाने का वृतान्त दर्ज है। मनसूर के प्रेम-दर्शन तथा उनकी अध्यात्म-दर्शन सम्बन्धी विचार-धारा को कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। इस मसनवी से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ओस दर बगदाद मंसूर हलाज आरिफन तु आशिकन हुंद ओस ताज
पचाहन वरीहन ओसुय सु मुरीदन बाद अशा गव महशूर बतअलालमीन,
कतर दर दरिया वहदत गव बसिय कुल दरिया कतर मंज़सय छु बसिय
मनि कय लोग कर्नि बेखोफ वखतर आलिमव समिथ बनिख शाहस खबर।

बगदाद शहर में मनसूर नाम का एक खुदा-दोस्त रहता था। वह आशिकों और दार्शनिकों का सरताज था। पचास वर्षों तक वह मुरीद बनकर खुदा के ध्यान में खोया रहा। इसके बाद वह पूर्ण रूप से अल्लाह में मिल गया। उसका कहना था—

कतरा दरिया से अलग होने पर भी दरिया ही कहलाता है तथा दरिया का अस्तित्व कतरे में ही समाहित है। अन्दर, बाहर ऊपर तथा नीचे से वह अल्लाह के निकट पहुँच गया और 'मैं ही खुदा हूँ' की रट लगाने लगा। कटु-सत्य की बातें जब वह बेनीफ़ हो करने लगा। तभी विभिन्न आलिमों ने मिलकर शाह से उसकी शिकायत की।

'पहलवननामा' मसनवी के लिए महमूद ने मौलाना रूमी की मसनवी का आधार लिया है। इस मसनवी में कवि ने रूमी की मसनवी से कुछ पद्यांश ज्यों-के-त्यों अनूदित करके रख दिये हैं। इससे मसनवी की प्रबन्धनात्मकता तथा स्वाभाविकता में नीरसता आ गई है। 'यक-हयात' एक संक्षिप्त मसनवी है। इसमें प्रेम की दिव्यता ईश्वर-प्राप्ति के साधन, सांसारिक दुखों का निवारण आदि विषयों पर अनुभवपूर्ण चर्चा मिलती है।

महमूदगामी की स्फुट कविताओं एवं ग़ज़लों में प्रेम की महिमा तथा संयोग-वियोग शृंगार का सजीव मिश्रण मिलता है। एक विरह-उन्मादिनी नायिका की आतुरता का कवि ने एक स्थान पर यों अंकन किया है—

> रंग् दिवनस प्रंग पारयस शोरविथ यथस पान
> हंगतोमारि दूर अलरायस छुम मिय हावस येवि अरमान
> छतर योनेन तल ययरावस यास आयस बाल सानिग्य स्याम
> नरि आलवस लरि पान सादस आयस लानिग्य स्याम ॥

रंगीले महबूब के लिये पलंग सजाकर रखूँगी और सिंगार करके उसकी राह देखूँगी। माथे का टीका और कानों की बालियों को हिलाती रहूँगी। जब तक वे नहीं आते मैं इन्हें हिलाती ही रहूँगी। घने चिनारों की छाया में पलंग बिछाऊँगी तथा उन्हें अपनी बाहों में लेकर उनके मन सिटने का अरमान निकाल लूँगी।

एक अन्य कविता में विरह-संतप्त नायिका का हाल द्रष्टव्य है—

> कवय रिन्द पे कोरयम दूस
> वसो मो वस वमो मो वस,
> बु करनस यार अदकन याग्य,
> बु करनस यार करम सांग्य,
> मे नविमो यार वानी वस
> वमो मो वस वमो मो वस।

अस्य कनि खून हारान दस
मस खास्य ह्यथ्यरारान दन
दसयो खास्य येम्बर जल
वलो मो चल वलो मो चल ॥

चू स ब आस्य जून अफताब
मे गुनयम अदकनारस आब
गदव कल्यकाल अबरस तल
वलो मो चल वलो मो चल

जुलुक ह्यतखानस मंज
करान आस यूसुफस किय संज,
अदनय यार यादसुय मो डल
वलो मो चल वलो मो चल ॥

तमना चोन महमूदस
दमा हजिय पान ठावतस,
शफी ओनमय नवी तबरसूल
वलो मो चल वलो मो चल ॥

रे मेरे महबूब, तूने मुझसे छल क्यों किया ? आओ, अब कहीं और न जाओ। मुझे तेरे इश्क ने कहीं का नहीं रखा है। तक्दीर ने तो खराब ही कर डाला है। मुझे तो बस तेरी ही चाह सता रही है। मैं आँसुओं के स्थान पर खून के कतरे बहा रही हूँ तथा खून-जिगर के जाम भरकर तेरा इन्तजार कर रही हूँ। मैं नरगिस के पुष्प की भांति डाली पर बैठी भौंरे के आगमन की प्रतीक्षा कर रही हूँ। तुम चाँद हो और मैं सूर्य। किन्तु तुमने मेरे इश्क की अग्नि पर ठंडा पानी बरसाया। कल बादल सूर्य और चाँद दोनों को ढाँप लेंगे, आओ अब कहीं और न जाओ। मैं अपने कमरे में सिंगार करती हूँ वैसे ही जैसे जुलेखा यूसुफ के लिए किया करती थी। रे मेरे बचपन के साथी, वायदे को भुला मत देना। तुझे नबी और रसूल की कसम है। महमूद को बस तेरी ही आरजू है। आओ, अब कहीं और न जाओ, न जाओ।

महमूदगामी की एक अन्य प्रसिद्ध कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती

है। प्रेमाख्यान काल के विभिन्न कवियों के जीवन व कृतित्व का सोदाहरण
प्रस्तुत है।

## शाह गफूर

ये सूफी सम्प्रदाय के प्रथम कवि हैं। इनकी जन्म-तिथि अज्ञात है।
स्थान बडगाम तहसील में 'छोन' नामक गाँव बताया जाता है। इनके
'सादरवन' में रहते हैं।

शाह गफूर का काव्य सूफी दर्शन के प्रेम तत्व को स्वीकार करता
का भी सुन्दर निरूपण करता है। इस अपूर्व सामंजस्य से शाह गफूर ने
कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। इनके कलाम के कुछ
उद्धृत किये जाते हैं—

योत विथ अममस कॅह छुनु सापन
दारमावि दावन सो हम सो,
ब्रह्मा विश्न महीशर गछि सापन
दावि शक्ति यासो तिहिंदि खेव,
पान है सदमय जान हुयल मापन
दारमावि दावन सो हम सो।

अंदर आविथ ईश्वर बॅ गावन
ईश्वर गुरुय रोम रावरस गु,
ईश्वर रावुन गव शरीर मापन
दारमावि दावन सो हम सो।
माराति समन्दर मन वावनावुन
वार् दननावुन वुय छुग गु'
कन दिथ सोअमन गछि माने छावन,
दारमावि दावन सो हम सो।

स्वच्छकाल

ये पुलवामा तहसील में यन्द्र नामक गाँव के रहने वाले थे। जाति के कुम्हार (कान) थे जो इनके नाम से ही स्पष्ट है। इनकी जन्म-मरण सम्बन्धी तिथियाँ अविदित हैं। केवल इतना कहा जाता है कि ये प्रसिद्ध कश्मीरी कवि महमूदगामी के समकालीन थे।[1]

स्वच्छकाल की कवितायें अध्यात्म-स्वचिन्तन की सहजता को लेकर जीवनानुभूतियों के सुन्दर सम्मिश्रण से युक्त हैं। इनमें प्रेम की मधुरता के साथ-साथ विरह-वेदना का उत्पीड़न भी समाहित है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

हता पान ब् कुसगोस
पानय श्रोस ब् बहानय,
माजि ग्रँलि आस चनम प्योस
वुछुम जून त आफताब
यथुय आस त्युथुय गोस
पानय श्रोस ब् बहानय।

कँह न ओस क्याह्‌ता ओस
कँहनस माने छु कँह्‌य
कँहनस माने वनुन छु कोस
पानय श्रोस ब् बहानय।

रे मेरे मन, मैं कौन हूँ। इस संसार में मेरा जन्म एक बहाना-मात्र है। जब मैं माँ की कोख से निकला तो चन्द्रमा और सूर्य देखे। जैसा मैं इस संसार में आया वैसा ही यहाँ से चला भी जाऊँगा। "सत्य कुछ भी नहीं" में भी एक सत्य छिपा हुआ है जिसकी व्याख्या करना अत्यन्त जटिल है। इस संसार में मेरा जन्म एक बहाना-मात्र है।

× × ×

वासिल क्या छु वनान कथ
हासिल दर्द मुहब्बत
कथि सूत्य छि ननानकथ

---

१. 'सूफ़ी शायर' भाग १ पृ० ६१, सं० अमीन कामिल।

है। इस कविता में नारी-हृदय की कोमल भावनाओं तथा उसके निःस्वार्थ प्रेम का वर्णन है। यह कविता कश्मीर में घर-घर में गायी जाती है—

> करयो मंज़ जिगरस जाय मे नो माय मशान चान्य
> बदन म्योन ग्रस्कुन्य श्राय सम्य मंज़ बोन्द तुलुय मे,
> दोदुम सीन कोरुम न वाय मे नो माय मशान चान्य
> यि कम्य मार वोपुय दाये रोटय म्योन मलालय
> फिकरस पय फकीर वाये मे नो माय मशान चान्य
> लगिनय दमरेगुन श्राय मे छुम तमना चोन——।

रे मेरे महबूब, मैं तुझे अपने जिगर में स्थान दूँगी। तुम्हारी लगन कभी छूट नहीं सकती। मेरी देह इश्क की आग में तप कर भट्ठी बन गई है और उसमें तेरे वियोग के कारण हृदय भूना जा रहा है। मेरा सीना जल गया किन्तु मैंने उफ़ तक न की। मुझे केवल इतना बता दे कि तुझे किस मित्र ने मेरे विरुद्ध कर दिया जो तुम मुझसे विरक्त हो गये। मैं तो रे सितमगर, हर दुःख में तेरा साथ दूँगी—तुम्हें तेरी मुहब्बत से कोई भी विमुख नहीं कर सकता। तू जुग-जुग जिये—यही मेरी कामना है।

## वली अल्लाह मत्तू

*ये महमूदगामी के समकालीन थे। मोखुन-पीरज़ादा वंश से इनका सम्बन्ध* बताया जाता है। जन्मकाल अविदित है। निधन सन् १८७८-६० में हुआ। जन्म-स्थान नौशहरा कहा जाता है।

वली अल्लाह मत्तू की तीन काव्य-कृतियाँ मिलती हैं। 'हीमाल,' 'चहल इसरार' तथा 'जरूरियात-दीन'। इनके अतिरिक्त उन्होंने कुछ स्फुट रहस्यवादी कवितायें भी लिखी हैं।

'हीमाल' वली अल्लाह मत्तू की प्रसिद्ध मसनवी है। यह सदर-उद्दीन के किस्सा 'नागराजन वा हीमाल' पर आधारित है। इसमें नागों के राजकुमार नागार्जुन तथा आर्यों की राजकुमारी हीमाल की प्रेम कहानी वर्णित है। भाषा सरल तथा घटनाओं को अग्रसर करने में सक्षम है। इस मसनवी में कवि ने अपने दो शिष्यों-मजीद खान और ज़रीफ़खान के कुछ गीतों का भी समावेश किया है। लगता है कि ये गीत अपनी मसनवी 'हीमाल' में सम्मिलित करने के उद्देश्य से ही कवि ने लिखवाये हैं। इनके कलाम से एक नमूना प्रस्तुत है—

> अकिस आसान्य छि आगान शिहिज़ बून्य
> बेयिस ब्रू ब्रू करान घर तल छि हून्य

अकिस आशन्य गगुर ज़न छि दगादार
फलि-फलि निय कर्येस खाली सु बाज़ार,

अकिस आशन्य छि गारब़ रोज़ि खामोश
करयेस म्यव म्यव कारस छुस फरमोश,

अकिस आशन्य तुलर ज़न टोफ लायान
नेवरमि मतलब खोद साज़ बायान ।

( हीमाल से )

### सीवद्यद

ये वली अल्लाह मत्तू के समकालीन रही है । इनका जन्मकाल अज्ञात है, निधन हज़्रतबल मे सन् १८६० ई० मे हुआ बताया जाता है[1] । इनका अधिकांश साहित्य नष्ट हो चुका केवल एक कविता उपलब्ध है। इस कविता से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है—

नप-नप करवुन आफताब छु मे
फोज़ि-फोज़ि कुदमुयमोज़ दरयाव,
पंपोश रोखसुय शबनम गोमय
ब दमि-दमि छुस सुय ललनाबान

शालमार दहिस प्यठ लर लदमय
सय कुट्य करिमस ज़ूनिडबि सान,
लद मंज़ हज़रत यूसुफ छु मय
ब दमि-दमि छुस सुय ललवान—।

### अब्दुल अहद 'नाज़िम'

इनका जन्म बिजबिहारा मे हुआ था। जन्मकाल अविदित है। निधन सन् १८६५ ई० मे हुआ बताया जाता है।[2] व्यवसाय पीर-मुरीदी था।

'नाज़िम' ने मुख्यतः गज़लें एवं नातें लिखी हैं। एक मसनवी 'ज़ैन-उल-अरब' भी मिलती है। इसमे ज़ैन और यरताश की प्रेमकहानी वर्णित है। कहानी का अन्त बड़ा ही मार्मिक है। ज़ैन को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है क्योंकि उसका अपना भाई हरीम उसकी निर्मम हत्या कर देता है। यह मसनवी शेख फ़रीद-उद्दीन अत्तार की 'इलाहीनामा' पर आधारित है।

'नाज़िम' मूलतः शृंगारवादी कवि है। इनकी शृंगारपरक कविताओं मे प्रेम

---

१—'काशिर शायरी' मोही-उद्दीन हाजिनी, पृ० २१
२—वही पृ० २४

एवं नख-शिख वर्णन की सुकोमल अभिव्यक्तियां दृष्टिगत होती हैं। कवि ने अपनी प्रखर कल्पना-शक्ति द्वारा नायिका के विभिन्न हावों को मूर्त रूप प्रदान करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की है। नायिका की कान्ति, कौमार्य, विरहाग्नि आदि का चित्रण उन्होंने अत्यन्त सहृदयता से किया है। अलंकार-योजना के लिए कवि ने प्रायः फारसी में प्रचलित अप्रस्तुत-विधान का ही आधार लिया है। कविवर बिहारी की नायिका जिस प्रकार आभूषणों का भार वहन नहीं कर सकती क्योंकि वह पहले से ही अपने यौवन-भार से डगमगा रही है, उसी प्रकार 'नाज़िम' साहब की सुकुमारी नायिका भी अपनी जुल्फ का भार सम्भाल नहीं सकती—उसे डर है कि कहीं उसकी कमर जुल्फ के भार से खम न हो जाए—

कमर मोई आब्युल तारि
आब्युल त्यूतजि खोचान छुस,
होल मा गछि जुल्फ कि बार,
आब्युल त्यूतजि खोचान छुस।

तेरी कमर बाल के समान बारीक व नाज़ुक है। इतनी बारीक व नाज़ुक है कि मैं डरता हूँ कि कहीं जुल्फ के भार से वह टेढ़ी न हो जाए।

'नाज़िम' की कविताओं से कुछ और नमूने प्रस्तुत हैं—

छ चश्म मोय गुम्बल रवे गुल हो तन
यिम चोर गुल अकि धरि फोल कारि अज़ोओ।

यिम छार वनस वरवार करताना सु यार बोठे
या मारि तुलिथ खनर ननु मानि शबाह रोठे।

बुलबुल छु बिहिथ बागस मुश्ताक दज़िथ बिल्कुल
मस रोठ गुल म बुलबुल अठ अशक कथा रोठि।

मस बुलबुल कमवामन धूनरावनम अशोल्यामन
छुम चूरि दज़िथ बालन कर लगा बवा मोठि।

मेरी आँखें नरगिस है, बाल सुम्बुल और चेहरा गुलाब। ये चार फूल एक ही डाली पर मानो सब किस बाग में खिल गये हैं।

मैं ये प्रेमकोर अपनी प्रेयसी को उसके द्वार पर जाकर सुनाऊँगा। या तो वह खंजर उठाकर मुझे कत्ल कर दे या फिर मेरे यहाँ एक रात बिताये।

बुलबुल फूल के पास बैठा हुआ है तथा प्रेम-क्रीड़ा में मदहोश हो चुका है।

किन्तु न यह गुल रहेगा और न यह बुलबुल। केवल इश्क का अफसाना बाकी रहेगा।

मुझको साकी ने शराब पिलाई तथा मैं एक प्याला पीकर ही मस्त हो गया। अब वह दूर रहकर मुझे जला रहा है। न जाने इन जख्मों की दवा वह कब भेजेगा।

## रसूलमीर

इनका जन्मकाल अविदित है। जन्मस्थान तहसील इस्लामाबाद में डूरशाहबाद बताया जाता है।[1] इनके पिता डूरशाहबाद गाँव के एक मुहल्ले मीरमैदान के नम्बरदार थे। रसूलमीर का अधिकांश समय इसी मुहल्ले में बीता था। स्वयं कवि ने एक स्थान पर कहा है—

> डूरि बिहिथ रसूलमीर छुय वनान ज़ार
>
> मीर मादान आसान गरये लो

रसूलमीर डूर गाँव में बैठकर अपना दुखड़ा कह रहा है, मीरमदान में ही उसका घर स्थित है।

रसूलमीर का मरणकाल भी अविदित है। कहा जाता है कि वे प्रसिद्ध कवि महमूदशाह गामवागी (निधन १८७९ ई०) से ९ वर्ष पहले ही इस संसार से चल बसे थे। इस प्रकार उनका निधनकाल सन् १८७० ई० निश्चित किया जाता है।[2] श्री आजाद के मतानुसार रसूलमीर का निधन यौवनकाल में ही हुआ था।[3] अधिकांश विद्वानों की धारणा है कि वे लगभग साठ वर्षों तक जीवित रहे। जब उनकी मृत्यु हुई तो उन्हें उनकी इच्छानुसार डूर की खानगाह के अहाते में दफना दिया गया। मृत्यु के समय इनके दो पुत्र फतहमीर और असरफमीर जीवित थे।

रसूलमीर के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि उनका शरीर अत्यन्त बलिष्ट, सुडौल तथा गठा हुआ था। लम्बा कद, बाँकी मूछें, घने चिकने बाल भरा चेहरा, चमकती आँखें तथा गोरा रंग—ये सारी नियामतें उन्हें प्राप्त थीं। मुस्लिमजाजी कूट-कूट कर भरी हुई थी। तत्कालीन प्रथानुसार फारसी-अरबी का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्हें एक मकतब में भर्ती किया गया जहाँ एक लड़की भी पढ़ने आया करती थी। कहते हैं कि वह एक हिन्दू लड़की थी। दोनों में जान-पहचान हो गई और कालान्तर की यह जान-पहचान धीरे-धीरे प्रेमभाव में अंकुरित हो गई। इस लड़की को रसूलमीर ने अपनी कविताओं में कई नामों से सम्बोधित किया है, जैसे—बोंगी, पदनो, राजदुलारी, (हिन्दूराजकुमारी), पोशमाल आदि। दोनों की प्रेम

---

१. कश्मीरी जबान और शायरी, आजाद पृ० २८७

२. रसूलमीर, मुहम्मद युसूफ टैंग पृ० ७

३. कश्मीरी जबान और शायरी, आजाद, पृ० २८८

लीला के चर्चे आस-पड़ोस में होने लगे। 'कोंगी' के माता-पिता ने उसकी शादी तुरन्त अपने ही इलाके में एक हिन्दू लड़के के साथ कर दी। बस, फिर क्या था—वियोग के आलम में मीर का संतप्त हृदय उद्वेलित हो उठा। व्यथित हृदय के भारी बोझ को हलका करने के लिए उन्होंने प्रेयसी की प्रशंसा में दर्द भरे गीत लिखे जिनमें उनकी आन्तरिक पीड़ा, उनके गिले-शिकवे, उनका आत्म-समर्पण, त्याग व संताप समाहित है।

रसूलमीर का अधिकांश काव्य-साहित्य मौखिक परंपरा में प्रचलित रहा है। कुछ वर्ष पूर्व इनकी कविताओं को छः पुस्तिकाओं में संपादित कर 'कलाम-ए-रसूलमीर' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। इनमें रसूलमीर के ६७ गीत व गज़लें आकलित हैं। कहा जाता है कि मीर ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में एक मसनवी 'जेबनिगार' भी लिखी थी। *यह मसनवी इस समय अनुपलब्ध है।*

रसूलमीर के कलाम से कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

(१) शूबि शाबाश चानि पोतछायि लोलो
रिन्दपोश माल गिन्दने द्रायि लोलो
राजहंजयानि नाज़ क्याह् अंज़िनि गर्दन
*या इलाही* चश्मबद *निशि* रछ्तन
कम क्याह् गछि चानि वारगायि लोलो
—रिन्दिपोशमाल गिन्दने द्रादि लोलो

जाल्य आंकन बल्य येलि लागि शुमार
पछ् लगनस गंजरनस लछ् तय हज़ार
अमि शायि नो मोकलन पाय लोलो
रिन्दपोश माल गिन्दने द्रायि लोलो
रोनि *गोङकुय यामत* वोज़ुन साज़
ती बूज़िय आव पानु यम्ब्राज
—पोशमाल छुम पोशि पूज़ाये लोलो

हल्कुबन्द तल्य शूबान नारि पिस्तान
वोल रसूलमीर चाने मायि लोलो
*रिन्दपोश माल गिन्दने द्रायि लोलो*

उसकी छवि पर बलिहारी जाऊँ, फूलों की रानी विहार करने को निकली है। उस हिन्दू-राजकुमारी की गर्दन हंस के समान सुन्दर है, हे मेरे खुदा उसे चश्मेबद से महफूज़ रखना। उसके बाल इतने घने हैं कि यदि वह उनकी चोटी बनाना शुरू करे तो न जाने कितने हजार-लाख पखवाड़े बीत जायेंगे। उसकी आकर्षण-शक्ति का कोई अन्त नहीं है। जब उसकी पायल की झंकार वायुमण्डल में ध्वनित हुई तो

स्वयं इन्द्रदेव नाचते-गाते नीचे उतर आये। ऐसी रूपसी पर रसूलमीर दिलोजान से फ़िदा है।

(२) हारिये थावकना कन तु लोलो

ज़ार म्यान्य तोतस वनतु लोलो
मदनस वन तस आन तमुय आर
वदनस छुम न ज़ांह छ्येयनतु लोलो

बादाम चश्म यनु मु चरावेन
तन छुम मच रावान त लोलो
सन मे कोरनम कामदीवन
सोन छुम पाम दिवान त लोलो
हिय कोर्नम मे कोंग पोशुक रंग

यासमन गयम सोसन त लोलो

हारनुय शापन गाजनस बो

दान्य दाग्य ज़ोन मान्य ज़नतु लोलो
आलम गेलि त बयह छु परवाह्
सोदाह मिलि पुद वोन त लोलो

अश्कनि आहरेनि मंज छु पोंपुर
नार थान वार ज़ालुन त लोलो
ह्रि त वेरिनाग ह्यमस जाय
रसूलमीर ततिय छु आसन त लोलो॥

री मैना, जरा थोड़ी देर के लिये कान इधर कर मेरे दुखड़े को सुन लेना। इस दुखड़े को सुनकर मेरे महबूब तक पहुँचा देना। उसे कहना कि उसका प्रेमी दिन-रात आँसू बहा रहा है तथा विरह-अग्नि में उसका हृदय पिघलता जा रहा है। जब से उसकी बादामी आँखें मेरी ओर उठी हैं तभी से मुझ पर अजीब दीवानगी का आलम सवार हो गया है। उस सितमगर ने मुझे कहीं का नहीं छोड़ा है। मेरा लाल रंग केसर के समान पीला पड़ गया है। उसके विरह में मैं आषाढ़ मास में गलने वाली बर्फ के समान पिघल रहा हूँ। भले ही सारा संसार मुझे ताने दे किन्तु मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। जिस प्रकार शमा की चिता पर परवाना भस्म हो जाता है उसी प्रकार मैं भी प्रियतम के विछोह में घुट-घुटकर प्राण देना चाहता हूँ। मैं उसे दूर तथा वेरीनाग में ढूँढ़ता रहूँगा, रसूलमीर का कहना है कि उसका महबूब यहीं कहीं पर छिप कर बैठा हुआ है।

## मीर मुहम्मद सेफ़अलद्दीन मन्तकी

इनका जन्मकाल अविदित है, मरण-काल सन १८७४ बताया जाता है।[1] ये 'सेफ' उपनाम से कवितायें करते थे। 'वामिक-अजरा' मसनवी में इनका परिचय यों मिलता है—

> गरज़ यंद कासि वायिस परज़नुन छुम
> परस नाम व निशान वोनमुत पनुन छु़म
> फकीरा छुस तेल्युक तारबलुक मीर
> मुरीद शेख अहमद पीरे-ए-कश्मीर ॥

अगर किसी भाई को मेरा नाम-पता जानना हो तो उसे कहे देता हूँ। मैं एक पुराना फकीर हूँ और 'तारबल' का मीर हूँ और शेख अहमद कश्मीरी का मुरीद हूँ।

'सेफ' की दो मसनवियाँ मिलती हैं। वामिक-अजरा' और 'हीमाल'। स्फुट कवितायें बहुत कम लिखी हैं। 'हीमाल' लुधियाना (पंजाब) में जाकर लिखी गई बताई जाती है।[2] इस मसनवी का रचना-काल सन १८६४ है। वर्णनशैली की दृष्टि से यह एक सुन्दर मसनवी बन पड़ी है। इसमें कुल २१११ छन्द हैं। 'वामिक-अजरा' सन् १८५५ में लिखी गई है। 'हीमाल' की तुलना में यह मसनवी शिल्प की दृष्टि से उतनी सुन्दर नहीं बन पड़ी है। 'सेफ' साहब अरबी और फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी दोनों मसनवियों में अरबी-फारसी के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कहीं-कहीं पर तो पूरी-की-पूरी पंक्तियाँ शुद्ध अरबी-फारसी में हैं। इनका कवि-हृदय कविता के आन्तरिक सौंदर्य की अपेक्षा उसके बाह्य-सौंदर्य में ही अधिक रमा है। इनके कलाम के कुछ नमूने हैं—

> दनाम बयाह् आस्य शापि शाये
> दनम बयाह नविमे दारस मुशाये
> यि बर ओनुम म्द्रेम यावनस गूर
> थलि ओगिय जिन्दारान निशउ बूर
> यि बर ओनुम मे पादस तालानरोग
> सग बोम रोवुम अदक नामूग
> यि बर ओनुम मे तर लारय म्द्रेम दूबेम

---

1—'कश्मिर शायरी', पृ० ६३

2—'कश्मीरी जबान और शायरी' पृ० १०४

करन्य छुस लल्य वरन्य दूरन्य दिन
कोरुम मे मात्यन्युक नामूस, त् तंग
करुम खश पान्यपानस वक्त गो तंग
सु न डेशन ब न ज़ाह जिन्द रोज़
दज़नय ज़न दज़ बो दरद सोज़ ।

## मीर सना अल्लाह क्रेरी

ये तहसील बारामूला के क्रेरी गाँव में रहते थे। पिता का नाम खलील था। सना अल्लाह अपने पिता के इकलौते पुत्र थे। इन्हें बचपन से ही कविता करने का शौक था। सरफराज बेग काबली इनके गुरु थे जिनसे प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा पाई। ६२ वर्ष की आयु में सन् १८७५ ई० में इस दुनिया से रुखसत हुये।

मीर सना अल्लाह ने मुख्य रूप से भजन (नअत) और नज्में ही लिखी हैं। इनके द्वारा रचित कुछ प्रबन्धकृतियों का भी उल्लेख मिलता है जिनके नाम हैं—

'अहवाल अहल आखिरीयत', 'किस्सा-ए-खरवान', किस्सा-ए-सबादयहूदा' और 'तोबा-ए-नसूहा'। इनमें से अहवाल अहल आखिरीयत' अधिक लोकप्रिय है। इस कृति में इस्लाम-धर्म की मान्यताओं के आधार पर बिहिश्त, दोज़ख, दान-पुण्य आदि का वर्णन है। इनके कलाम से एक नमूना प्रस्तुत है—

हा वाव वातखना तोतुय येति डाफ आविय मुस्तफा
अहवाल म्यानिय तस वनख सुय हो करेम दाद्यन दवा,
सुय छुय जुवन पय सोन त सुय छुर्याहिमायत सोन
सुय जान सुय नुन्दबोन्य त सुय रहनुमा सुय पेशवा,

दसतार रुजिथ अर्ज़ कर कासुर गरीबा प्यव पयर
बेचार, बेकस, बेहुनर, बेयारो यावर बे नवा,

दपिज़स पयर प्योमुत तुलुन या ईर गोमुत बोठ अनुन
या अज़ अलहद मूमुत तुलुन वन्यकेन तग़ाफुल छा रवां ॥

ऐ सबा, तू वहाँ जाना जहाँ पर मेरे मुस्तफा सोये हुए हैं। उनके पास जाकर मेरे दुःख-दर्द रह सुनाना, मेरे ज़ख्मों का मलहम वही करेंगे। वे अनाथों के नाथ, दीनों के स्वामी तथा असहायों के सहायक हैं। तुम उनके समक्ष जाकर यह विनती करना कि एक कश्मीरी भूलोक पर दयनीय तथा शोचनीय स्थिति में पड़ा हुआ है। उनसे कहना है कि उस उपेक्षित को थाम लेना आपका कर्तव्य है, अब उसे ज्यादा न तड़पायें—यह आपकी शान के विरुद्ध है।

## मक़बूलशाह क्रालवारी

श्रीनगर के दक्षिण में लगभग चौदह मील दूर दूधगंगा के किनारे पर क्रालवे
नामक एक गाँव बसा हुआ है। कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध कलाकार श्री मक़बूलशा
क्रालवारी का यही जन्म-स्थान था। इनके पिता का नाम ख्वाजा अब्दुल कद्दूस था
मक़बूल ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ग्रहण की। अरबी फारसी की कु
किताबें पढ ली। किन्तु किताबों से हटकर उनकी रुचि शेरोशायरी की ओर बढ़
गई। पीरमुरीदी उनका परपंरागत व्यवसाय था। लगभग ढाई बीघा ज़मीन भी पैतृ
सम्पत्ति में प्राप्त हुई थी। किन्तु जीवन-यापन सीमित आय के कारण दुरूह हो गय
था। आर्थिक-संकट उनके जीवन में बराबर छाया रहा। बचपन से ही स्वास्थ्य भी
नर्म रहा। बीस साल की आयु मे नज़ला, वात-कफ आदि रोग बुरी तरह सवार हो
गये। पेट के विकार ने और भी दुर्वल बना दिया। जीवन के अन्तिम वर्षों मे इन्होंने
काफी समय तक नमक का सेवन नहीं किया। केवल दूध व दलिया का प्रयोग करते
रहे। अपनी इस दीन-हीन स्थिति का वर्णन कवि ने स्वयं दो-एक स्थानों पर यों
किया है—

> १—छुम गोमुत ग़ालिब मरज़, करतम वफा
> या मुहम्मद मुस्तफा, बखशुम शफा,
> दोर मरदा च़्रुम अहताज
> गोम ताक़त कम त तबदील मिज़ाज,
> संगदस्ती मोतवानी छुम स्यठा
> या मुहम्मद मुस्तफा, बखशुम शफा ॥

चिर-रुग्णता मुझ पर हावी हो रही है, भगवान! उसे दूर कीजिए। रोग
बढ़ने ही जा रहे हैं किन्तु उपचार के लिए साधन नहीं है। शरीर से सारी शक्ति छिन
चुकी है, मिज़ाज भी बदल गया है। बेबसी और लाचारी का मारा हूँ। हे भगवान,
मेरा उद्धार कीजिए।

> २—अय बोह परहेज़ करुम-करुम आस तंग
> ताव छुम न दर दिल रंग,
> सुस्त व बेताक़त गामच़ छुम बात व पा
> या मुहम्मद मुस्तफा, बखशुम शफा ॥

नित्य पथ्य-सेवन करते तंग आ चुका हूँ। दिल कमज़ोर हो चुका है। बेहो

भाषा भी फीकी पड़ गई है। हाथ और पैर शक्तिहीन हो गए हैं। हे भगवान, मेरा
र कीजिए।

मकबूलशाह के दो संतान हुई थी। पुत्र अलीशाह उनके निधान के समय छः
ने का था और पुत्री राजबानू श्रीनगर के मुहल्ला कैलाशबोरा में किसी परीज़ादा
ने में ब्याही गई थी। अपने एक भतीजे को भी इन्होंने गोद लेकर बड़ा किया था।
ग से इस गोद-लिए भतीजे की तबियत भी इनकी भाँति सदैव रोग-ग्रस्त रहती।
ग बीस वर्ष की आयु में, भरी जवानी में यह नौजवान मकबूल के अरमानों का
छोड़कर इस संसार से चल बसा। मकबूल के जीवन में नीरसता छा गई।
ाद के शब्दों में 'यह लाडला मकबूल का गुलशन-उम्मीद था, जिसके बेवक्त मुर-
से इन्हें बहुत सदमा हुआ। मरीज़ तो थे ही अब सेहत ने बिलकुल जवाब दे
।'[1]

मकबूलशाह कालवारी की जन्म-मरण सम्बन्धी तिथियों की कोई स्पष्ट सूचना
मिलती है। विभिन्न विद्वानों ने इनकी मरण-तिथि तथा आयु के सम्बन्ध में
त खोजबीन की है किन्तु अभी तक कोई स्पष्ट जानकारी सामने नहीं आयी है।
आज़ाद को भी ये तिथियाँ उपलब्ध नहीं हो सकी हैं।[2]

मकबूलशाह के जीवनवृत्त को आँकने के लिये सर्वश्री आज़ाद, प्रो० हामिदी
मुहम्मद यूसुफ टेंग के मत विचारणीय हैं। आज़ाद के मतानुसार मकबूलशाह
ा अलीशाह की मृत्यु साठ वर्ष की आयु में सन् १९३७ ई० में हुई थी। उधर
ा कहना है कि जिस समय मकबूलशाह इस दुनिया से चल बसे उस समय उनके
लीशाह की आयु ६ महीने की थी। इस आधार पर मकबूलशाह का निधन-
ान् १८७७ बैठता है। प्रो० हामिदी मकबूलशाह का जन्म १८२० ई० में मानते
रणकाल के सम्बन्ध में उन्होंने केवल इतना ही लिखा है—'आखिर १८५८ ई०
क १२७५ हिजरी में यह जिगर-सोख्ता इन्सान ३५ बरस की मुख्तसर उम्र में
ी आगोश में सो गया।'[3] हामिदी साहब ने किन आधारों पर उक्त मान्यता
ी है—स्पष्ट नहीं होता। श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग ने मकबूलशाह के जीवनवृत्त
ीण गवेषणा एवं लगन के साथ मूल्यांकन किया है। उन्हें वह निकाह-नामा
ला है जो मकबूल स्वयं अपने हाथों से अपनी पुत्री राजबानू के विवाह पर
ाये थे। इस निकाह नामा पर १४ सिफर १२९१ हिजरी तदनुसार ११ मार्च
ई० अंकित है। स्पष्ट है कि मकबूलशाह १८७६ ई० तक जीवित थे। चूँकि

---

मीरी ज़बान और शायरी, आज़ाद पृ० ७९
ी पृ० ८०
बूलशाह कालवारी, पृ० ७

आज़ाद के कथनानुसार मक़बूलशाह का पुत्र अलीशाह ६० साल की आयु में
१९३७ ई० में चल बसा था। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि मक़बूलशाह सन् १
ई० में दिवंगत हुए थे। मक़बूलशाह के जन्मकाल के निर्धारण के सम्बन्ध में
विद्वानों की तरह टेंग साहब भी कोई निश्चित मत नहीं दे पाये हैं। अनुमान ल
जाता है कि मकबूल १९वीं शताब्दी के प्रथम दशक में जन्मे थे।[1]

मकबूलशाह के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो सूचनायें प्राप्त हैं उनके अनुसार उ
देह भरी हुई तथा कद दरमियाना था। स्याह दाढ़ी से चेहरा खिल उठा था। ग
सफेद पोशाक ही पहनते। सिर पर साफा बाँधने का चाव था। एकान्तप्रिय स्व
ने उन्हें अन्तर्मुखी बना दिया था। अपने मकान के पास दूधगंगा के किनारे पर
बगीचा लगवाया था, गर्मियों के दिनों में इसी बगीचे में घण्टों बैठ रहते।

मकबूलशाह ने काव्य की लगभग प्रत्येक विधा पर सफलतापूर्वक कलम च
है। जिस समय मकबूल ने आँख खोली उस समय कश्मीर में सिक्ख-शासन
चरमोत्कर्ष पर था। जनता की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी, तथा नैतिक मू
का पतन हो रहा था। समाज को जाति-भेद, धर्मान्धता, वैमनस्य जैसी दुष्प्रवृत्ति
घुन की तरह अन्दर-ही-अन्दर खोखला कर रही थीं। जब मकबूलशाह का साहि
क्षेत्र में आविर्भाव हुआ, उस समय डोगरा-शासन अपनी दमन-नीति द्वारा गरीब किसा
पर जुल्म ढा रहा था। डोगरा शासकों द्वारा चलाई गई जागीरदारी प्रथा ने बेच
गरीब किसान की कमर ही तोड़ डाली थी। गाँव-गाँव में लूटपाट, अत्याचा
आतंक का बोलबाला था। परिणामस्वरूप सारा समाज पतनोन्मुख हो रहा था। ऐ
ही विषम परिस्थितियों में मकबूलशाह का साहित्यिक व्यक्तित्व उभरा और पनपा।[2]

मकबूलशाह ने छः मसनवियाँ तथा कुछ गज़लें, मनकबत व मरसियाँ निर्
हैं। मसनवियों के नाम इस प्रकार हैं—

१—गुलरेज़
२—बहारनामा
३—पीरनामा
४—मनसूरनामा

---

१—आज़ाद साहब ने कालवोर गाँव के एक वयोवृद्ध रहमान चौपान से हुई भेंट का
हवाला देते हुये लिखा है कि वह बूढ़ा मकबूल के हालात बता सकता है, उसने
मकबूल को अच्छी तरह देखा है। उस बूढे के अनुसार मृत्यु के समय मकबूल
की आयु ७०-७५ के करीब थी।
कश्मीरी ज़बान और शायरी, भाग २, पृ० ८।

२—मकबूलशाह क्रालवारी, प्रो० हबीब अल्लाह हामिदी, पृ० १

५—किस्सा-हज़रत-साबिर और

६—ग्रोस्मनामा

हामिदी साहब ने उक्त मसनवियों के अतिरिक्त आबनामा, मारला माव वेवोज-नामा मसनवियों को भी मक्बूलशाह द्वारा रचित बताया है।[1] ये रचनायें अनुपलब्ध हैं।

## गुलरेज़

मसनवी गुलरेज़ मक्बूलशाह की ही नहीं अपितु कश्मीरी साहित्य की बहुमूल्य कलाकृति है। यह एक प्रेम-काव्य है जिसमें कवि की कवित्व-शक्ति मुखर हो उठी है। जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने इस अनुपम काव्यकृति को १९५६ ई० में पूर्ण साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया है। २४१ पृष्ठों पर आधारित इस मसनवी में कुल २१८१ छंद तथा १२७ गीत व गज़लें हैं। इस मसनवी को श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग ने संपादित किया है।[2] टेंग साहब ने इस मसनवी का संपादन करते समय पाँच हस्तलिपियों का पाठालोचन किया था। ये हस्तलिपियाँ संपादक महोदय को विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई थीं। इन नुसखों (हस्तलिपियों) का विवरण इस प्रकार है—

१. नुसखा-क़दीम
२. नुसखा-खुशखत
३. नुसखा-कामिल
४. नुसखा-नातमाम
५. मूल नुसखा

'नुसखा-क़दीम' कश्मीर के रिसर्च-विभाग में सुरक्षित है। इस हस्तलिपि के अन्त में कृति का रचनाकाल १२६२ हिजरी दिया हुआ है। मूल गुलरेज़ १२८६ हि० में लिखी गई थी। अतः यह नुसखा मूल पाण्डुलिपि के ६ वर्षोपरान्त लिखा गया

---

१—मक्बूलशाह कालवारी, पृ० १९

२—मक्बूल ने गुलरेज़ के प्रारम्भ में ईश-वंदना की है और मसनवी के अन्त में छन्दों व गीतों की संख्या का उल्लेख इस प्रकार किया है—

'यह मसनवी सन् १२८६ हिजरी में बहार के दिनों में लिखी गई है। इसमें वर्णित छन्दों की कुल संख्या २३२७ है जिसमें गज़लों व गीतों की संख्या १२७ है। शेष २२०८ शुद्ध छन्द हैं।'

टेंग साहब को पाठालोचन करते समय केवल २१८१ छन्द मिले हैं। गीतों व गज़लों की संख्या वही रही जो मक्बूल ने दी थी।

'गुलरेज़' सं० मुहम्मद यूसुफ टेंग, पृ० ५२

लगता है। इस हस्तलिपि में छन्दों की जितनी अधिक संख्या मिलती है उतनी किसी में उपलब्ध नहीं है। यह नुसखा मूल नुसखे की तुलना में स्पष्टता से पढ़ा सकता है। 'नुसखा-खुशखत' भी रिसर्च विभाग में पड़ा हुआ है। इसकी लि अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग तथा सफाई के साथ की गई है। 'नुसखा-कामिल' कश्मी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री अमीन कामिल की निजी सम्पत्ति है। इसकी लिखाई सुन्दर है। इस हस्तलिपि में अनेक ऐसे छन्द मिलते हैं जो अन्य में नहीं हैं। इस रचनाकाल १३१९ हि० है। 'नुसखा नागाम' भी रिसर्च विभाग की देन है। इस लिखाई अत्यन्त भद्दी तथा अस्पष्ट है। इसके लिखने वाले नागाम गाँव के कोई प्रतीत होते हैं। गुलरेज़ का मूल नुसखा टेंग साहब को श्रीनगर के प्रसिद्ध पुस्त विक्रेता व प्रकाशक श्री गुलाम मुहम्मद से प्राप्त हुआ था।[1]

मसनवी गुलरेज़ फारसी के प्रसिद्ध कवि ज़िया-उलद्दीन नख्शबी की 'गुलरेज़' आधार पर लिखी गई है। यह एक तरह से फारसी गुलरेज़ का कश्मीरी रूपान्तर है। रूपान्तर करते समय मकबूल की कवित्वशक्ति ने मूल गुलरेज़ की आत्मा को सुरक्षित रखने में पूर्ण सतर्कता से काम लिया है। ज़िया-उलद्दीन नख्शबी समरकन्द के समी (नख्शबी) के रहने वाले थे। कहा जाता है कि वे एक सूफी सन्त थे और कवि हृ रखते थे। फारसी में लिखी उनकी गुलरेज़ 'एशियाटिक सोसाइटी', बंगाल द्वारा स १९१२ ई० में श्री आगा मुहम्मद शीराज़ी व श्री आर० एन० एन्नू के सम्पादन में प्रकाशित हुई है।

## गुलरेज़ का कथानक

नख्शब के राजा तैफूर की कोई सन्तान न थी। हज़ार मिन्नतें करने के बा उनके यहाँ एक शाहज़ादा हुआ जिसका नाम मासूमशाह रखा गया। शाहज़ादे को सभी तरह की कलायें व विद्यायें सिखलाई गईं और वह इन सबमें पारंगत हो गया। एक दिन किसी आयोजन में व्यस्त था कि उसकी दृष्टि सामने खिड़की पर बैठे एक विचित्र पक्षी पर पड़ी। उस पक्षी को देख शाहज़ादे के दिल का आराम जाता रहा। उस विचित्र पक्षी को पकड़ने के लिए वह आतुर हो उठा। दरबार के सभी मन्त्री व अन्य अधिकारीगण अद्भुत पक्षी को पकड़ने के लिए इधर-उधर दौड़ने लगे। किन्तु वह पक्षी किसी के भी हाथ न लगा। अन्त में हताश होकर शाहज़ादे ने अपना सिर मुँडा लिया। तभी उसके मुकुट में से मोतियों के कुछ दाने बिखर गये। पक्षी इन मोतियों को देख नीचे आ गया और पकड़ा गया। कई दिनों तक उस पक्षी ने मौन धारण कर लिया—न कुछ खाया न पिया। मासूमशाह परेशान हो उठे। अनेक मूल्यवान मोती पिंजरे में डाले गये किन्तु पक्षी का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता गया। शाहज़ादे से पक्षी की यह हालत सही न गई। उसकी आँखें छलक पड़ीं और

---

१. गुलरेज़, सं० मुहम्मद यूसुफ़ टेंग, पृ० २०-२१

ज़ार-ज़ार रोने लगे। पक्षी को शाहज़ादे के इस हाल ने प्रभावित किया और उसे मुखातिब होकर कहने लगा—

> ज़ि ग़मख्वारी मन क्याह छुय चे मतलब
> दोहुक आराम त्रोवुय ख्वाब दर शब।

तुझको मेरे ग़म से क्या मतलब जो तू ने मेरे लिए दिन का आराम व रातों की नींद छोड़ दी।

पक्षी आगे कहता है।

> मे यनतम ज़ि हवस क्याह छुय चे हासिल
> तुलुथ कमि बाग़िस अज़ सलतनत दिल,
> ब शक्ल असल योदवय आसह बो
> दिलुक ग़म तोल शाहस कासह बो
> ब लेकिन छस बशक्ल मुर्ग़ बस्ता
> बग़र तारीफ़ क्याह यियि म्यानि दस्ता॥

मुझको तू यह बता कि मेरी हवस से तुझे क्या हासिल होगा। तू क्यों अपने राज-काज के कार्यों से विरक्त हो गया। यदि मैं अपनी असली शक्ल में होती तो तेरे सारे दुखों व ग़मों को दूर कर देती। लेकिन परिन्दे की शक्ल में हूँ, अतः तेरी प्रशंसा करने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती।

अन्तिम वाक्य सुनते ही मासूमशाह के आश्चर्य की सीमा न रही। उन्होंने परिन्दे से अपनी आप-बीती कहने का अनुरोध किया। पहले तो परिन्दे ने कहने से इन्कार किया किन्तु बाद में विशेष आग्रह करने पर अपनी आप-बीती सुनाने लगा—

> छु इश्कुन कस्सु बोज़ुन सख्त मुश्किल
> मो आशिन कांसि लोगमुत कांसिप्यठ दिल।

इश्क़ की कहानी सुनना अत्यन्त मुश्किल है। हाय, किसी का दिल किसी पर न आये।

आगे कहानी यों चलती है—

'मैं शहर बेतउलमान की राजकुमारी हूँ। मेरे बाप का नाम महमूरशाह तथा माँ का नाम गुलबदन है। तुरकिस्तान में शाह बहराम नाम का एक प्रसिद्ध राजा हुआ है जिसके बेटे का नाम अजबमलक है। किसी बूढ़े से उसने मेरे रूप-सौन्दर्य की चर्चा सुनी। तभी घरबार छोड़कर, अपने अन्य मित्रों के साथ वह मेरी तलाश में निकल पड़ा। बाधाओं को पार करता हुआ, अन्त में मेरी बहन नाज़मस्त द्वारा मेरे प्राप्ति-स्थान का पता पाकर वह बेतउलमान पहुँचा और मेरे बाग़ में आ गया।

मैंने जब उसको देखा तो मैं भी उसके इश्क में गिरफ्तार हो गई। मेरी माँ को जब इस घटना की सूचना मिली तो उसने क्रुद्ध होकर अजबमलक को तुरकिस्तान की तरफ फेंकवाया तथा मुझे फूंक मारकर पक्षी बना दिया। विगत दस वर्षों से मैं इसी पक्षी-भेष में हूँ। सारी दुनिया छान मारी किन्तु अजबमलक का कहीं भी पता न चला। तुम्हें देखकर थोड़ी राहत मिली क्योंकि तुम्हारी सूरत अजबमलक से मिलती-जुलती है। तभी स्वेच्छा से तुम्हारी कैद मे फँस गई। शाहजादा मासूमशाह ने जब नोशलब की यह दर्दभरी कहानी सुनी तो उन्होंने अजबमलक को ढूंढ निकालने का वचन दे दिया। वह नोशलब के पिंजरे को लेकर अपने अन्य सहयोगियों सहित बेतउलमान के लिये चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर मासूमशाह नोशलब की माँ से मिलकर उसे सारी स्थिति बता देता है। गुलबदन के दिल मे वात्सल्य उमड़ पड़ता है और वह अपनी पुत्री को पुनः उसके वास्तविक रूप में ले आती है। मासूमशाह नोशलब के माता-पिता को नोशलब व अजयमलक की शादी कराने के लिए तैयार करता है। अन्त मे अजबमलक की शादी नोशलब से हो जाती है। मासूमशाह नाजमस्त के साथ तथा अजबमलक का मित्र रासख नोशलब की सबसे छोटी बहन मस्तनाज के साथ शादी रचाते हैं और सभी अपने-अपने घर लौट आते हैं।'

हिन्दी के सूफी-काव्यों की भाँति गुलरेज की कथा मे भी अध्यात्मिक संदेश निहित है। देखने मे यह एक प्रेम-काव्य है किन्तु अप्रत्यक्ष रूप मे इसमें इश्क-हक़ीकी का निर्देश है। अजबमलक साधक है और नोशलब साध्य। अपने साध्य को प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार साधक को अनेक अवरोध पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार (नोशलब) साध्य को प्राप्त करने के लिये साधक (अजबमलक) अथक प्रयत्न करता है। स्वयं कवि ने इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

१. सदफ गंजरुन अजराह अदराक,
   छटिय तय मंज हकीकत पाक।
२. मजाज किन हकीकत बुछ, न ओन लाग।

इस दास्तान मे इश्क-मजाजी के रूप में इश्क-हकीकी का तत्व छिपा हुआ है। इश्क हकीकी को इश्क-मजाजी के रूप में देख।

गुलरेज दोनों भाव और शिल्प की दृष्टि से एक उच्चकोटि की काव्यकृति बन पड़ी है। मक्बूलशाह के कृतित्व की परिपक्वता इस मसनवी मे स्पष्टतया देखने को मिलती है। कवि की अनूठी कल्पना-शक्ति, भावप्रवणता आदि सभी कुछ इस मसनवी में है। जब गुलबदन (नोशलब की माँ) ने अजबमलक और अपनी पुत्री को बाग में प्रेमालाप करते देखा तो क्रुद्ध होकर उसने अजबमलक को तुरकिस्तान फेंकवाया तथा पुत्री नोशलब को अचेतावस्था में अपने कमरे में पहुँचाया और उसे बाद में फूंक मार कर पक्षी बना दिया। जब नोशलब की आँखें खुलीं तो प्रियतम को अपनी बाहों में न पाकर उसके दिल पर क्या गुज़री, उसका चित्रण कवि ने यों किया है—

छि अनिमित कम्य सना जोहर करोशन,
मु गुलवश रयो दिलकश काकलन मंज
गुलाबा जन छु फौलमुत सुम्बलन मंज,
तियो दौन जु,ल्फन मंज़ चेहरा गूबान
यथ मंज काल ओबरस महताबाना ॥

उस रूपसी की दो काली-काली आँखें नरगिस के समान मस्त हैं तथा गज़ब का जादू कर रही हैं। उसकी आँखों को देख नरगिस भी मुरझा गई है तथा मृग बेचारे जंगलों की ओर भाग गये हैं। उसके कानों में चमकती वालियाँ एक धीमी हरकत से दिल लूट लेती है। इन वालियों में असख्य मूल्यवान जवाहर जड़े हुए हैं जो सितारों की भाँति चमक रहे हैं। न जाने किस जौहरी ने इनको जड़ा है। उसका मुख-मण्डल ऐसा दिलकश लग रहा है मानो सुम्बुलों के बीच में गुलाब खिला हुआ हो।

अजबमलक और नोशलब के सयोग-वर्णन में कवि ने मर्यादा का यथा-संभव अनुपालन किया है—

खुशी याहमगर कर बनिहायत
करिन्य अख अकिस शिकव शिकायत,
वुछिथ गयि महू मुतलक अख अकिस कुन
मय फरहत कत्र ह्योत साकियन दयुन,
मयुक तासीरन द्युत मस्ती जोश
चटिन ह्योत दूरि-दूरि वस्लक्य पोश,
दोशवय अजु खई बेगान सपिद
शराब शौक च्यथ मस्तान सपिद,
तगन अथ कांसि बोजन्य तिम रमूजात
जि आशक क्याह करान वक्त मुलाकात ॥

दोनों की खुशी की कोई सीमा न रही। दोनों एक दूसरे से गिले-शिकवे करने लगे। एक दूसरे की ओर देखते-देखते दोनों बेसुध हो गए। साकी ने अमृत पिलाना शुरू कर दिया और दोनों वस्ल की शोखियों का मज़ा लेने लगे। दो प्रणयि संयोग के समय क्या करते हैं, हर अक्लमन्द आदमी समझ सकता है।

प्रबन्ध-वृति में वर्णित घटनायें अबाध गति से अग्रसर हों, इसके लिए शैली गतिशील एवं वर्णनात्मक होना आवश्यक है। जब अजबमलक नोशलब को प्राप्त

करने के लिए प्रयाण करता है तो रास्ते में उसे अनेक मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कई दिनों तक लगातार चलने पर भी उसे कोई आदमी नहीं मिलता और न कोई गाँव नज़र आता है। आखिर एक दिन दूर से कोई गाँव दीख पड़ता है। इस प्रसंग का वर्णन कवि की वर्णनात्मक-शैली में इस प्रकार हुआ है—

वुछिन अज दूर वाला अख इमारत
हैचन वथ तथ इमारचि कुन गयस सथ,
ब नज़दीक इमारति वोत दोरान
सपुद खोश ओश कँछा छु यारान,
कोरन दुब-दुब त वोथुन हलक दर
निशेखा कांह ति वुछुन न डेडि अन्दर
दिलन वोनुस इमारत आसि खाली
मुचरिनस अर अन्दरकुन पाव हाली॥

दूर से एक ऊँची इमारत दिखाई पड़ी। उसने साहस बटोरा तथा उस इमारत के पास पहुँचा। मन में प्रसन्नता भी थी और डर भी। धीरे से द्वार खटखटाया किन्तु भीतर से कोई नहीं निकला। सोचा इमारत खाली होगी। अतः स्वयं द्वार खोलकर इमारत के अन्दर दाखिल हुआ।

कवि की संवाद-शैली का एक नमूना भी देखिए। अक्समलक में बढ़ती हुई प्रेम-पीड़ा को देख उसके पिता दिलासा देते हुए उसे समझाते हैं—

अदिन हंदि गाश हा लोलाबाति ब्यानि
यि क्याह ओमुय च स्युलमुत इयकु लानि,
छ्योतुथ्य मातम त ललून खान ओयुथ
चतुथ तथ तरक क्याब व खाब व आराम
रोटुथ गम अशवुन कोरथस बु बदनाम,
करख लाइला च योदवय माह्ताबा
सितारव सात्य ब बोन वासन पका,
यमा तमिसुन्द छु मा छुनि आवि पंगाम
म कांह मैखा निशाना रास मे छाम,
बु सोजन वानि बापन सोल्य सददर
तिमन छांडन व हर आवि योन दिलबर,
होपुख लख्य तोर, ए लाह कदां मयन
बु आशिक कर छु सावक ताज़ ब तख्त,

छि राहे इश्क राहे रंज व ख्वारी
सजाये प्रशकां छुन शहर यारो,
मे छुम दर सर होश जा यार दिलबर

मे सर ताज जहां दारी गूबेम कर
जि श्राशक न पादशाहो यिन छि दुशवार
यिथि न श्राशकन हंदि दस्त काँह कार,
छि नफरत श्रजकार श्राशकन दुनिया
वलेमित छि श्रज श्राजार तिम दुनिया ॥

ऐ मेरे आँखों के तारे, मन के दुलारे, यह तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा था जो तुमने दिन का आराम और रातों की नींद गवां डाली तथा अपने साथ-साथ मुझे भी बदनाम कर डाला। यदि तू कहे तो मैं तुम्हारे लिये आकाश से तारों सहित सूरज को नीचे जमीन पर ले आऊँ। तू मुझे उसका पता बता दे तो मैं अपनी सारी सेना भेज कर तुम्हारे दिलबर को ढूंढ निकालूंगा। इस पर अजबमलक ने उत्तर दिया—हे प्रजावत्सल बादशाह, मैं आशिक हूं तथा ताज-तख्त की बातें क्या जानूं। इश्क की राहें गम व दुःख से पूर्ण होती हैं, मेरे मन में तो यार की सूरत बसी हुई है भला उसमें ताज का मोह कैसे समा सकता है। आशिकों द्वारा इश्क की अवहेलना नहीं हो सकती। आशिकों से नफरत करना तो दुनिया की रीत है किन्तु इसी नफरत से आशिकों का उद्धार हुआ है।

'गुलरेज' मकबूलशाह की एक ऐसी रससिक्त काव्यकृति है जिसमें कवि का रसावेग हर दृश्य, हर वस्तु, हर आकर्षण और हर 'सुन्दर' में रमना चाहता है। कवि के मीठे सपने, उसके हृदय की मधुर सिहरन, दिल का दर्द इस कलापूर्ण मसनवी में एक-साथ गुंफित है।

### बहारनामा

यह एक संक्षिप्त मसनवी है। इसमें वसंतागमन के उपलक्ष्य में कवि के मुक्त हृदय से निकले उद्‌गार आकलित हैं। प्रकृति के नवशृंगार तथा उसके परिवर्तन का सजीवतापूर्वक वर्णन इस काव्यकृति में मिलता है। निशात बाग, शालीमार बाग, तेलबल आदि प्रकृति-स्थानों की नैसर्गिक छटा का कवि ने अत्यन्त सहृदयता के साथ अंकन किया है। वसन्त अपने साथ प्रेमियों के लिए नई आशायें व उमंगें भी लाता है—कवि ने इस मधुर पक्ष को मीठी पुलकन के साथ छुआ है। इस काव्यकृति से एक प्रस्तुत है—

बहार आव येम्बरजलन लज्य फलय
छि इदाब गरा सुबलव सुस कलय,

बहार आव आलम सपुद मुश्क बुय
छु सरसब्ज खंदान लब आब जोम,
बहार आव तुल शोर पांचादरव
छि आवान मानंद आईन परतव,
बहार आव यज जानवरव तु.लुख
चोलख गुल वुछिथ गमगोस दिल फोलुख,
बहार आव कुमारी छु कू कू करान
समिथ फाख्त जिक्र हू हू करान,
अमा दिल मे छुम बहार दिलबर खराब,
बहारुक हवा तस सिवा छुम अजाब,
मूहिल गोम छुम कय मकानस विहिथ,
वुहिथ गोस सोन ह्याकस मा शिहिथ,
तमन्ना छुम हमा ह्येशन यथ दिलस
यिमन खोल जख्मन मे मरहम प्येयस,
यितम रोश पोशन फरय माल बो
व नो चालय दूरेदर रटिथ नाल बो ॥

बहार आ गई और नरगिस के शिगूफे फूट पड़े। बुल्बुल ने गहरी नींद से सि
उठा लिया, बहार आ गई और सारी प्रकृति महक उठी। नद-नदियों के कूल किना
सर-सब्ज हो गये। बहार आ गई और झरनों ने शोर मचाया और शीशे की भाँि
चमकने लगे। बहार आ गई और पक्षियों ने कलरव से दिशाओं को गुंजा दिया औ
फूलों को देख उनका गम दूर हो गया। बहार आ गई और कोयल ने कू-कू की मधु
तान छेड़ दी। फाख्ता हू-हू करने में व्यस्त हो गई। बहार आ गई और मन के सभ
दुःख मिट गये। लेकिन मेरा दिल माशूक के अभाव में बेकरार है। उसके बिना बहा
की बयार काटने को दौड़ आती है। न जाने वह किस जगह बैठा हुआ है, उसने मु
लूट लिया है तथा मेरा दिल दहक रहा है। मैं उसकी जुदाई सहन नहीं कर सकता
मेरी तमन्ना है कि एक बार वह आए और मेरे जख्मों पर मलहम लगा जाये। मैं
उसके स्वागत के लिये फूलों का एक हार तैयार कर लिया है। मैं उस बेदर्दी को य
हार पहनाऊँगा तथा उसके गले से लिपट कर उसे अपना दुखड़ा सुनाऊँगा।

## पोरनामा

यह भी एक संक्षिप्त काव्यकृति है। दाउद का कहना है कि यह एक लम्
मसनवी थी किन्तु इसे बाद में संक्षिप्त किया गया।[1] इस कृति में पीरों के आख्य

१. कश्मीरी जबान और शायरी, पृ० ८६, भाग ३

पूर्ण व्यवहार का व्यंग्यात्मक भाषा-शैली में वर्णन है। साथ ही तत्कालीन धर्मभीरु समाज की स्थिति का भी चित्रण मिलता है। पीर अपने मुरीदों को कैसे चकमा देकर वश में कर लेता है, उसकी वाक्पटुता तथा व्यवसाय-कुशलता का इसमें खुलकर वर्णन किया गया है। सम्भवतः तत्कालीन पीर-समाज ने कवि द्वारा वर्णित व्यंग्योक्तियों को बर्दाश्त न किया हो, इसीलिए बाद में इस काव्यकृति को संक्षिप्त किया लगता है। संक्षिप्तकरण का दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि मक्बूलशाह चूंकि स्वयं पीर थे अतः उनके सम्बन्धियों ने उन्हें उक्त मसनवी को संक्षिप्त करने के लिए बाध्य किया होगा। इस मसनवी से एक पद्यावतरण प्रस्तुत है—

> चरस त बंग च्यथ युस नंग फेरि
> करन तस पछ् दपन यि गई फकीरी,
> थोकन अथु दारनस चरस थोकन आस
> फलानी बड बलाय आमच् अमी कास ॥

चरस और भाँग पीकर जो नंगा फिरे, उसे ऊँचा फकीर (महात्मा) मानकर ये धर्मभीरु उस पर सहज विश्वास कर लेते हैं। उसकी थूक तक को ये चाट जाते हैं और कहते हैं कि ये बला टालने वाले हैं—महान् हैं।

## मनसूरनामा

यह शेख मनसूर के जीवनवृत्त तथा उनके सूली पर चढ़ने वाली करुण-घटना पर आधारित काव्यकृति है। इस में मक्बूलशाह् की कवित्व-शक्ति निखर उठी है। इस में कुल २३० छन्द हैं। मसनवी के प्रारम्भ में कवि ने इश्क की महिमा का बखान किया है। मनसूर के आत्मोत्सर्ग प्रसंग का कवि ने मार्मिकता के साथ चित्रण किया है—

> दार वालिथ शेख मंज नारस छ़ुनुख
> गव दज़िथ वति नार पथकुन सूर रूद,
> नार निश मनसूर बाकय रूद
> सूर न्यू वावन त दरियावस छ़ुनुन ॥

सूली से उतार कर मनसूर को आग में फेंका गया। आग में वह जल गया और बाकी राख रह गई। राख को वायु उड़ा ले गई और उसे दरिया में प्रवाहित किया।

## किस्सा-हज़रत-साबिर

इस काव्यकृति में हज़रत साबिर मुहम्मद अयूब की प्रशंसा में लिखे गये २१५

छन्द है। कवि के अनुसार इसमें ३०१ छन्द थे किन्तु छः छन्दों का पता नहीं चलता।[1] इस कृति का रचनाकाल कवि ने स्वयं इस प्रकार वर्णित किया है—

सन बाहशथ ग्रोस बेयि पचाह साल
तेति वोनुम यि किस्स ग्रोरी मकाल ।।

सन् १२५० हिजरी था जब मैंने यह हृदय-स्पर्शी किस्सा लिखा।

यह कवि की प्रथम कृति है तथा 'गुलरेज' के सोलह वर्ष पूर्व लिखी गई है। इस कृति में कवि की कला-प्रौढ़ता उतनी विकसित नहीं मिलती जितनी अन्य रचनाओं में देखने को मिलती है।

## ग्रीस्यतनामा

यह मकबूलशाह की बहुचर्चित काव्य-रचना है। इसमें एक कश्मीरी किसान की विभिन्न विवशताओं एवं मनोस्थितियों का व्यंग्य रूप में विश्लेषण मिलता है जो उसमें धर्मभीरुता, जहालत तथा अपढ़ता के कारण मिलती है। मकबूलशाह ने ग्रीस्यत-नामा में बेचारे किसानों को जो खरी-खोटी सुनाई है उसके पीछे एक आधार है। एक बार मकबूलशाह अपने दो साथियों सहित किसी गाँव में जा रहे थे। रास्ते में पानी बरसा। जैसे-तैसे 'छल' पहुँच गये। यहाँ इनके कोई परिचित शिष्य रहते थे। अतः उन्हीं के यहाँ रात-भर रुकने का विचार किया। किन्तु वहाँ पहुँचने पर किसी ने भी उनका स्वागत नहीं किया और न ही किसी ने रुकने के लिए कहा। बेचारों को सारी रात एक मस्जिद में गुजारनी पड़ी। बस, तभी से उनका अन्तर्मन किसानों के प्रति विद्रोह करने लगा। किसानों की अभद्रता और उजड्डता पर खुलकर फबतियाँ कसने लगे। कहीं-कहीं पर तो शिष्टता का उल्लंघन कर किसानों को धूर्त, दगाबाज, निकम्मा आदि तक कहा। एक-आध जगह पर गाली भी दी है। किसान झूठ बोलता है, कर्ज नहीं चुकाता, उसे हलाहल व हराम में तमीज नहीं है, अशिष्ट है, स्वार्थी है, उसमें मानवता बिल्कुल भी नहीं है आदि बातें इस काव्यरचना में कवि ने कही हैं। एक नमूना प्रस्तुत है—

न ज़ानन हक न पैगम्बर न पीरी
हु हुय आइन दुस त साम सोरी,
न ज़ानन दीन मय इस्लाम दरफ़ान
न दस इनसानियत अफ़सर दि हयवान

दि शैतानस ति दिवमच् ग्रीस्यतिय ज़ाव
सरासर मस्त शैतान असिल ज़ानस ।।

---

१. 'दुस्याने—मकबूल', पृ० ३०

ये किसान न तो पैगम्बरों को जानते हैं और न ही पीरों को। इनके लिए आईना और कच्ची ईंट एक-समान है। न धर्म और दीन को समझते हैं और न ही इनमें इन्सानियत है। शैतान तक को किसान ने मात दी है। यह मूलतः शैतान की ही औलाद हैं।

ग्रीस्यतनामा का एक-एक छन्द कवि के विक्षुब्ध हृदय से निकला उत्पीड़न है जिसमें किसानों को कभी न माफ करने की धड़कनें समाहित हैं। 'गुलरेज़' के समान इसमें वह मधुरता नहीं है जिससे पाठक सराबोर हो जाता है। 'गुलरेज़' के कवि की भावप्रवणता 'ग्रीस्यतनामा' में कटुता तथा आक्रोश में परिणत हो गई है। 'ग्रीस्यतनामा' लिखकर मकबूलशाह ने जहाँ किसान-वर्ग को खरी-खोटी सुनाई है वहाँ प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने तत्कालीन किसान-समाज की दयनीय स्थिति का वर्णन भी करना चाहा है। उस समय की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी थी कि बेचारा किसान गर्हित कार्य करने पर भी बाध्य हो गया था। ध्यान से देखा जाए तो इन दीनहीन किसानों की विषम-स्थिति का चित्रण कर कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से उनके प्रति सहानुभूति का परिचय दिया है। 'ग्रीस्यतनामा' की भाषा स्पष्ट, सरल तथा व्यंग्यप्रधान है। यथा-स्थान मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। इस काव्य-रचना में छन्दों की संख्या एक हज़ार से ऊपर है तथा इसका रचना-काल सन् १८११ ई० है।

मक़बूलशाह ने मसनवियों के अतिरिक्त जो ग़ज़लें, मनक़बत और मरसिया लिखे हैं उनमें कवि द्वारा व्यक्त स्वानुभूतियों की संवेदनशीलता मूर्त हो उठी है। ग़ज़लों में कोमल हृदय का स्पन्दन है; मनक़बतों में दीन भावना और मूक समर्पण है तथा मरसियों-गीतों में हृदय की व्यथा गाई गई है।

मक़बूलशाह की भाषा प्रायः फारसी-निष्ठ है। उन्होंने फारसी के अनेक शब्द ज्यों-के-त्यों प्रयुक्त किये हैं। जिसके कारण उनकी भाषा कहीं-कहीं पर बोझिल हो गई है। अलंकार व बिम्बयोजना भी फारसी से प्रभावित है।

### परमानन्द

इनका जन्म मार्तण्ड (मटन) के समीप अनन्तनाग जिला में सीर गाँव में सन् १७९१ ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम कृष्णपण्डित तथा माता का नाम सरस्वती था। परमानन्द की काव्य-प्रतिभा उनके बाल्यकाल से ही दिखायी पड़ी। प्रारम्भ में उन्होंने 'गरीब' उपनाम से फारसी में कवितायें कीं। फारसी का ज्ञान उन्होंने अपने गाँव के मकतब में प्राप्त किया था। इनका एक फारसी शेर द्रष्टव्य है—

हमें गुलशन गुलाबरा करम कुन
नमें गुलशन गुलाबरा करम कुन।

हे प्रभो, मैंने प्रार्थना की थी कि मुझ पर कृपा हो, किन्तु यह तो न था कि मुझे बहरा बना दीजिये।[1]

परमानन्द के पिता कृष्णपण्डित ने उनकी शादी बाल्यकाल में ही माला की एक लड़की से कर दी थी। परमानन्द जितने सरल और विनम्र स्वभाव उनकी पत्नी उतनी ही उग्र और कर्कशा थी। गार्हस्थ्य-सुख से वंचित रहने से परमानन्द साधु-सन्तों के सत्संग में रहने लगे। स्वामी सत्यानन्द जी के साथ काफी समय बीता और उनके ही सम्पर्क में रहकर वेदान्त का पूर्ण अध्ययन एक सिक्ख-साधु के सम्पर्क में आकर उन्होंने गुरु ग्रन्थसाहब का भी अध्ययन [illegible]

परमानन्द के कुछ चित्र कश्मीर में उपलब्ध हैं जिनसे उनके भव्य [illegible] का भान होता है। उनकी आँखें चमकती हुई तथा नाक उभरी हुई थी। प्रशस्त तथा देह गठीली थी। परमानन्द के दो पुत्र हुये थे किन्तु दोनों [illegible] अल्पायु में ही हो गया था। एक स्थान पर अपनी दीन-हीन स्थिति का वर्णन यों किया है—

कुन तु कीवत न सार, सोरमु च आश।
न पोतुर त म ब्दमुत गाश।
मैं अकेला रह गया हूँ, मेरी समस्त आशाएँ मिट गई हैं।
निःसन्तान रह गया हूँ, आँखों से प्रकाश भी चला गया है।

परमानन्द की तीन काव्य कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। इनके नाम हैं—

१. शिवलग्न,
२. राधास्वयंवर, तथा
३. सुदामाचरित

उक्त काव्यकृतियों के अतिरिक्त उन्होंने अनेक स्फुट कविताएँ भी जिनमें पंजाबी व हिन्दी भाषा में लिखे कुछ पद भी मिलते हैं।

'शिवलग्न' में शिव और शक्ति के परस्पर सम्बन्ध पर विचार [illegible] परिणय लीला का वर्णन किया गया है। कवि की मान्यता है कि शिव [illegible] पुरुष और प्रकृति के प्रतीक हैं तथा इन्हीं के संयोग से इस सृष्टि का निर्माण 'सुदामाचरित' भगवान श्रीकृष्ण और उनके बालसखा सुदामा के मिलन की [illegible] पर आधारित है। यह एक दार्शनिक काव्य है जिसमें मूलकथा के साथ-साथ साध्य और साधक के परस्पर सम्बन्ध पर भी विचार किया है। साधक [illegible] कारण साध्य से विमुख हो जाता है तथा अनेक प्रकार की दुविधाओं में उलझ [illegible] आत्मज्ञान हो जाने पर वह साध्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। इस काव्य [illegible]

---

१. कहते हैं परमानन्द को उनकी वृद्धावस्था में बहरेपन ने आ घेरा था। [illegible] अनुप्रास की छटा द्रष्टव्य है।

अभी सुदामा द्वारिका-पुरी पहुँचे भी न थे कि भगवान श्रीकृष्ण रुक्मिणी समेत उनके स्वागत के लिये तैयार हो गये। दोनों पति-पत्नी के करकमलों में पुष्पमालायें सुशोभित हो रही थी। श्रीकृष्ण रुक्मिणी से कहते—आज मेरा पुराना मित्र आ रहा है, क्या तुझे प्रसन्नता नहीं हो रही? जो कोई भी भगवान को पाने के लिये एक कदम आगे बढ़ता है, भगवान उसे प्राप्त करने के लिए दस कदम आगे बढ़कर आते हैं। उनके नैकट्य में आने पर वे भी हमारे निकट आ जाते हैं तथा उनसे दूर रहने पर वे भी हम से दूर चले जाते हैं।......सुदामाजी के दिखाई पड़ने पर दोनों पति-पत्नी आनन्दित होकर हड़बड़ाते हुये नंगे पाँव दौड़ पड़े—आगे-आगे श्रीकृष्ण थे और पीछे-पीछे रुक्मिणीजी। भगवान को देखकर भक्त सुदामा ने अपने आप को श्रीकृष्ण की बाँहों में सौंप दिया। दोनों को ऐसा लगा मानो स्वप्न देख रहे हों। भगवान सुदामा को गोद में उठाकर अन्दर महल में ले आये—रुक्मिणीजी ने उनके पैर पकड़े थे। तत्पश्चात् भगवान ने अपने प्यारे भक्त के हाथ-पैर धोये।

भगवान उसकी फटी-पुरानी गुदड़ी को टटोलने लगे जैसे कोई योगी परम-तत्व के रहस्य को टटोलने की चेष्टा करता है। दो बार भगवान ने तण्डुल मुँह में डाले और तीसरी बार रुक्मिणी ने हाथ पकड़ लिया। सुदामा यह सब कुछ देख रहा था, उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई—उसे लगा जैसे चारों ओर भगवान व्याप्त हो रहे हों। रे भक्तो, भगवान केवल ऐसी भक्ति से मिलते हैं।

'सुदामाचरित' के ही अन्तर्गत श्रीकृष्ण-जन्म के प्रसंग का वर्णन कवि ने यों किया है—

> गटि मंज गाश आव वाल्ये स्यनय,
> जय जय जय दीवकी नन्दनय,
> दीशि काल रोस्ति डाल पननिन दीठे
> मानस अगूचर पानस निशे,
> यशोदायि कोर मव पोशवरशुनय
> ललवुन ह्योतुख ब्योन ब्योन कोछे,
> माव कृष्ण कोरहे बावथि वोछे
> यति यूर योनि मंज़िल करनिय,
> गूरय बायि पोशआयि यशोदायि आये
> डोल-डील दोपहोस कृष्णस पाये,
> ब्यस त दारो पोचु आस बोसने,......॥

तेरे जन्म लेने पर अन्धकार प्रकाश में बदल गया। हे देवकी के नन्दन, तेरी जय जयकार हो। तू तो देशकाल से परे है तथा अगोचर-मानस युक्त है, फिर भी तुम्हारे जन्म लेने से सभी का मन आनन्द-मग्न हो उठा है। यशोदा ने फूलों की

पहले कहा जा चुका है परमानन्द हिन्दी में भी कवितायें करते थे। ये कश्मी के ऐसे प्रथम कवि हैं जिन्होंने पहली बार कश्मीरी में कविता करने के साथ-साथ हिन्‍ मे भी काव्यरचना की। हिन्दी में रचित इनकी एक कविता प्रस्तुत है—(श्रीकृष्ण क जन्म होने पर भगवान शंकर के हृदय में उन्हें देखने की इच्छा हुई। वे योगी का भे धारण कर तथा हाथ में भिक्षापात्र लिये गोकुल गाँव की ओर चल दिये।)

मिथ्या मायन स्वाँग बनायो
आयो सदाशिव गोकुल में,
दर्शन करने को ध्यान धरायो
आयो सदाशिव गोकुल में।

नंगे सिर और नंगे पैर,
मन्दकेश्वर का सवारी था,
अंग में भस्मा भभूत रिझाये
आयो सदाशिव गोकुल में।

हाथ में त्रिशूला कान में मुन्दरा
सुन्दर मुख को करा कराल,
घंटा शंख और डाल बजायो
आयो सदाशिव गोकुल में।

गल में नागेन्द्र हारा हृत्य में
जल में जैसे उठी तरंग
गोकुल में भूकम्प मचायो
आयो सदाशिव गोकुल।

परमानन्द की अधिकांश हिन्दी कविताओं में पंजाबी भाषा के शब्दों का बाहु है। कहीं-कहीं पर कवि ने कश्मीरी, हिन्दी तथा पंजाबी भाषाओं के मिश्रित रूप कवितायें की है—

ना तुम देखो कृष्णा श्यामा
पतिया हमारा सूको
बाजीगर ने बाजीगरी की
जिगर हमारा पारा सूको।

खालूँगा हम मर कह रहूँगा
ना कहूँ तो मर जाऊँगा

रिस के नसना सबका हँसना
चोरों का अलंकारा सूको।

कश्मीरी के ये महान कलाकार सन् १८७६ ई० में दिवंगत हुए। इ
योग्य शिष्य थे जिनमें नागाम निवासी पं० लक्ष्मणजू 'बुलबुल' का नाम उल्लेखनं

## न्याम साव

इनका स्वातविक नाम नईम था। ये सन् १८०५ ई० के आस-पास
थे।[1] जन्मस्थान श्रीनगर में मुहल्ला चिनरान बताया जाता है।[2] पेशे के जुलाह
निधन सन् १८८० ई० में हुआ। इनकी कब्र मरपरिस्तान, श्रीनगर में अ
मौजूद है।

न्याम साव के कलाम में सूफी दर्शन का सतही विवेचन मिलता है। अन्य
कवियों की भाँति इनका काव्य सूफी-दर्शन के गूढ़ रहस्यात्मक तत्वों के वि
विश्लेपण से बोझिल नहीं बना है। प्रेम-तत्व की सरल-सहज रीति से अभिव्य
ही इनका ध्येय रहा। संयोग की अपेक्षा इन्हें वियोग-शृंगार के वर्णन में अधिक
सता मिली है। इनके कलाम से कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

अन्य मार्‌य करमस बावरे
हूरि मे न्यूनम चू रि दिल
दुम औश धरतुन सोन्दरे
हूरि न्ये न्यूनम चूरि दिल।

अरक मार बोद मे सालिनुय
सो मो यु नैराम मास्यनुय
दम दुम बदन वारिव नरे
हूरि न्ये न्यूनम चूरि दिल।

हिज्र वाव यूस करि बोरमकर
सु कनि मो सुव आश सबर
दम दुम दुम्य लम वटा मरि
हूरि न्ये न्यूनम चूरि दिल।

---

१. [illegible], पृ० ६१

## शाहकलन्दर

इनका जन्म-मरण काल ज्ञात नहीं है। जन्मस्थान हायगाम बताया जाता है। कामिल के अनुसार इनका आविर्भाव १८५० ई० में हुआ था।[1]

शाहकलन्दर का साहित्य मात्रा में अधिक नहीं है। इनकी केवल चार कवितायें मिलती हैं जो 'सूफी शायर' भाग २ में संकलित हैं। इनमें सूफी-दर्शन की छाप स्पष्ट रूप से झलकती है। दो-एक स्थान पर कवि की सुकोमल अन्तर्वृत्तियों ने बाह्य प्रेरणाओं से संपृक्त होकर विराट् के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने की भी चेष्टा की है। ऐसा करते समय उनका शुद्ध रहस्यवादी दृष्टिकोण मुखर उठा है। उनके कलाम से कुछ पद्यांश द्रष्टव्य हैं—

वाद दिथ ब आयोस सते
कँह न हासिल मे कोर येते
अंगसस मंज होस गोस मले
पान म्याने हा गाफिले।

यार गोंडनम चन्दन हारस
वार वनहा तस बे मारस
यार नय पिवि य तिमूर मलये
पान म्याने हा गाफिले।

पान सम्सार कँह मो रोजे
तस छु दुसूर युस गोड सोजे
जान दुनिया ग्यंदरे ओलये
पान म्याने हा गाफिले।

दिम न वायन दवर न सोनर
क्याह मंगन तिम सूक लसन
काल्य फेरन सति पन लले
पान म्याने हा गाफिले।

शाह कलन्दर मोरन मदर पास

---

[1] सूफी शायर, भाग २, पृ० ८१

वयाह छु अकार पननुय तनान
साफ न साफ मनि आगर सलये
पान म्याने हा गाफिले ।

## लक्ष्मण रैणा 'बुलबुल'

ये कविवर परमानन्द के शिष्य थे । इनका वास्तविक नाम लक्ष्मण रैणा और 'बुलबुल' उपनाम था ।[१] ये मूलतः श्रीनगर के मुहल्ला मलरोर, वाना मुहल्ला के रहने वाले थे । पिता का नाम सुन्दरराजदान था । प्रारम्भिक शिक्षा, तत्कालीन प्रथानुसार इन्हें मदरसे मे मिली जहां इन्होंने फारसी का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । फारसी के अलावा इन्होंने सस्कृत का भी अध्ययन किया तथा वेदान्त, त्रिक्-दर्शन ज्योतिष आदि का भी पारायण किया । जीविकोपार्जन के लिए इन्होंने अपने ही मुहल्ले में एक दुकान चलाई । इसी बीच इनके माता-पिता का निधन हुआ । भाइयों से अनबन हो जाने के कारण ये घर (कश्मीर) छोड़कर भारत भ्रमण को निकले तथा विभिन्न स्थानों की यात्रा की जिनमें प्रमुख हैं—मथुरा, वृन्दावन, कलकत्ता, दिल्ली आदि। भारत में लगभग दो वर्ष बिताने के बाद वापिस कश्मीर लौट गए । वहां खाद्य-निगम मे मुख्य भाण्डारी के पद पर नौकरी मिल गई । नौकरी करने इन्हें नागाम गाँव जाना पड़ा । कुछ समय बाद नागाम में ही इन्होंने शादी करली और वहीं के निवासी बन गये । दो सन्तान भी हुईं । एक दिन अकस्मात इनकी पत्नी खिड़की से गिर गई और उसका देहावसान हो गया । कुछ महीनों के बाद सन्तान भी भगवान को प्यारी हो गई । बुलबुल का मन बैठ गया । उन्हें चारों ओर गहन निराशा दिखाई देने लगी। मन की शान्ति के लिए साधु-सन्तों की संगत मे अपना अधिकांश समय बिताने लगे । पहले 'इशबर' मे रहे और बाद में प्रसिद्ध तीर्थस्थान 'मटन' में रहे । यहीं पर उनका कविवर परमानन्दजी से साक्षात्कार हुआ । 'बुलबुल' परमानन्दजी की ज्ञानगरिमा से प्रभावित हुए तथा उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया । दोनों चूंकि कवि हृदय रखते थे अत. दो हृदयों के मेल में अधिक समय न लगा । परमानन्दजी के समझाने पर 'बुलबुल' ने पुनः गृहस्थाश्रम मे प्रवेश किया । दूसरी पत्नी से दो सन्तान हुईं । पुत्र का नाम शिवजी और पुत्री का नाम जवारी (हलमाल) था। शिवजी का निधन 'बुलबुल' के जीवनकाल मे ही हो गया था । पुत्रमरण का संताप 'बुलबुल' को अन्त समय तक कचोटता रहा । कहा जाता है कि शिवजी किसी कार्य से श्रीनगर जा रहे थे । पिता ने अपने लिए एक तरबूजा मँगवाया । भूल से शिवजी तरबूजा लाना भूल गये । मारे

१. आजाद ने इन्हें बुलबुल नागामी, प्रो० तोषखानी ने लक्ष्मण भट्ट बुलबुल तथा प्रो० हाजिनी ने लक्ष्मण जू बुलबुल नामों से अभिहित किया है । वास्तव में, इनका नाम लक्ष्मण रैणा बुलबुल था ।

क्रोध के 'बुलबुल' के मुंह से अनायास निकल पड़ा—तूने मेरा कहना नहीं माना, जा—आठ दिन के अन्दर-अन्दर तेरी जिन्दगी का खातिमा हो जाए।[1] और ऐसा ही हुआ। शिवजी की मृत्यु से 'बुलबुल' को गहरा सदमा पहुँचा। अन्तर के तार झंकृत हो उठे, हृदय भर आया और भवनायें अबाध गति से फूट पड़ी। गृहस्थी के प्रति विरक्ति बढ़ने लगी, बोलचाल मे आशातीत गम्भीरता आ गई। अब वे घटों पढ़ने-लिखने मे बिताने लगे, भजनमण्डलियो मे भाग लेने लगे आदि। उनके घर के निकट एक मन्दिर 'देवी-'दल' था, यही पर वे अब अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। परलोक सिधारने से दो दिन पूर्व उन्होने अपने मरणकाल का संकेत अपने मित्रो से इस प्रकार किया था—

'कि छेर चाषि अजुरामजी आमद अरत लक्ष्मण'

इस पंक्ति मे से 'कि' घटाने पर उनका मरणकाल निकल आता है।[2] गणना से यह वर्ष संवत् १६५५ तदनुसार सन् १८६८ ई० बैठता है।[3] आजाद और गुलाम नबी खयाल ने बुलबुल' का मरणकाल संवत् १६४२ तदनुसार १८८५ ई० निश्चित किया है।[4] हाजिनी साहब ने सन् १८८४ ई० इनका निधनकाल तथा सन् १८१२ ई० इनका जन्मकाल बताया है।[5] वस्तुत सही गणना के उपरान्त 'बुलबुल' का निधनकाल संवत् १६५५ तदनुसार सन् १८६८ ई० ही बैठता है। इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में कोई प्रमाणिक सूचना नहीं मिलती, अत. हाजिनी साहब द्वारा उल्लिखित सन् १८१२ ई० को ही इनका जन्मकाल मान लिया जा सकता है।

सरल-स्वभाव के होने के साथ-साथ 'बुलबुल' को सादा भेस पसन्द था। लम्बा-चौड़ा चोगा (फिरन), सिर पर साफा, पाँव में घास की चप्पल (पुलहोर)—यह उनका प्रिय पहनावा था। चाय और तम्बाकू के हद से ज्यादा शौकीन थे। खुशदिल तबियत होने के साथ-साथ तनिक चिड़चिड़े भी थे। संगीत से विशेष लगाव था। कीर्तन-भजन में आगे होकर भाग लेते थे।

'बुलबुल' द्वारा रचित जो साहित्य उपलब्ध होता है उसका विवरण इस प्रकार है।

---

१. कश्मीरी जबान और शायरी, पृ० ३२७

२. 'की' को घटाने का निर्देश स्वयं 'बुलबुल' ने अपने मित्रो को दिया था।

३. कहते हैं प्राण त्यागते समय 'बुलबुल' ने ओम् का उच्चारण किया और चिर-निद्रा में निमग्न हो गए।

४. 'बुलबुल नागामी' मोतीलाल साकी का निबन्ध, 'शीन अदब' १६६५, पृ० १४

५. काशिर शायरी, पृ० ८३

१—भजन-स्तुतियाँ, (लीलायें)

२—राधास्वयंवर

३—सामनामा

४—नल व दमन

५—श्रोमनामा

६—चायनामा

भजन-स्तुतियों में 'बुलबुल' ने अपनी भक्तिभावना को साकार कर दिया है। इनमें नीति, वैराग्य, आत्म-संयम, आत्मज्ञान आदि सम्बन्धी विषय प्रधान हैं। भक्ति-रस से ओत-प्रोत होने के साथ-साथ इनमें माधुर्यरस की भी प्रधानता है। अन्तर्व्यथा के तप्त उच्छ्वासों में अपने आकुल हृदय के दैन्य तथा जगत् की असारता को मूर्त रूप प्रदान करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है—

कस क्याह छु ज़ेनुन येमि समसारये
सारिय गयि हारुय हारिये,
कोतू गयि बब त माज बाय बंद सारिये
अख अकिस न तिमकालि आरेये,
तार सज न तस यस येलि वाच् यारिमे
सारिय गयि हारय हारिये,

यह संसार मिथ्या है, इसके रहस्य को जानते-जानते सभी हार गए। हाय, मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु कहाँ चले गये। कोई भी किसी के लिये नहीं रहा। इसी प्रकार सभी अपने-अपने समय पर इस संसार से प्रयाण कर जायेंगे।

भजन-स्तुतियों में कवि ने प्रायः सभी हिन्दू देवी-देवताओं का समावेश किया है। कहीं-कहीं पर यह वर्णन इतना सूक्ष्म हो गया है कि साधारण व्यक्ति के लिये उन देवी-देवताओं के स्वरूप को समझना कठिन हो गया है। 'बुलबुल' का मन देवी-देवताओं में कृष्ण की भक्ति में अधिक रमा है। कृष्ण की रूप-माधुरी व इस वात्सल्य से प्रभावित होकर उनका भक्तहृदय भी झूम उठा है—

यशोदायि हिवमे यशोदा नन्दनो,
दीवकीयि हिवमे परमानन्दो,
सनयो दीन पावन कृपालो
कन्यो थे लिव पोशन मालो।

हे यशोदा के नन्दन, देवकी के आनन्द-भाजन, तुम्हारे चरणों पर बलिहारी जाऊँ। मैंने तुम्हारे लिये पुष्पों की मालाएँ बना रखी हैं।

विघ्नहर्त्ता, संकटनिवारक श्रीगणेश की वंदना कवि ने एक स्थान पर यों की है—

मोख दात छुख व मोख गजन्दरो
सोख मोख हावतम पनुन अनुग्रहे,
तन मन लाग हय व्यनयोश गोन्दरा
सोन्दरा मन्दरस बोथरोवुम मे।

'राधा स्वयवर' एक काव्य रचना है जो मुख्त' परमानन्द द्वारा रचित है। इस रचना के कुछ अध्याय 'बुलबुल' ने लिखे थे। कई विद्वानों का मत है कि 'बुलबुल' ने परमानन्द के जीवनकाल मे ही इस कृति के ये अध्याय लिखे थे। कइयों का कहना है कि परमानन्द के निधनोपरान्त 'बुलबुल' ने इसे पूरा किया था।

'सामनामा' एक संक्षिप्त काव्यकृति है जिसका रचनाकाल सन् १८७४ ई० है। यह रचना १९६५ ई० में जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा श्री गुलाम नबी खयाल के संपादकत्व मे प्रकाशित हुई है।

'नलदमन' एक खण्डकाव्य है जिसमे नल-दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा वर्णित है। इतिवृत्त का मूलाधार महाभारत है। कवि ने मूलकथा की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए अपनी कल्पना का रंग भी यत्रतत्र इस काव्यकृति पर चढ़ा दिया है। 'नलदमन' का कथानक इस प्रकार है—दमयन्ती-स्वयंवर मे चन्द्रवंशी राजा नल को विदर्भ-नरेश भीम की कन्या दमयंती वरमाला पहनाती है। कलियुग को यह बात अच्छी नही लगती। वह राजा को परेशान करने की ठान लेता है। अनेक तरह के षड्यंत्र करने पर भी जब वह सफल नहीं होता तो एक दिन बैल का भेस धारण कर वह राजा नल के पास आता है और उसे अपने भाई 'वकरसेन' से जुआ खेलने के लिए प्रेरित करता है। नल जुए मे सब कुछ हार जाता है। दोनों पति-पत्नी बच्चों को ननिहाल भेजकर दीन-हीन अवस्था मे जगलो की राह लेते हैं। मार्ग में उन्हें कई तरह के कष्ट भोगने पड़ते हैं, कई दिनों तक भूखा रहना पड़ता है, पैरों में छाले पड़ जाते हैं आदि। नल दमयंती से अपने मायके चले जाने का अनुरोध करता है किन्तु दमयंती नल को अकेला छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहती। एक रात नल दमयंती को गहरी निद्रा में निमग्न देख चुपके से भाग जाता है। सवेरे जब दमयंती की आँख खुलती है तो नल को न पाकर उसे अपार दुःख होता है। बेचारी अनेकों कष्टों को झेलती हुई जैसे-तैसे अपने मायके पहुँच जाती है। उधर नल काम की तलाश में फिरता हुआ राजा 'रथवरन' की नगरी मे पहुँच जाता है और वहाँ उसे राजा के सारथि की नौकरी मिल जाती है। दमयन्ती का पिता नल को ढूँढने के लिए अपने गुप्तचर विभिन्न स्थानों मे भेजता है तथा नल का पता लगा लेता है। अपनी पुत्री का दूसरा विवाह रचाने के बहाने से दमयन्ती का पिता विभिन्न राजाओं को निमन्त्रण भेजता है जिसमें

राजा 'रथवरन' को विशेषरूप से आमंत्रित किया जाता है। 'रथवरन' विवाह में भाग लेने के लिए अपने सारथि नल सहित कुन्दनपुर चले जाते हैं। वहाँ पर अपनी पत्नी दमयन्ती को देख नल आनन्द-विभोर हो जाता है तथा दोनों का मिलन हो जाता है। नल अपने स्वामी 'रथवरन' से द्यूतकला सीख चुका होता है और बदले में नल ने उसे सारथ्यकला सिखाई होती है। कुन्दनपुर से नल अपने देश चला जाता है तथा वहाँ अपने खोए हुए राजपाट को पुनः प्राप्त कर लेता है।

'नलदमन' में समय स्थान और घटना-ऐक्य को इस प्रकार से गूँथ दिया गया है कि सैकडों वर्ष बीत जाने पर भी इस प्रबन्धकृति की कहानी एक चिर-नवीन प्रभाव पाठक के हृदय पर छोड जाती है। कहानी के अनेक प्रसंग इस तन्मयता से कवि ने वर्णित किए हैं कि उन्हें पढकर साक्षात् चित्र से आँखों के सामने उभरकर आते है। जुए में सब कुछ हार जाने के बाद राजा नल जंगलों की राह लेते हैं तो उनकी पत्नी भी उनके साथ चली जाती है। दोनों को अनेक कष्ट एवं यातनायें सहनी पडती हैं। दमयन्ती के कोमल पैरों मे छाले पड जाते हैं तथा चेहरे की आभा मलिन पड जाती है। नल से अपनी पत्नी की यह स्थिति सही नहीं जाती। वह दमयन्ती को मायके चले जाने के लिए अनुरोध करता है किन्तु पतिव्रता दमयन्ती अपने स्वामी से किसी भी सूरत मे विलग नही होना चाहती। यह प्रसग कवि ने यों चित्रित किया है—

> ज़ूबान यस ओस ताज व तख्त पयकुन
> लबन तम्बसिय व्यथ नोन त अयछोन,
> तमिस डीशिय गलन नल शीनबल ज़न
> सतारह् आस हारान डोठफल्य ज़न,
> बुजर तस बालि चामुत वर जवानी
> मरुन ओनुन छु बेहतर ज़िन्दगानी,
> दरुन न तस गुलस फेरुन कण्ड्येन मंज़
> खसन रतफुट नमस माज़ टेंड्मेन मंज़,
> वकुन्दनपोर गछ़ मालिस निश रोज़
> अन्दन यामत मे यिम रोज़-ए-गमअन्दोज़,
> बरन ज़ुर्य सोख त चे रोस मा बरन तिम
> लगन न योकहत्य लुक बरन तिम,
> सु आति पाक दूजिय राम सुन्द याव
> सपन्य गमनाक मीज्य बालाक दिलचाक,
> दपन छ़स यि तिसमगर बयाह् यि बोनयम
> दाकर हादिय म्ये अश्मन नून छुनयम,——

जिस रानी के सिर पर कभी ताज सुशोभित होता था, उसे आज विपन्न तथ
दयनीय अवस्था में देखकर नल मन-ही-मन बर्फ के समान गलता जा रहा था तथ
उसकी आँखों से ओलों के समान आँसू बह रहे थे। दमयन्ती की कोमल जवानी बुढ़ा
में परिवर्तित हो रही थी। नल से उसकी यह दशा सही न गई। काँटों पर चलते
चलते उसके पैरों में छाले पड़ गए थे तथा उंगलियाँ रक्त-रंजित हो गई थीं। नल
दमयन्ती से कहा—उचित यही है कि तुम तब तक अपने मायके चली जाओ जब त
हमारे ये बुरे दिन टलते नहीं हैं। बच्चों को भी साथ लेती जाओ क्योंकि तुम्हा
बिना वे मेरे साथ रह नहीं सकते हैं। इस पर दमयन्ती ने उत्तर दिया—हे निर्दय
यह आप क्या कह रहे हैं, मेरा और आपका तो जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध है—।

'ओमनामा' भी एक संक्षिप्त काव्यकृति है। इसमें ओम् शब्द के महात्म्य प
प्रकाश डाला गया है। 'चायनामा' में चाय की प्रशंसा, उसके स्वाद तथा उपयो
पर सरस-सरल भाषा में तुकबन्दियाँ की गई हैं।

'बुलबुल' कश्मीरी के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी कविताएँ करते थे
साम्राज्ञी विक्टोरिया के निधन पर उन्होंने फारसी में लिखी एक कविता तत्कालीन
वाइसराय को भेजी थी। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

आह अफसोस अज़ अलम फना
मलिका-ए-मुअज़्ज़मा रफ्ता ज़ि जहां,
बानू-ए-तख्त नशीन लन्दन
बानू-ए-अब्रा-ब-नशीन लन्दन……।

## प्रकाशराम

ये कुर्यगाम के रहने वाले थे।[1] १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इनक
आविर्भाव हुआ बताया जाता है। सन् १८८२ ई० तक जीवित थे। ग्रियर्सन महोद
ने इनका कविता-काल कश्मीर के गवर्नर सुखजीवन (१७५४-१७६२) ई० का सम
बताया है जो सटीक नहीं बैठता। प्रकाशराम ने २८ वर्ष की आयु में संवत् १९०
तदनुसार १८४७ ई० में अपनी प्रसिद्ध प्रबन्धकृति 'रामावतारचरित' की रचना
थी। इस कृति की एक हस्त लिखित प्रति पर 'रामावतारचरित' के उक्त रचनाकाल
उल्लेख है। प्रति पर संवत् १९०४ स्पष्टतया अंकित है।[2] इस आधार पर प्रकाशरा
का जन्मकाल सन् १८१९ ई० बैठता है।

प्रकाशराम देवी ललिताम्बा (त्रिपुर सुन्दरी) के अनन्य उपासक थे। उन्हीं की कृ
से उन्हें वाक्-शक्ति का अपूर्व वरदान प्राप्त हुआ था। वे नित्य देवी की पूजा करते त

---

१—ग्रियर्सन ने प्रकाशराम को श्री नगर का निवासी तथा उनका नाम दिवा
प्रकाश भट्ट बताया है जो सही नहीं है।

२—'रामावतारचरित' सम्पादक श्री बलजिनाथ पंडित, भूमिका पृ० ३०

उनकी आराधना में घंटों बिताते । कहते हैं एक दिन खूब वर्षा हो रही थी । प्रकाशराम को दूर से एक डोली अपनी ओर आती हुई दिखाई पड़ी । डोली के वाहकों ने प्रकाशराम को आवाज दी । प्रकाशराम जब डोली के निकट पहुँचे तो उसका पर्दा ऊपर उठा । डोली में साक्षात् देवी विराज रही थीं । प्रकाशराम के नेत्र प्रफुल्लित हो उठे । कुछ ही क्षणों बाद देवी डोली सहित अन्तर्धान हो गई । भगवद्भक्ति का अनूठा प्रसाद पाकर प्रकाशराम का मन झूम-झूमकर देव-स्तुति में रम गया ।

प्रकाशराम की निम्नलिखित काव्य-रचनाओं का उल्लेख मिलता है ।

१—रामावतारचरित
२—लवकुशचरित
३—कृष्णावतार
४—अकनन्दुन और
५—शिवलग्न

उक्त पाँच रचनाओं में से अन्तिम तीन रचनायें अप्रकाशित हैं । 'रामावतारचरित' तथा 'लवकुशचरित' प्रकाशित हो चुके हैं ।

'रामावतारचरित' प्रकाशराम की सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यकृति है । यह एक महाकाव्य है जिसमें रामकथा गायी गई है । इस कृति के जो विभिन्न हस्तलिखित अथवा प्रकाशित संस्करण मिलते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है—

१—विश्वनाथ प्रेस, श्रीनगर का सन् १९१० ई० में प्रकाशित संस्करण, (फारसी लिपि में लिखित)
२—ग्रियर्सन का सन् १९३० ई० में रोमन लिपि में प्रकाशित संस्करण,
३—'दामजन' गाँव के विश्वम्भरनाथ भट्ट का हस्तलिखित संस्करण, (फारसी लिपि में लिखित) ।
४—'अविनगाम' गाँव के नन्दलाल राजदान का हस्तलिखित संस्करण,
५—अली मुहम्मद पुस्तक विक्रेता, श्रीनगर का १९०४ ई० में प्रकाशित संस्करण,
६—कल्चरल अकादमी, जम्मू व कश्मीर राज्य, का सन् १९६५ में श्री बलजिन्नाथ, पण्डित के सपादकत्व में प्रकाशित परिवर्धित-परिमार्जित संस्करण ।

प्रकाशराम के 'रामावतारचरित' का मुख्याधार वाल्मीकि कृत रामायण है । संपूर्ण कथानक सात काण्डों में विभक्त है । अन्त में 'लवकुशचरित' जोड़ दिया गया है । बीच-बीच में भक्तिगीतों का समावेश भी किया गया है । कई स्थानों पर कवि का भक्तहृदय आवश्यकता से अधिक भावविभोर हो उठा है तथा मूल कथाप्रसंग उत्कट भक्तिभावना के प्रवाह में दब-से गये हैं । इसी प्रकार अहल्योद्धार-प्रसंग भी दो बार आया है जिससे कथा प्रवाह की सहजता में गतिरोध आ गया है । कवि ने अपने इस कश्मीरी रामायण में किन्हीं नूतन मान्यताओं की उद्घोषणा की है । प्रबन्धकार ने रावण और मन्दोदरी को सीता का माता-पिता बतलाया है तथा 'लवकुशचरित' के

अन्तर्गत सीता को वनवास दिलाने के लिए उसकी ननद (?) को दोषी ठहराया है।[1]

'रामावतारचरित' तथा 'लवकुशचरित' मे मुख्यतः दो प्रकार की काव्यशैलियो का प्रयोग हुआ है—इतिवृत्तात्मक शैली और गीति शैली। इतिवृत्तात्मक शैली में मुख्य घटना-प्रसंग वर्णित हुए हैं तथा गीति शैली मे वन्दना-स्तुति सम्बन्धी तथा अन्य भक्तिगीत कहे गए हैं। संपूर्ण प्रबन्धकृति महाकाव्योचित लक्षणों से युक्त है। प्रकृति एवं वस्तु-दृश्य चित्रण क्षेत्रीय परिवेश में हुआ है। सीताजी के पृथ्वी-प्रवेश प्रसंग मे एक स्थान पर कवि ने 'शकरपुर' गाँव का उल्लेख किया है।[2] अप्रस्तुत-विधान की संयोजना करते समय कवि की प्रवृत्ति स्थानीय वस्तु-व्यापार से उपमान छाँटने की रही है। वस्तुतः इस प्रकार की प्रवृत्ति एक प्रादेशिक भाषा के कवि से अपेक्षित भी है क्योंकि कवि की भावाभिव्यक्ति तब तक हृदयग्राही नहीं बन सकती जब तक वह अपनी बात अपने ही परिवेश के सन्दर्भ में नहीं कहता। अशोक-वाटिका में निस्सहाय पड़ी सीताजी की विरह-व्यथा को चित्रित करते समय कवि ने जिस अप्रस्तुत-विधान की संयोजना की है उसमें प्रायः स्थानीय वस्तु-व्यापार ही प्रधान है। जानकी जी के दुःख मे अशोक-वाटिका के जिन पुष्पों को दुखी दिखाया गया है, वे शुद्धतः कश्मीर की क्षेत्रीय वनस्थली से सम्बद्ध है—

> छुछुन ह्योतमुत दाग् दिलस प्यठ लालन
> दपान द्रेर ब नो छुस यार चालन,
> अरिन्य खचमच् नसस प्यठ दानपोशन
> दपान जाफर गुलाबस छुस न पोशन,
> यम्बरज़ल वर गामच् बे रंग कोमम
> दपान कोताह् चरिय ह्यक चश्मलोसम,
> गुलाबस आस लायान नाद मसवल
> नितम छम तोर कुन रातस दोहस कल ॥

गुललाला पुष्प अपने दिल पर दाग लिए है जैसे कह रहा हो—अब मैं अपने प्रियतम का विरह सह नहीं सकता। अरिन्य की बेल बैंदसी मे अनार के पेड़ पर चढ़ गई है। यम्बरज़ल मुरझा गई है तथा कोसम का रंग फीका पड़ गया है। मसवल (सीताजी) गुलाब (श्रीराम) को आवाज दे रही हैं—अब आओ, मुझे रात-दिन तुम्हारा ही इन्तज़ार है।

---

१—'लवकुशचरित पृ० २०३-२०४, श्री बलिजनाथ द्वारा संपादित।

२—यह गाँव कश्मीर की कुलगाँव तहसील में स्थित है। कवि की मान्यतानुसार सीताजी ने इसी स्थान पर पृथ्वी मे प्रवेश किया था।

ऊपर कहा जा चुका है, प्रकाशराम ने 'रामावतारचरित' की रचना करते समय महाकाव्योचित मानकों का यथा-स्थान अनुपालन किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने मंगलाचरण के अन्तर्गत गणेशजी की वंदना की है—

> नमो नमो गणेशाय, एक दन्तधराय च
> नमो ईश्वर पुत्राय श्रीगणेशाय नमोनमः
> गोड्न्य सपनुन शरन श्रीराव गणेशस
> करान युस छु रछ्या यथ मनुष्यलूकस,
> दोयिम कर सतगोरस पननिस नमस्कार
> यिथ युस तोर पनुन येमि भवसरि तार ॥

सर्वप्रथम गणेशजी की शरण में जायें जो इस मनुष्यलोक की रक्षा करते हैं। तत्पश्चात् सद्गुरु को नमस्कार करें जो इस भवसागर को पार कराने में सहायक होंगे।

अयोध्यापति राजा दशरथ की संतान-कामना, कामना-पूर्ति के लिए व्रत आदि रखना, स्वप्न में भगवान् विष्णु द्वारा वरदान पाना इत्यादि प्रसंगों को कवि ने अत्यन्त भाव-पूर्ण शैली में वर्णित किया है—

> वोथन सुलि प्रथ परबातन नित्य करान स्नान
> रछन जोगेन गोसान्येन सात्य पवान ज़ान,
> स्यठा रातस श्रोहुस लोला करान श्रोस
> शरन सपनुन नारायण पानय टोठ्योस,
> गोबुर श्रोसुस न स्यठा च़ंचल श्रोस तस मन
> दपान स्वोपनस श्रन्दर तस छ्युन दरशन,
> दोपन तस गछ़ मे छुम ज़नमस चे निश युन ॥

राजा दशरथ नित्य सवेरे उठकर स्नानादि करते तथा साधु-सन्तों व जोगियों के पास आशीर्वाद लेने जाते। सन्तान-सुख के अभाव में उनका मन सदैव चंचल रहता है। रात-दिन भगवद्भक्ति में तल्लीन रहते। एक रात स्वप्न में भगवान् विष्णु ने उन्हें दर्शन दिए और कहा कि मैं तुम्हारे घर में अवतार ले रहा हूँ।

वचनबद्धता के प्रश्न को लेकर दशरथ और कैकेयी के बीच जो संवाद होते हैं, वे द्रष्टव्य हैं। इनमें एक पितृहृदय की स्नेहिल धड़कनों का भीषण बवण्डर उठता-सा दिखाई पड़ता है—

> दपान येलि राज गव कौकियि निश रात
> दोपुस तमि मे मा दप मोंगमय च़ेह् केंह् ज़ात,
> मंगय कैछा मे दिनकिन ति गछ़् येम छ़ुन
> दोपुस तम्य तोर छ़ुतमय यम्य गछ़ेम न्युन

प्रथस प्यठ वास दिय कोरनस बन्दानय
च़ योदवय जुव मंगल पुशरय च़ अदुपानय,
छु क्याह चोज़ मंगिय म्रासिय दिमयना
दपख योतयन च़ तोत बुय्यकिन यिमयना,
बुध त्रेयि वावकिन पेलि दोरनस कन
त्युथुय त्युथ गोस युथ करेहेस न दुश्मन,
क्सम छुयना स्योमुत गछ़ि वादपालुन
मेयर रछ़ुन शयर गछ़ि मूलय गालुन,
भरत गछ़ि राज़ु आसुन रामस बलवास
दपन कीकियि चुछ़ दाद बार क्याह आस,
त्युथुय बूज़िथ वसिथ प्यव राज़ बरखाक
कोरुन जामन त जानस सारिसिय चाक,
ति बूज़िय राज़ बुय्यकिन तति पयरप्यव
त्युथुय युथ सारि युथ गन्जुरख सपुन शव

× × ×

अमर करत स्यमा सोज़नु न वनवास
मर तस रोस यन्य करतम तम्युक पास,
यि कें छ़ा छुम ति सोरुय दिम बरतस
मे छुम अख रामजुव बस छुम त्युतुय बस ।।

जब राजा दशरथ रात्रि में कैकेयी के पास गये तो कैकेयी ने राजा से कहा—आज तक मैंने आपसे कुछ भी नहीं माँगा, यदि आज कुछ माँग लूँ तो मुझे वह मिलना चाहिए। राजा ने तुरन्त हाँ कह दी। हाथों में हाथ लेकर राजा ने आगे कहा यदि तू मेरे प्राण भी माँगेगी तो मैं सहर्ष देने के लिए तैयार हूँ। भला ऐसी कौन-सी वस्तु इस संसार है जो मेरे पास है और तुम्हें न दूँ। जब कैकेयी ने देखा कि राजा त्रिया-जाल में पूर्णतया फँस चुका है तो उसने ऐसा बाण छोड़ा जो एक शत्रु भी नहीं छोड़ सकता था। कैकेयी ने कहा—आपने मुझे वचन दिया है अतः उसका पालन करना आवश्यक है। भरत को अयोध्या का राज्य मिले तथा रामचन्द्र को वनवास। अन्तिम कथन सुनते ही राजा अचेत होकर जमीन पर गिर पड़े तथा उन्होंने अपने समस्त वस्त्र चाक कर डाले।''''''दशरथ ने आर्द्र-स्वर में कैकेयी से विनती की—मुझ पर दया कर, राम को वनवास न दिला, मैं उसके बिना जीवित न रह सकूँगा। मेरे पास जो कुछ भी है वह मैं भरत को देदूँगा किन्तु रामचन्द्रजी को वनवास न दिला। मेरे तो बस एक राम ही सब कुछ हैं।

सपुन दिल सोख्त बाजा पोख्त गवखाम,
दिमचि पानय वरिय गर्दन व शमशेर
दोपुम पानय जुवस पननिस स्वखर नेर,
दपन छुस वन्य जमीनस तल गछ़ म जाय
छुस पालन्य वन्य च केंह्यां करम पाय,
योयुम योद पोश घर छुस बर गामच
वुछन छुख ना ब जन आकाशि प्येमिच ॥

मेरी बुद्धि को न जाने तब क्या हो गया था। अब मैं सोच रही हूँ कि भगवान को क्या मुँह दिखाऊँगी। मैंने स्वयं अपने हाथों अपनी गर्दन पर तलवार चलाई और स्वयं लक्ष्य-भ्रष्ट हो गई। काश, यह जमीन फट जाती और मैं उसमें समा जाती। हे राम, उठिये और मुझ पापिन का उद्धार कीजिये, मैं शाख से कटी लता के समान हो गई हूँ।

पक्षीराज जटायु और रावण के बीच हुए युद्ध को कवि ने अपनी तूलिका द्वारा विशेष सजीवता प्रदान की है—

खबर बूजिथ जटायु गव खबरदार
कफस फुटरन त लारान गव ब यकबार,
पुनुम चन्द्रस येलि वुछुन हाय चलान कीत
दोपुन तस योय मरुत पापुक गोय होथ,
परकि दक सास्य छुस आकाशि आवान
जमीनस प्यठ अडजि छुस फुटरावन,
रटन ओमुस चटन ओमुस पजन तल
चटन छुस कल लामत छुस दरान छल ॥

सीताहरण की खबर सुनते ही जटायु सचेत हो गया और उड़कर रावण का पीछा करने लगा। पूनम के चन्द्रमा को उसने जब केतु द्वारा ग्रसित देखा तो रावण को ललकार कर कहा—रे मूर्ख, क्यों पाप करके अपनी मृत्यु को बुला रहा है। अपने पंख के धक्कों से उसने रावण को ऊपर आकाश में उछाल दिया और जमीन पर गिराकर उसकी हड्डियां तोड़ डालीं। नोच-खसोट कर उसने उसका बुरा हाल बना दिया।

सीता-खोज अभियान में दोनों भाइयों की तत्परता द्रष्टव्य है—

पकन गयि वन्यदिवान कोह्न त बालन
पकन गयि मात्त प्रावान कोह् सारान,
प्र्.छुन दोछ मास्य वनचरन जानावारन
न कुनि मास्य बेहन न कुनि रोछान,
यि वोन सीतायि ति प्रय जायि वोछान
वुछुख ह्य्.ठुक जटायुन सख्त गमनाक,
प्योमुत बर खाक गम ज़ामन छ्.तुक धाक.
वनिन दोछ रावन्यन सारिय तु्.मन कुन
वयित देवरदो दिहि निश मोक्त सपनुन,......।

दोनों भाई पहाड़ों और जंगलों की खाक छानते रहे। वे अनेकों नदी-नालों को लांघते हुये आगे बढ़ते गये। मार्ग में वे पशु-पक्षियों से सीताजी के बारे में पूछते जाते। न कहीं पर रुकते और न कहीं पर बैठते। मार्ग में उन्हें जटायु मिल गया जो भू पर लोट रहा था। उसने राम-लक्ष्मण को रावण द्वारा सीता-हरण का सारा वृत्तान्त बता दिया और यह कहकर प्राण त्याग दिये और वह मुक्त हो गया।

प्रकाशराम की भाषा संस्कृत-निष्ठ है जिसमे कहीं-कहीं पर फारसी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। 'दपन', 'करन', 'गछन', 'वनन' आदि शहरी कश्मीरी के प्रयोग न होकर देहाती कश्मीरी के प्रयोग है।

'लवकुशचरित' 'रामावतारचरित' के अन्त में जोड़ दिया गया है। इसके अन्तर्गत वर्णित मुख्य घटना-प्रसग इस प्रकार हैं—

१—ननद के उलाहने,
२—सीता का वन-गमन
३—लव और कुश का जन्म
४—अश्वमेघ घोड़ा
५—लव और कुश का भरत से युद्ध
६—लक्ष्मण जी का अचेत हो जाना
७—श्रीराम से युद्ध
८—सीता का विलाप
९—अमृत वर्षा
१०—सीता-राम संवाद
११—सीताजी का पृथ्वी में प्रवेश
१२—श्रीराम का स्वर्ग में जाना
१३—स्फुट भक्तिगीत

'लवकुशचरित' की अलग से रचना कर कवि ने उपर्युक्त प्रसंगों को विशेष महत्व देना चाहा है। दो-एक स्थानों पर रचनाकार का भावप्रवण हृदय घटनाओं के वर्णन में ऐसा निमग्न हो गया है कि आँखों तले सजीव चित्र उभर कर आते हैं। लोक-निन्दा के भय से जब श्रीरामचन्द्रजी जानकी को निर्वासित करने को सोचते हैं और लक्ष्मणजी से सीता को वन में छोड़ आने के लिये कहते हैं, उस समय का दृश्य कवि ने यों खींचा है—

ति बूज़िथ लक्ष्मणस खोत ज़ाफ
दप्योनस क्यासना सीतायिलोत पाप,
अमा ओसुस न ससनिश न करनस चार
गोंडनस जिगरस यकबारगी नार,
दोपुस लस्य लक्ष्मणन रूदुय न इन्साफ
सती सीता छम वनतु क्याह् खोतुस पाफ,
करयानस ज़ार-पार बुज़नस न दान
सपुन लाचार लक्ष्मणन हुकुम मोनुन,
कडुन्य सीता कडनस कँह् चार ज़ोनुन
दपन वारियाह सु लक्ष्मणजुव वदान ओस
पकन पयकुन नज़र फीरिथ दिवान ओस,
वदनु सात्य ओस गश गोंडनस नार
वुछन ओस सात्य-सात्य छ़ु यियस आर......।।

सीताजी को वनवास देने का समाचार सुनकर लक्ष्मणजी तनिक क्रुद्ध हो उठे। वे रामचन्द्रजी से कहने लगे कि सीताजी को यह किस पाप की सजा दी जा रही है। सीताजी सती हैं, आप अन्यायी क्यों बन रहे हैं। लक्ष्मणजी ने बहुत विनती की किन्तु रामचन्द्रजी ने एक भी न मानी। लाचार होकर लक्ष्मणजी सीता को लेकर वन की ओर चल दिये। लक्ष्मण जी की आँखों से अश्रुधारा बह रही थी और हृदय दहक रहा था। चलते समय वे बार-बार पीछे देखने लगे-शायद रामचन्द्रजी को दया आ जाये।

### ख्वाजा मुहम्मद अकरम बकाल

ये 'दर्दमन्द' उपनाम से कवितायें करते थे। रहने वाले चार-शरीफ (कश्मीर) के थे। इनका निधन सन् १८८६ ई० में हुआ बताया जाता है।[1] जन्मकाल अविदित है। इनमें रसिकता व जिन्दादिली कूट-कूट कर भरी हुई थी। कहते हैं अपने ही

---

१. काशिर शायरी, पृ० ८६

इलाके की किसी नाजनीन पर आशिक थे। मरते दम उसकी याद में तड़पते रहे। इनकी कविताओं में प्रेम का जो स्वरूप उभरता है उसमें अधीरता व उत्कण्ठा अधिक है, त्याग और तप कम। इनके कलाम से एक नमूना प्रस्तुत है—

हतो अश्को चोटथस म यारव निशि
जुदा साज़ जन प्योस तारव निशि,
हतो अश्को कोताह् च बेवायि छुख
बुज़िथ जान आशक तलन कायि छुख,
हतो अश्क बर रोगन सोज़ोव दरद
तलिथ कम जिगर गोशन आहति सरद,
हतो अश्क इन्साफ कोन चे छुय
बआलम तुलुय कूल मातम त हुय,
हतो अश्क मालिस गोवुर रावरय
जुलेखायि त्युथ युस्त वयुथ हुत् करय······

रे इश्क, तूने मुझे यारों से जुदा कर दिया जैसे कोई साज़ तारों से जुदा हो जाता है। रे इश्क, तू कितना कठोर है। तू न जाने कितने आशिकों को अपनी अग्नि में भूनता है। साज़ व दर्द रूपी घी में न जाने तूने अब तक कितने आशिकों के जिगर को तल लिया है। तुझ में इन्साफ ज़रा भी नहीं है। इस संसार में प्रत्येक हलचल का कारण तू ही है।······

## रहमान डार

ये छतावल, श्रीनगर के रहने वाले थे। इनका जन्मकाल अविदित है, निधन सन् १८६७ ई० में हुआ बताया जाता है।[1] सादा जीवन इन्हें पसन्द था और सूफी सन्तों के सत्संग में ही अधिक समय बिताते थे। इनकी कविताओं में प्रेम अपने उदात्त स्वरूप में व्यंजित हुआ है। उसमें कोमलता व कमनीयता के साथ-साथ हृदय के अन्तराल से निकली पीड़ा भी समाहित है। यह पीड़ा पाठक के हृदय पर गहरी पैठ जाती है। इनकी 'शशरंग' व 'माच्छतु.लुर' शीर्षक कवितायें काफी लोकप्रिय हैं। दोनों में कवि के अवसाद का रागात्मक संस्पर्श है।

रहमान डार ऐसे प्रथम कवि हैं जिन्होंने अष्टपदी कविताओं की संरचना कर कश्मीरी कविता को एक नयी काव्यशैली दी। 'शशरंग' कविता में एक प्रेम-मतवाली विरहिणी के निष्काम प्रेम का चित्रण किया गया है जो उपेक्षिता होने पर भी अपने निःस्वार्थ प्रेमबल से प्रियतम को प्राप्त करना चाहती है। प्रियतम को पाने के लिये वह अपना सर्वस्व निछावर करने को भी तैयार है। 'माच्छतु.लुर' अन्योक्ति एक मसनवी है जिसमें, मधुमक्खी, मधुछत्ते व साधारण मक्खी के बीच हुए संवाद प्रस्तुत

[1] 'शायर' भाग ११ पृ० ६४

भावपूर्ण ढंग से उल्लिखित हैं। यह एक प्रतीकात्मक कविता है जिसमें मधुमक्खी चेतना अथवा साधक का प्रतीक है, मधुछत्ता परमतत्व अथवा साध्य का प्रतीक है और साधारण मक्खी वासना अथवा माया का प्रतीक है। रहमान डार की अन्य प्रसिद्ध कवितायें इस प्रकार हैं—'प्रजनोवुम ससार', 'चावनस पान मस तय', 'बहार आव जाने जनानय', 'कमि सोनि रोटनम यार', 'यी लोग्य ल्यूखनम', 'साल यिते सोनुये', 'मलाल आव स्योनुये' आदि।

रहमान डार की प्रसिद्ध कविता 'शशरंग' से कुछ पंक्तियाँ नमूने के तौर पर दी जा रही हैं—

> आदनय यिखना छुम लादन तय
> सर हो वन्दय पादन,
> मदन आसम चानिय विदन तय
> अज़ वात तम दादन,
> यि दोद नरन त बंयि मादन तय
> छिम गछान आंदय नाइन,
> मदन मे छपरयो चानि कसद त
> गोश थव फरियादन तय......।

हे मेरे जीवन-साथी, मैं अपना सिर तुम्हारे कदमों पर निछावर कर रही हूँ, अब तो आ जाओ। मुझे बस तुम्हारी ही तमन्ना है। मेरे दिल का दर्द समस्त प्रकृति में फैल रहा है। तुम्हारी खातिर मैंने अनेकों दुःख झेले। अब तो मेरी फरियाद सुनो—।

## मोही अलद्दीन गनाई 'मेहदो'

ये नाल गाव के रहने वाले थे। इनका निधन १६०० ई० में हुआ बताया जाता है।[1] इनकी लिखी पांच मसनवियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें प्रमुख हैं—'चन्दवदन', 'जंग-ए-खैबर' आदि। ये सभी मसनवियां अप्रकाशित हैं। इन्होंने कुछ स्फुट कवितायें भी लिखी हैं। इनके कलाम से एक नमूना देखिये—

> ल्यसिये दिल ल्यूनम रस रस यारन
> मारन छुमय गोशवारन छाये,
> अद गयम बदनस सोमाद्र कारन
> अद्दोलम न आंहिति क्याह् गोय यि हाये,

1. काशिर शायरी, पृ० ६८

बवनस डुयन दुम म दम प्रोम हारान
मारन दुमय गोशावारम प्राये ।

री सखी, महबूब ने चुपके से मेरा दिल चुरा लिया है। अब वह दूर रहकर मुझे तड़पा रहा है। उसकी जुदाई में मेरा सारा शरीर गलकर छलनी हो गया किन्तु उस निठुर ने कभी आकर मेरा हाल तक न पूछा। अब मैं रात दिन उसकी याद मे आंसू बहा रही हूँ।

## शमस फकीर

इनका जन्म सन् १८४३ ई० में श्रीनगर के चिकाल मुहल्ला में एक मध्य-वर्गीय घराने में हुआ था। वास्तविक नाम मुहम्मद सिद्दीक भट्ट था। प्रारंभिक शिक्षा इन्हें घर पर ही अपने पिता से मिली। दस बारह साल के हुए तो इन्हें एक सार-उद्योग मे धंधा करने के लिये भेजा गया। यहाँ पर ये प्रसिद्ध सूफी कवि न्याम साब के सम्पर्क मे आये जिनकी प्रेरणा पाकर शमसफकीर के हृदय में भी कविता करने की इच्छा हुई। इसी बीच उनका निकाह इस्लामाबाद के ख्वाजा अज़ीज भट्ट की इकली पुत्री आइशा से सम्पन्न हुआ। किन्तु सांसारिकता के प्रति शमसफकीर दिनोंदिन विरक्त होते गये। घर-गृहस्थी से उन्होंने बिलकुल किनारा कर लिया तथा अपने जीवन का अधिकांश समय श्रीनगर से लगभग १८ मील दूर करशिपोरा (तहसील बड़गाम) मे बिताया। इनका निधन तिरसठ साल की उम्र में सन् १९०४ ई० में हुआ। इनकी समाधि करशिपोरा मे मौजूद है।

शमसफकीर की लगभग सत्तर कविताये मिलती हैं। इनमें सूफी-दर्शन के मूलभूत नियमों का सहज-सरल ढग से विवेचन मिलता है। अधिकांश कविताओं में प्रेम का वह स्वरूप उभरा है जो प्रणयोन्माद अथवा ऐन्द्रिक-अनुभूति से परे निष्काम विह्वलता पर अवस्थित है। कवि के अनुसार प्रेमसाधना में तपकर अन्तर्रति के उस चरम बिन्दु तक तभी पहुँचा जा सकता है जब कुत्सित स्वार्थ व क्षुद्र कामनाओं को तिलांजलि दे दी जाये। इनकी कविताओं से लिये कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

१—शिन्याह गछिथ आस स्योन ओलुय
अम्य लोल नारन ज़ोलये,
गजस ओवनम रोनि मंजुलिये
श्रोन्य श्रोन्य बोज़ान चास
कुलयति निश मे गुलज़ार छोवुम
होवनम गुल शफता लूये,
२—ऐ माशूक माशनोन
गाहतो बरमन बाज यबोन,

जोर ग्युमम दिल व दीन
गाह तो वरमन बाज बवीन,
जय रोखसार महताबा
गटि मंजि क्याह् गाह ग्यवान,
आफ ताब खोत क्या हसीन
गाह तो वरमन बाज बवीन—।

३—सदर लच् लदर माल गजरितोस फलिये
ललिये करसय सोल मत लाये,
जूनि छि शुबान विम चूनि फलिये
रंग रिवान हाव रंग बोनि तलिये,
सगविल वुछतन छस न ग्यान माये
हावेय ना दीदार हेहम मलिये,
रस रस पानस चेयन मसक गलिये
पसि तुलि खावान क्याहतु सोन पाये
ललिये करसय सोल मत लाये ॥

## अब्दुल वाहबपरे 'वाहब'

इनका जन्म ७ अगस्त १८४६ ई० में तहसील गोगोर के हाजन गाँव में हुआ था। निधन २१ दिसम्बर १९१४ ई० में हुआ। ये 'वाहब' उपनाम से कवितायें करते थे। जीवन में इन्होंने अनेक उतार-चढ़ाव देखे। ठेकेदारी से लेकर जमींदारी तक के विभिन्न धन्धे किये। कुछ अरसे तक पटवारी व नायब-तहसीलदार भी रहे। किन्तु उनका कवि-हृदय उनके व्यक्तित्व पर हमेशा हावी रहा। अत्यधिक व्यस्त रहने के उपरान्त भी वे कुछ समय निकाल कर काव्य-सर्जन करते।

वाहबपरे का कृतित्व दो कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम कोटि के अन्तर्गत उनका फारसी से कश्मीरी में रूपान्तरित साहित्य आता है। इसमें 'अकबर-नामा', 'चारदरवेश', 'बहरामगोर', गुलरानी', 'नौनिहाल-गुलबदन' 'शाहनामा' आदि रूपान्तरित काव्यकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। दूसरी कोटि के अन्तर्गत वाहबपरे का मौलिक साहित्य आता है। उनकी मौलिक कृतियों में 'हुस्न-किस्सा-ए-मदरोवन', 'हाल-किस्सा ए-आदमी' तथा 'दीवान-ए-वाहब' उल्लेखनीय है।

'अकबरनामा' इस्लामाबाद के हमीद-अल्लाह की फारसी मसनवी का कश्मीरी

रूपांतर है। इसमें २२४० छन्द हैं तथा वर्ण्य-विषय अफगानों तथा अंगरेजों के परस्पर संघर्ष पर आधारित है। 'नौनिहाल-गुलबदन' उर्दू की प्रसिद्ध प्रेमकहानी पर आधारित है। इसमें मूलकृति के कश्मीरी-रूपांतर के साथ-साथ कवि ने अपनी कुछ स्फुट कविताओं का भी समावेश किया है। 'गुलतानी' तीन भागों में है तथा इसकी छन्द-संख्या ११७५३ है। इन तीनों भागों में वली हजरत शेख मखदूम तथा उनके पाँच खलीफाओं की चरित-गाथा गाई गई है। 'शाहनामा' वाहबपरे की बहुचर्चित कृति है। यह फारसी के प्रसिद्ध कवि फिरदौसी की 'शाहनामा' का कश्मीरी-रूपांतर है। इसके चार भाग हैं। चारों की छन्द-संख्या २३४६१ है। पहले भाग में ७०१३, दूसरे में ५१०६, तीसरे मे ४७०८ तथा चौथे भाग में ६६६४ छन्द हैं। इन चारों भागों को लिखने में वाहबपरे को लगभग २० वर्ष लगे थे।[१]

वाहबपरे की मौलिक कृतियों में 'दीवान-ए-वाहब' एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ बन पड़ा है। इसमें कवि की ७८१ कवितायें संकलित हैं। इस काव्यसंग्रह में तत्कालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्थितियों का चित्रण मिलता है। कई स्थानों पर रहस्योद्भावना के संस्पर्श के साथ अत्यन्त मर्मस्पर्शी शृंगारपरक पद्य-खण्ड भी मिलते हैं। इनमें प्रेम हृदय की निस्सीम उदारता के रूप में उभरा है।

वाहबपरे ने तीन लम्बी कवितायें भी लिखी हैं। उनकी 'बेबोजनामा' तत्कालीन अव्यवस्थित राजनीति का सुन्दर खाका खींचती है। इसी प्रकार 'सैलाबनामा' में सन् १३२१ हिजरी में कश्मीर मे आई विनाशकारी बाढ़ का वृतान्त दर्ज है। 'दरवेशी' में तत्कालीन प्रसिद्ध फकीरों-दरवेशों का जीवनवृत्त उल्लिखित है। इनके कलाम के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

१—ओस बाह शय त सतय अन्दर जमान हिजरी सन
दर नजर हालात दुनियायाद छिम सारिय तन,
सन शीतस ताम जुल्मा ओस गारत बे हिसाब
कमाविम द्युन हरदुव हिस्स कारि बेगार अजाब,...

२—दोपुस माजि हा राज कन वार यव
च् कर सबर ना हक म कर टावटाव,
च् बयाह छुय वुन्य ताजकुम यूत टन्ज
गनीमत वुनिछुय यो हय अडिजि अज,
अुधान आस मोलिस वुनि दाय डल
म तुल परद केंह अमी संज आयि पख... (शाहनामा से)

३—इलाहो छुस बो बन्द छुल च् मबूद
गछि सोख्य फना त छुख च् मोजूद,

१—'वाहबपरे' मोहीउद्दीन हाजिनी, पृ० ८

कदीम ग्रोसुख त ग्रासख चय हमेशा
कदीमस इबतिदा कँह छुख न महशूद,
न कँह ग्रय कुदरतस चे इन्तहा छुय
युयुय ग्रोसक रवुयुय ग्रासख च मोमोजूद'''

१—१२७० हिजरी का समय था। मेरी नजरों के सामने से दुनिया के तमाम हालात गुजर चुके हैं। १२८० हिजरी तक जनता पर जो जुल्म-सितम हो रहा था, उसका कोई ग्रन्दाज ही नही है। बेचारे किसान को ग्रपनी फसल का ग्राधा हिस्सा मजबूर होकर सरकार को देना पड़ता था......।

२—माँ ने उसे समझाया—मेरी बात को ध्यान से सुन ग्रौर जल्दबाजी से काम न ले। तू सब्र से काम ले तथा यों बड़ी-बड़ी बातें न बना। तुझे ग्रभी से ताजतख्त की चिन्ता क्यों हो रही है, ग्रभी तो ग्रपने पिता के ककाल-सदृश शरीर को नियामत समझ। तू उनसे ग्रभी भी सलाह-मशविरा लिया कर ...... ।

३—हे मेरे प्रभु, मैं तुम्हारा बन्दा हूँ ग्रौर तुम मेरे मालिक। सारा ग्रालम भले नष्ट हो जाए किन्तु तुम्हारी हस्ती बरकरार रहेगी। तुम्हारी शान की कोई सीमा नहीं है—जैसे तुम पहले थे वैसे ही ग्राज भी हो .........

## ग्रमीरशाह क्रेरी

ये क्रेरी गाँव के रहने वाले थे। जन्म सन् १८१६ में हुग्रा था, निधन १६०५ ई० में हुग्रा। इनकी जिन रचनाग्रों का उल्लेख मिलता है, उनके नाम इस प्रकार है—

१—साक्रिन्दनामा,
२—सामनाम,
३—मनवर-ए-मुहम्मदी,
४—मीराज-ए-ग्रहमदी,
५—एजाज-ए-सरमदी,
६—जग-ए-ग्रलकम,
७—ग्रारिफ कादिरी,
८—जग-ए-मुहम्मद हनीफ दर इन्तकाम-ए-यजीद।[1]

उक्त काव्यरचनाग्रों के ग्रतिरिक्त इन्होने कुछ भक्तिगीत ग्रादि भी लिखे हैं। इनका संपूर्ण कृतित्व प्रायः धार्मिक प्रवृत्ति का है जिस पर इस्लाम-धर्म की छाप स्पष्टतया ग्रंकित है। 'सामनामा' के ग्रन्तर्गत 'जग-ए-साम बादशाह चीन' प्रसंग से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

---

१—कश्मीरी जबान ग्रौर शायरी, भाग २ पृ० ४०१

रूपांतर है। इसमें २२४० छन्द हैं तथा वर्ण्य-विषय अफ़गानों तथा अंगरेज़ों के परस्पर संघर्ष पर आधारित है। 'नोनिहाल-गुलबदन' उर्दू की प्रसिद्ध प्रेमकहानी पर आधारित है। इसमें मूलकृति के कश्मीरी-रूपांतर के साथ-साथ कवि ने अपनी कुछ स्फुट कविताओं का भी समावेश किया है। 'मुनतानी' तीन भागों में है तथा इसकी छन्द-संख्या ११०५३ है। इन तीनों भागों में वली हज़रत शेख़ मख़दूम तथा उनके पाँच खलीफ़ाओं की चरित-गाथा गाई गई है। 'शाहनामा' वाहबपरे की बहुचर्चित कृति है। यह फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी की 'शाहनामा' का कश्मीरी-रूपांतर है। इसके चार भाग हैं। चारों की छन्द-संख्या २३४६१ है। पहले भाग में ७०१३, दूसरे में ११०६, तीसरे में ४७०८ तथा चौथे भाग में ६६६४ छन्द हैं। इन चारों भागों को लिखने में वाहबपरे को लगभग २० वर्ष लगे थे।[१]

वाहबपरे की मौलिक कृतियों में 'दीवान-ए-वाहब' एक उच्चकोटि का काव्य-ग्रन्थ बन पड़ा है। इसमें कवि की ७८१ कवितायें संकलित हैं। इस काव्यसंग्रह में तत्कालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक स्थितियों का चित्रण मिलता है। कई स्थानों पर रहस्योद्भावना के संस्पर्श के साथ अत्यन्त मर्मस्पर्शी शृंगारपरक पद्य-खण्ड भी मिलते हैं। इनमें प्रेम हृदय की निस्सीम उदारता के रूप में उभरा है।

वाहबपरे ने तीन लम्बी कवितायें भी लिखी हैं। उनकी 'विवोजनामा' तत्कालीन अव्यवस्थित राजनीति का सुन्दर खाका खींचती है। इसी प्रकार 'सैलाबनामा' में सन् १३२१ हिजरी में कश्मीर में आई विनाशकारी बाढ़ का वृत्तान्त दर्ज है। 'दरवेशी' में तत्कालीन प्रसिद्ध फ़क़ीरों-दरवेशों का जीवनवृत्त उल्लिखित है। इनके कलाम के कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

१—ओस बाह शाय त सतय अन्दर ज़मान हिजरी सन
दर् नज़र हालात दुनियायाद छिम सारिय तन,
सन शीतस ताम ज़ुल्मा ओस गारत ये हिसाब
कमाविय छ्यु न हरदुव हिस्स कारि बेगार अज़ाब,...

२—दोपुस माजि हा राज़ कन वार थव
च कर सबर ना हक म कर टावटाव,
चे बयाह छुय वुन्य ताजकुय यूत दज
गनीमत ज़ुनिछ्य यो हय अडिजि कंज,
अुद्यान आस मोलिस ज़ुनि ज़ाय हत
म तुल यरद केंह अमी संज़ आयि पत...

(शाहनामा से)

३—इलाही छुस बो यम्द छुस च मज़्रूर
गछि सोज़य फना त छुस च मोज़ूर,

२—'वाहबपरे' मोहीउद्दीन हाजिनी, पृ० ८

कदीम ग्रोसुख त ग्रासख चय हमेशा
कदीमस इबतिदा कॅह छुख न महदूद,
न कॅह ग्रय कुदरतस चे इन्तहा छुम
युथुय ग्रोसक त्युथुय ग्रासख च मोमोजूद…

१—१२७० हिजरी का समय था। मेरी नजरों के सामने से दुनिया के तमाम हालात गुजर चुके हैं। १२८० हिजरी तक जनता पर जो जुल्म-सितम हो रहा था, उसका कोई अन्दाज ही नहीं है। बेचारे किसान को अपनी फसल का आधा हिस्सा मजबूर होकर सरकार को देना पड़ता था……।

२—माँ ने उसे समझाया—मेरी बात को ध्यान से सुन और जल्दबाजी से काम न ले। तू सब्र से काम ले तथा यों बड़ी-बड़ी बातें न बना। तुझे अभी से ताजतख्त की चिन्ता क्यों हो रही है, अभी तो अपने पिता के कंकाल-सदृश शरीर को नियामत समझ। तू उनसे अभी भी सलाह-मशविरा लिया कर ……।

३—हे मेरे प्रभु, मैं तुम्हारा बन्दा हूँ और तुम मेरे मालिक। सारा आलम भले नष्ट हो जाए किन्तु तुम्हारी हस्ती बरकरार रहेगी। तुम्हारी शान की कोई सीमा नहीं है—जैसे तुम पहले थे वैसे ही आज भी हो………

## अमीरशाह क्रेरी

ये क्रेरी गाँव के रहने वाले थे। जन्म सन् १८५६ में हुआ था, निधन १९०५ ई० में हुआ। इनकी जिन रचनाओं का उल्लेख मिलता है, उनके नाम इस प्रकार हैं—

१—खाविन्दनामा,
२—सामनामा,
३—अनवर-ए-मुहम्मदी,
४—मीराज-ए-अहमदी,
५—एजाज-ए-सरमदी,
६—जंग-ए-मलकम,
७—आरिफ कादिरी,
८—जंग-ए-मुहम्मद हनीफ दर इन्तकाम-ए-यजीद।[1]

उक्त काव्यरचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने कुछ भक्तिगीत आदि भी लिखे हैं। इनका संपूर्ण कृतित्व प्रायः धार्मिक प्रवृत्ति का है जिस पर इस्लाम-धर्म की छाप स्पष्टतया अंकित है। 'सामनामा' के अन्तर्गत 'जंग-ए-साम बादशाह चीन' प्रसंग से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

१—कश्मीरी जबान और शायरी, भाग २ पृ० ४०१

गुरेन खय्य सरासर सिपाह दरजमान
जमीनस श्रखलजल सुपुन बे गुमान,
जानववि लशकर सपुन बस्ति वाव
सतन ग्रासमानन व तन लरज चाव,
तुलुख शोर नक्कारा ता ग्रासमान
सपनु लरज ग्रन्दर जमीन व जमान,

बहादुर सिपाही अपने-अपने घोड़ों पर चढ़ गये। जब उनका लशकर आगे बढ़ा तो जमीन हिल गई और सारा जमाना काँप उठा—

## अब्दुल अहद नादिम

इनके पूर्वज श्रीनगर में मुहल्ला रैणावारी, मीशा में रहते थे। पिता की मृत्यु के बाद ये अपनी माताजी के साथ 'बाण्डीपोरा' गाँव चले गये। वहीं पर इनका बचपन तथा युवाकाल बीता। जीवन के अन्तिम वर्ष इन्होंने तहसील बडगाम के पास 'श्रोमपोरा' में बिताये। कहते हैं कि जब इन्होंने प्राण त्यागे तो पहले खूब रोये और फिर अल्लाह कहकर सदा के लिये आँखें बन्द कर दीं। इनका जन्म १८४० ई० में हुआ था तथा निधन १९११ ई० में हुआ।

नादिम का सारा काव्य विशुद्धतः भक्तिमूलक है। वह मूलतः इस्लाम के विभिन्न पैगम्बरों की प्रशंसा में गाये गये नातों व मनकबतों (भक्तिगीतों) पर आधारित है। इन भक्तिगीतों की संख्या १५० के करीब है। इन्होंने एक लम्बी कविता 'शहर-आशूबा' भी लिखी है। इसमें तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक विषमताओं का वर्णन है। कहा जाता है कि नादिम ने अपनी पहली स्वरचित नात (नम्रत) बारह वर्ष की आयु में गायी थी। इस नम्रत का पहला छंद इस प्रकार है—

ग्ररबी शाहा मदनी माहा
ग्रसि गोछ गटि मन्ज गाहा चोन
माहा तारीफ, चोनुय ताहा,
ग्रसि गोछ गटि मंज गाहा चोन ॥

ऐ ग्ररब के बादशाह, ऐ मदीने के मालिक, ग्रा और मेरी ग्रन्धेरी रात में उजाला कर।

## महाब खार

ये तहसील पुलवामा में गिंद गांव के रहने वाले थे। जाति के लोहार थे। इसी 'खार'[1] नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म सन् १८४२ ई० में हुआ था, जिस

---

[1] 'खार' कश्मीरी में लोहार को कहते हैं।

सत्तर वर्ष की आयु में १६१२ ई० में हुआ।[1] कहा जाता है कि इनके पिता हाजनी आहंगर भी कवितायें करते थे।

महाब खार में मस्ती और भावुकता कूट-कूट कर भरी हुई थी। आज़ाद ने उनके भव्य व्यक्तित्व के सम्बन्ध में लिखा है—"खुद सारंग और रबाब बजाते थे। कद्दावर थे, आँखों में रोब व चमक थी। गलों का हलका वसीह था। दूर-नज़दीक से लोग ख़िदमत में आ जाते। इनकी मशहूरी को सुन राजा अमरसिंह ने तीन सौ रुपये नक़द और सवारी के लिए घोड़ा इन्हें पेश किया था।"[2]

महाबखार ने मुख्यतया रहस्यवादी कविताएं लिखी हैं। इनकी लोकगीत शैली में लिखी 'तोता' शीर्षक कविता काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इनकी एक अन्य कविता 'बोम्बरस माग नेन्द्र छम' से एक पद्यांश प्रस्तुत है—

मैम्बरअस प्याल ह्यथ प्रारान छस
बोम्बरस माग नेन्द्र छम,
फिकरि छा किम छु कुनि बेगम
बोम्बरस माग नेन्द्र छम,
। ।
अम्य अश्कन लायनम सन
आश लर हो गयम हन हन
यारा विसना याकसा न कम
।
माल्य अश्कन हविस छम.........।

नरगिस रस का प्याला लिए खड़ी हुई है और भौंरा न जाने कहां पर खो गया है। इश्क ने मेरा दिल चोरी कर लिया है तथा मेरा अंग-अंग छिन्न-भिन्न पड़ गया है। वह निर्दयी एक बार आ जाता तथा मेरे दुखड़े को सुन लेता...।

असद परे

इनका जन्म हाजन गांव में १८६२ में हुआ था। निधन सन् १६३० ई० में हुआ।

असद परे ने कुछ स्फुट कविताएं लिखी हैं जिन्हें प्रो० मोहीउद्दीन हाजिनी ने तीन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के अन्तर्गत सम्पादित किया है। इनकी कविताओं में सूफी दर्शन की छाप स्पष्ट है। इनकी एक कविता से कुछ अंश नमूने के तौर पर प्रस्तुत है—

१—यमो कमदास प्याल चोवनम
हुनाम कुद्योवनम न लो लो,

---

१—सूफी शायर, भाग ३ पृ० ८३
२—'कश्मीरी ज़बान और शायरी' भाग ३, पृ० १२६

प्यालय चोवनस त मालय दोवनस
फ़ेशवुन सोति योवनस त सो लो······

२—चोवनस नार नागु्क मसमय
व रस रसय कोरनस तैयार,
जुव जान कल पान वन्दसाकसय
व रस रसय कोरनस तैयार.······

१—साकी ने मुझे जाम पिलाया और मैंने एक नयी दुनिया देख ली। जाम पिलाकर उसने मुझे दीवाना कर दिया और यह दीवानगी बढ़ती ही जा रही है।

२—साकी ने मुझे अमृत रस पिला दिया और मैं दीवानगी के आलम में धीरे-धीरे खो गया। उस साकी पर यह जान, सिर और शरीर कुर्बान करूं, उसने मुझे एक नई दुनिया दिखलाई।

## पीर मोही-अलद्दीन 'मिसकीन'

ये तहसील कुलगाम के रहने वाले थे। 'मिसकीन' उपनाम से कविताएँ करते थे। इनका जन्मकाल अविदित है, निधन सन १९१५ ई० में हुआ बताया जाता है।[1]

'मिसकीन' की निम्नलिखित काव्य-रचनाओं का उल्लेख मिलता है:—

१—ज़ेबा-निगार,
२—सोहणी-महिवाल,
३—लैलामजनूँ,
४—हीर राँझा,
५—चन्द्र बदन।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'मिसकीन' ने कुछ स्फुट कवितायें भी की हैं। फ़ारसी में भी शेर कहते थे। कश्मीरी में रचित इनकी एक कविता नीचे दी जा रही है—

सोल धाने द्रस यो रिवान — जान वन्दयो मदनो
लदि नार चोलयम पान — आति मोचु गुल्वरे
मदि नो मे पारय जान — जान वन्दयो मदनो
अदयकुन काल — गयम शिगरस पार

[1] 'कश्मीरी', श्री जे० एल० कौल, पृ० ७४

| | |
|---|---|
| कथ लोगुय ना इन्सान | जान वन्दयो मदनो |
| छुम मे जिगरस बड़ अरमान | घ त बो कर मेलव |
| अश्क दादिस वनिदरमान | जान वन्दयो मदनो |
| वरम दुनिया दोहतारजान | मशरोवयन मिसकीन |
| कात्य आखिर गछि फान | जान वन्दयो मदनो ॥ |

तेरी मुहब्बत में मैं रो रही हूँ, रे महबूब तुझ पर बलिहारी जाऊँ । तेरे विछोह में आग की तरह जल रही हूँ किन्तु तेरी याद भुलायी नहीं जाती । मेरे सीने में तेरे इश्क का तीर समा गया है तथा जिगर छलनी हो गया है । तू क्यों बेरहमी दिखा रहा है । मेरे दिल में यह अरमान है कि हम दोनों कब एक हो जायें और यह इश्क की आग ठण्डी हो जाये । दुनिया नश्वर है, रे महबूब, अपने 'मिसकीन' को यों न भुला ।

## अहमद बटवारी

ये बटवोर, श्रीनगर में १८४५ ई० में पैदा हुए और १९१० ई० में वफात पा गए । इनका अधिकांश समय सूफी सन्तों की संगत में बीता । सांसारिकता में इनकी रुचि बहुत कम थी ।

अहमद बटवारी की कुछ स्फुट कवितायें मिलती हैं जिनमें उनकी रहस्यवादी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म हो उठी है । उनकी 'दर्शन जानम तन,' 'ह्यूटुम बेद नय,' 'यि वायू ग्रालव गव,' 'जान छम जहानस सात्य', 'मोन म्योन सालम द्राव' आदि उच्च-कोटि की रहस्यवादी कवितायें बन पड़ी हैं । इनकी 'नय' (बीणा) शीर्षक कविता में सूफी दर्शन के विभिन्न प्रतीकों की सुन्दर संयोजना हुई है ।

अहमद बटवारी के कलाम का एक नमूना प्रस्तुत है—

मजलूनन्य साल महारेनिये
दूबवनिये दस,
अहक शान्य नाम नात्य गरदनिये
दूबवनिये दस,
अश्क तम्बलोवयन हुस्न परिये
चूनि अर्थ छेरिए,
दस ब मरदन सात्य दुनअवे
दूबवनिए दस,

ध्यालय चोवनस त नालय दोवनस
श्रेशवुन लोति श्रोवनस त लो लो······
२—चोवनस नार नागुक मसश्रय
ब रस रसय कोरनस तैयार,
जुव जान कल पान यन्दसाकसय
ब रस रसय कोरनस तैयार.······

१—साकी ने मुझे जाम पिलाया और मैंने एक नयी दुनिया देख ली। जाम पिलाकर उसने मुझे दीवाना कर दिया और यह दीवानगी बढ़ती ही जा रही है।

२—साकी ने मुझे अमृत रस पिला दिया और मैं दीवानगी के आलम में धीरे-धीरे खो गया। उस साकी पर यह जान, सिर और शरीर कुर्बान करूँ, उसने मुझे एक नई दुनिया दिखलाई।

## पीर मोही-अलद्दीन 'मिसकीन'

ये तहसील कुलगाम के रहने वाले थे। 'मिसकीन' उपनाम से कविताएँ करते थे। इनका जन्मकाल अविदित है, निधन सन १९१५ ई० में हुआ बताया जाता है।[1]

'मिसकीन' की निम्नलिखित काव्य-रचनाओं का उल्लेख मिलता है:—

१—जेबा-निगार,
२—सोहणी-महिवाल,
३—लैलामजनूँ,
४—हीर रांझा,
५—चन्द्र बदन।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'मिसकीन' ने कुछ स्फुट कवितायें भी की हैं। फारसी में भी शेर कहते थे। कश्मीरी में रचित इनकी एक कविता नीचे दी जा रही है—

| | |
|---|---|
| लोल याने दस यो रिवान | जान यन्दयो मइनो |
| लगि नार खोलयम पान | आशि मोय़ु सुन्दरे |
| मशि नो मे पार्‌य खान | जान यन्दयो मइनो |
| चाम सोनस श्रदयकुन काल | गयम जिगरस यार |

1. 'स्टडीज इन कश्मीरी', श्री जे० एल० कौल, पृ० ७४

| | |
|---|---|
| कय लोगुय ना इन्सान | जान वन्दयो मदनो |
| छुम मे जिगरस बड़ अरमान | च त बो कर मेलव |
| अश्क दादिस बनिदरमान | जान वन्दयो मदनो |
| दरम दुनिया दोहतारज़ान | मशरोवथन मिसकीन |
| काल्य आखिर गछि फान | जान वन्दयो बदनो ।। |

तेरी मुहब्बत मे मैं रो रही हूँ, रे महबूब तुझ पर बलिहारी जाऊँ । तेरे बिछोह में आग की तरह जल रही हूँ किन्तु तेरी याद भुलायी नहीं जाती । मेरे सीने में तेरे इश्क का तीर समा गया है तथा जिगर छलनी हो गया है । तू क्यों बेरहमी दिखा रहा है । मेरे दिल में यह अरमान है कि हम दोनों कब एक हो जायें और यह इश्क की आग ठण्डी हो जाये । दुनिया नश्वर है, रे महबूब, अपने 'मिसकीन' को यो न भुला ।

## अहमद बटवारी

ये बटवोर, श्रीनगर में १८४५ ई० में पैदा हुए और १९१० ई० मे वफात पा गए । इनका अधिकांश समय सूफी सन्तों की संगत मे बीता । सासारिकता मे इनकी रुचि बहुत कम थी ।

अहमद बटवारी की कुछ स्फुट कवितायें मिलती हैं जिनमें उनकी रहस्यवादी दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म हो उठी है । उनकी 'दर्दन जाजनम तन,' 'ड्यूठुम केह नय,' 'यि कत्यू आलव गव,' 'जान छम जहानस सात्य', 'मोत म्योन सालस द्राव' आदि उच्च-कोटि की रहस्यवादी कवितायें बन पड़ी हैं । इनकी 'नय' (बीणा) शीर्षक कविता में सूफी दर्शन के विभिन्न प्रतीकों की सुन्दर संयोजना हुई है ।

अहमद बटवारी के कलाम का एक नमूना प्रस्तुत है—

मजनूनन्य लाल महारेनिये
मूबवनिये छल,
जुल्फ वान्य शाम नाल्य गरइनिये
मूबवनिये छल,

अश्क सम्बलोवथन हुस्न परिये
यूनि जर्म बेरिए,

छल च

प्यालय चोवनस त नालय दोवनस
फेशवुन तोति चोवनस त लो लो……
२—चोवनस नार नागुक मसग्रय
ब रस रसय कोरनस तैयार,
जुव जान कल पान वन्दसाकसय
ब रस रसय कोरनस तैयार.……

१—साकी ने मुझे जाम पिलाया और मैंने एक नयी दुनिया देख ली। जाम पिलाकर उसने मुझे दीवाना कर दिया और यह दीवानगी बढ़ती ही जा रही है।

२—साकी ने मुझे अमृत रस पिला दिया और मैं दीवानगी के आलम में धीरे-धीरे खो गया। उस साकी पर यह जान, सिर और शरीर कुर्बान करूँ, उसने मुझे एक नई दुनिया दिखलाई।

## पीर मोही-अलद्दीन 'मिसकीन'

ये तहसील कुलगाम के रहने वाले थे। 'मिसकीन' उपनाम से कविताएँ करते थे। इनका जन्मकाल अविदित है, निधन सन १९१५ ई० में हुआ बताया जाता है।[1]

'मिसकीन' की निम्नलिखित काव्य-रचनाओं का उल्लेख मिलता है:—

१—जेबा-निगार,
२—सोहणी-महिवाल,
३—लैलामजनूं,
४—हीर राँझा,
५—चन्द्र बदन।

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त 'मिसकीन' ने कुछ स्फुट कविताएँ भी की हैं। फारसी में भी शेर कहते थे। कश्मीरी में रचित इनकी एक कविता नीचे दी जा रही है—

| | |
|---|---|
| सोल चामे छस बो रिवान | जान वन्दयो मदनो |
| सशि नार जोलयम पान | आति मीच गुल्दरे |
| मशि नो मे पारय जान | जान वन्दयो मदनो |
| चाम सोमस अदयकुन काल | गयम जिगरस पार |

1. 'स्टडीज इन कश्मीरी', श्री जे० एल० कौल, पृ० ७४

## वाज़ू महमूद

ये श्रीनगर के मुहल्ला नवाब बाज़ार में रहते थे। इनका जन्म १८३४ ई० में हुआ था, निधन १९२४ ई० में हुआ।

वाज़ू महमूद की कवितायें अन्य सूफ़ी शायरों की तुलना में कला की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध हैं। इनमें मात्राओं तथा लय का सफलतापूर्वक निर्वाह मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> मति लाल जरयो, वलो गूर गूर करयो
> यरि हिन्दी गुलाबो, बारिस्यानि कोलस्रो
> कब्ड़ेन प्यठ बरिय दोहो, वलो गूर गूर करयो
> रोप रोनि अञ्जोलुय, शोनदार मञ्जोलुयो
> चन्दनुक छु गरयो, वलो गूर गूर करयो……
>
> आश छुम चान्य बाग़न्द यारो,
> गाश चश्मन हुन्द हर दिमयो,
> वती व्योन छु्य वर शहर खतनो
> कतनस अयसन वर दिमयो
> कामदेव यारो थामो अशक वर
> जामन रंग लाजवोर दिमयो,
> अशकनि नार वनान वाज़ु महमूद
> वर तल चाने सर दिमयो।

## कृष्ण राज़दान

इनका जन्म अनन्तनाग ज़िले के वनपोह नामक गाँव में सन् १८५० ई० हुआ था, निधन १९२५ ई० में हुआ। ये अपने समय के माने हुए योगी थे। संस्कृत भाषा और शैवदर्शन के पण्डित थे। धार्मिक शिक्षा उन्होंने कश्मीर के तत्कालीन सुविख्यात तत्वचिन्तक पं० मुकुन्दराम शास्त्री से प्राप्त की थी।

कृष्ण राज़दान की दो काव्य रचनाओं का उल्लेख मिलता है— १—शिव परिणय और २—शिव लग्न। इन दो रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने कुछ भक्तिगीत भी लिखे हैं जिनका मुख्य विषय धर्म, दर्शन और भक्ति है। कृष्ण राज़दान इन्द्रियदमन अथवा इन्द्रिय-निग्रह की अपेक्षा मन की शुद्धता पर ज़ोर देते हैं। प्रवृत्ति से निवृत्ति को प्राप्त करना—यही उनकी कविताओं का मूल संदेश है। भाषागत दृष्टि से कृष्ण राज़दान का काव्य अत्यन्त समृद्ध है। उन्होंने विभिन्न रहस्यात्मक प्रसंगों को सरल भाषा शैली में प्रसिद्ध-प्रचलित बिम्बों द्वारा सफलतापूर्वक वर्णित किया है। इनके

भरबी भौर फारसी का इन्हें अच्छा ज्ञान था। यह ज्ञान उन्होंने सैयद मुहम्मदशाह इन्दराबी भौर मौलवी सलामुद्दीन नक्वी से प्राप्त किया था।

पीर भजीजभल्लाह हक़ानी सम्भवतः कश्मीर के एक ऐसे कवि हैं जो सबसे ज्यादा घुमक्कड़ रहे हैं। लद्दाखमें लगभग तीन वर्षों तक रहे भौर यहाँ बौद्ध-धर्म के मूल-भूत सिद्धान्तों से भवगत हुए। किश्तवाड़ तीन बार गये भौर यहाँ पर विभिन्न संगीतज्ञों के सम्पर्क में भाकर संगीतकला सीख ली। इसी प्रकार यारकन्द, सीकयांग, बम्बई, सूरत, दिल्ली, लाहौर भादि स्थानों में भी घूमे। लाहौर में दातागंज बख्श के मज़ार पर साढ़े चार वर्ष बिताये। इनका स्वभाव भत्यन्त मृदुल था। धीमी गति से बोलते तथा परोपकार में सदैव तत्पर रहते। संगीतकला से विशेष लगाव के कारण ये विभिन्न संगीत समारोहों, महफिलों भादि में उत्साह के साथ भाग लेते। प्रायः भपने ही घर महफिलें जमाते।

हक़ानी की निम्नलिखित काव्यकृतियों का उल्लेख मिलता है—

१—जोहर-ए-इश्क
२—किस्सा-ए-मुमताज बेनजीर
३—गुलदस्त-ए-बेनजीर
४—गुलबदन-इश्क
५—जंग-ए-इराक
६—किस्सा-ए-दुग्रनान

'जोहर-ए-इश्क, में जहाँदरशाह भौर बहरावर बानू की प्रेमकहानी तीन भागों में कही गई है। 'किस्सा-ए-मुमताज बेनजीर' भौर 'गुलदस्त-ए-बेनजीर' में मुनीर भादि की प्रेमकथायें हैं। 'गुलबदन-इश्क' 'जंग-ए-इराक' भौर 'किस्सा-ए-दुग्रनान' फारसी मसनवियों पर भाधारित हैं। हक़ानी ने कुछ लम्बी कविताएँ भी लिखी हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं—'सैलाबनामा,' 'भातिशनामा,' 'बहारनामा,' 'दरवेशनामा,' 'भाशूबनामा' भादि। 'सैलाबनामा' में बाढ़ का वर्णन, 'भातिशनामा' में भाग का वर्णन, 'बहारनामा' में बहार के भागमन का वर्णन तथा 'दरवेशनामा' में तत्कालीन कश्मीरी दरवेशों का वर्णन है। हक़ानी ने स्फुट कविताएँ भी लिखी हैं जो 'दीवान-ए-हक़ानी' के भन्तर्गत हैं। इन कविताओं में प्रेमतत्व की चर्चा भनुभवपूर्ण ढंग से मिलती है। इनके कलाम के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं—

१— जान भश्यकिन छुनु भासानय
जान बन्दयो हा जानानय,
परान सोरेम चाग्य भरमानय
जान बंदयो हा जानानय।
सारि दिल गोमयार बेमार

आर गम हाय योन्य कोत तार
कारि पत्य छि आरि पेचानय
जान वन्दयो हा जानानय।......

२— सोज़ प्रकुन बोज़ वन्य हारि
लोल नारि कोरनम सूर
विल यारस वनना जारी
लोल नारि कोरनम सूर।
दाद्य दितनम अम्य जादूगारी
मस खास्य चश्म मख़मूर
होल तफ छुम लोल बीमारी
लोल नारि कोरनम सूर......।

३— आशक बसोय दिलबर आव अज़ गरे मुबारक
रोश्त शाहान दरबार कोर सोन्दरे मुबारक
छ़ तव जल बालि यारुय फल्य पोश नवबहारय
दिल आशकन चोपारय गव बाबर मुबारक......

## असद मीर

ये सन् १८७७ ई० में इस्लामाबाद तहसील के एक गाँव हाकूरा (बदसगाम) में पैदा हुये थे। इनका निधन-काल सन् १९२८ ई० बताया जाता है।[१]

असद मीर ने बीस वर्ष की आयु से ही कवितायें करनी शुरू की थी। प्रारम्भ में इन्होंने गज़लें लिखीं और बाद में कुछ मसनवियों की रचना की। किन्तु गज़लों की तुलना में मसनवियाँ उतनी सुन्दर नहीं बन पड़ी हैं। इनकी गज़लों का मुख्य वर्ण्य विषय लौकिक-प्रेम चित्रण है। कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

१— सूज़िथ चुव त रुज़िथ दूरि
कवय चूरि म्यूनम दिल
ललवुन नार योवनम मूरि
कवय चूरि म्यूनम दिल
दप्यतोस खोर साया मूरि
राथा रोज़ि मुकाबिल

१. काशिर शायरी, पृ० १५१

हुरिठुय रय ब बन्वमय दूरि
कवय चूरि ग्यूनम दिल······।

२— माह दक्सार शुरमुतुय कूर्यठुतुय गोम
ज़ाह ति यर कर श्राव मोतुय कूर्यठुतुय गोम
शीन सोल डुग रव प्रोतुय सीन वन्दहस बो
कौन श्राविथ गोम् मे म्युतुय कूर्यठुतुय गोम······

मैंने महबूब को अपनी जान हाज़िर की थी, किन्तु वह निठुर न जाने क्यों दूर-दूर भाग रहा है। विरहाग्नि में मैं झुलस रही हूँ। काश, वह एक रात मेरे साथ बिताता। उस निर्दयी पर मैं तो अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हूँ किन्तु वह मुझसे दूर-दूर भाग रहा है।

न जाने मेरा रंगीला महबूब किस ओर निकल गया है। वह तो कहीं नहीं जाता था, आज न जाने कहाँ चला गया। कितना अच्छा हो यदि वह मुझे भी साथ ले जाता······।

## मुहम्मद इस्माइल नामी

ये श्रीनगर के मुहल्ला फावडोरा के रहने वाले थे। सन् १८८४ ई० में पैदा हुए थे तथा १९४० ई० में इस दुनिया से रुख़सत हुए। 'नामी' इनका उपनाम था और इसी नाम से कवितायें करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने कश्मीर के तत्कालीन प्रसिद्ध सूफी सन्त बुज़ुर्ग साहब से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि 'नामी' साहब प्रत्येक साल व्यवसाय हेतु तिब्बत जाते और वहाँ पर कश्मीरी माल बेचते। अपनी तिब्बत यात्राओं का वर्णन इन्होंने फारसी में रचित एक लम्बी कविता में किया है।

'नामी' ने जो कुछ भी लिखा उस पर अरबी-फारसी का अत्यधिक प्रभाव है जिससे मूल कश्मीरी पाठ दब-से गए हैं। यह प्रभाव उनकी दोनों 'किस्सा-ए-शीरीं ख़ुसरो' तथा 'सफर नामा तिब्बत' में दृष्टिगत होता है। इनके कलाम से एक नमूना उद्धृत किया जाता है—

तुलुन थोद बुरक बा नाज़ो करिश्म
दिदर ज़नबीठ्य बर बालाए चश्म,
लिबास अज़ तन कोडुन उरियाँ करुन पान
यहेमियत करन्य काकल परेशान,
दर आब चश्म वछ उरिया सो महताब
आब व ताब ज़न महताब दर आब,
गयस तन नार मशल हिश नमूदार
दरदन आब ज़न आवस ह्योतुन नार······।

## मुहम्मद इलयास

ये बड़गाम तहसील के चार कस्बे में रहते थे। अपने जन्म स्थान के सम्बन्ध में इन्होंने स्वय एक स्थान पर लिखा—

मे मिस्कीन आःसेस इलयास छुम नाम।
असान दर च़ार छुस तहसील बड़गाम॥

मुझ अकिंचन् का नाम इलयास है और मैं च़ार (बड़गाम तहसील) में रहता हूँ।

इलियास के पिता का नाम हाजी महमद था। इलयास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से ही मिली और उन्हीं ने अरबी-फारसी का यथेष्ट ज्ञान इन्हें कराया। इलयास काफी समय तक अपने गाँव मे ही पटवारी के पद पर काम करते रहे। इनका जन्म सन् १८८१ ई० में हुआ था, निधन १९३८ ई० में हुआ।

इलयास की शायरी के प्रारम्भिक दौर में यौवन की मस्ती तथा तथा प्रेम की उत्फुल्लता का वर्णन मिलता है। शृंगार का लौकिक पक्ष इनकी शायरी में अधिक उभरा है। आज़ाद ने अपनी पुस्तक मे एक घटना का उल्लेख किया है जिससे इलयास की वस्तुपरक सौन्दर्य-दृष्टि का भान हो जाता है। इलयास साहब से किसी ने निवेदन किया—कोई ऐसा शेर सुनाइए जिसमें माशूक की आँखों का ऐसा वर्णन हो कि दिल झूम उठे। इलयास ने तुरन्त उत्तर दिया—भाई, माशूक सामने हो तो कुछ कहें, अन्यथा यों ही क्या कह सकते हैं।[1] इलयास यौवनोल्लास के मदभरे गीत अधिक समय तक गा न पाए। भरी जवानी मे पुत्र की मौत ने उन्हें एकदम विरक्त एवं अन्तर्मुखी बना दिया। पुत्र मरण के आघात को वे सहन न कर पाए। जीवन के आखिरी भाग में दिल के दर्द को हलका करने के लिए उन्होंने भक्तिगीत लिखे। पुत्र-मरण पर दो-एक शोकगीत भी लिखे जो काफी लोकप्रिय हुए।

इलयास की निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख मिलता है—

१. किस्सा-ए-मुमताज़ बेनज़ीर।
२. खंजर-ए-इश्क।
३. मकर-ए-ज़न।
४. स्फुट गीत और ग़ज़लें।

'किस्सा-ए

मनिका

है।[1] निधनकाल (१९४६ ई०) के सम्बन्ध में दोनों विद्वान एकमत हैं। दरवेश अब्दुल कादिर चूंकि २६ वर्षों तक सरकारी नौकरी करते रहे और १८-२० वर्ष की आयु से पहले सरकारी नौकरी में, प्रविष्ट होना सम्भव नहीं है अतः आज़ाद द्वारा दिया जन्मकाल अधिक सगत लगता है।

दरवेश साहब ने मुख्यतया स्फुट कवितायें ही लिखी हैं जिनमें पहली बार प्रेमवर्णन के साथ-साथ जन-जागरण के स्वर गूंजते मिलते हैं। वस्तुतः इन्हीं से कश्मीरी कविता एक नया मोड लेती दिखाई पड़ती है। उसमें अब अतीन्द्रिय एवं लौकिक प्रेम-वर्णन के स्थान पर जीवन की ठोस समस्याओं तथा जन-जागृति व प्रगतिशील मनो-भावों के दर्शन होते हैं।

दरवेश अब्दुल कादिर की कुछ पंक्तियाँ देखिए—

तचर छुम जोश छुम सोतुक अचर छुम दोद बावुन छुम
सन्थोमुत दाग छुम मंज़बाग सोनस सुय मे हावुन छुम
बो ओसुस गुलिस्तानुक गुल मे वुछवुछ ओस लोश बुलबुल
फर्‌म मस्ती खबर रज़म न कावन वयुत यि यावुन छुम
वुन्युसताम मे अज खामी गुलामी कर अना कामी
छ शादी जाम आज़ादी पनुन तय पर मे चावुन छुम
हेयन कम कम गछन सरदी बुयिस चलि सोंतन्य ज़र्दी
निशातस दार ह्योन छुम शालमारुक बाग छावुन छुम……

मेरा खून गर्म है तथा जवानी जोशीली है। मेरे दिल पर जो दाग ज़माने ने लगाये हैं उन्हें दुनिया को दिखाना है। अभी तक मैं आज़ादी की नियामत से बेखबर था, अब मुझे उसकी महिमा का पता लग गया है। इस आज़ादी का सन्देश मुझे अपने और पराये दोनों को देना है। अब धीरे-धीरे जाड़े की सर्दी दूर हो रही है तथा गरमी आ रही है। इससे मुझे लग रहा है कि मेरा लक्ष्य भी मेरे निकट आ रहा है……।

## गुलाम अहमद 'महजूर'

इनका जन्म श्रीनगर से २५ मील दूर पुलवामा तहसील के मित्रीगोम नामक गाँव में ३ दिसम्बर १८८५ ई० को एक पीर घराने में हुआ था। इनके पिता का नाम पीर अब्दुल शाह तथा माता का नाम सईदा बेगम था। जब 'महजूर' दो साल के हुए तो उनकी माता इस दुनिया से चल बसी। पिता ने अपने इकलौते बेटे की शिक्षा-दीक्षा में कोई कमी न रखी। पीर अब्दुल शाह स्वयं फारसी के अच्छे विद्वान थे। उन्होंने 'महजूर' को घर पर ही शिक्षा देनी शुरू की। प्रारम्भिक शिक्षा ले लेने के बाद 'महजूर' को काव गाँव के प्रसिद्ध मौलवी आखून अब्दुल अली गनाई 'मायिल'

---

१. कासिर शायरी, पृ० १६२

के पास आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा गया। उस समय 'महजूर' की आयु १३ वर्ष की थी। 'महजूर' कुछ ही वर्षों में अरबी-फारसी में पारंगत हो गए। अरबी-फारसी सीख लेने के पश्चात् 'महजूर' को उर्दू भाषा व साहित्य का अध्ययन करने का शौक हुआ। मुहम्मद हुसैन शाह के सम्पर्क में आकर उन्होंने उर्दू का अच्छा-खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से वे १९०४ ई० में अमृतसर आये और वहाँ उन्हें मौलाना बिस्मिल से मिलने का सुअवसर प्राप्त हुआ। मौलाना बिस्मिल की उस समय देश के उच्चकोटि की उर्दू और फारसी शायरों में गिनती होती थी। 'महजूर' की प्रखर प्रतिभा से वे प्रभावित हुए और उन्हें पढ़ाई-लिखाई जारी रखने की सत्प्रेरणा दी। दो वर्ष बाद 'महजूर' अपने वतन लौट आए और उनका विवाह हुआ। काम-धन्धे की तलाश में इधर-उधर भटकते रहे। पिता की इच्छा थी कि उनका पुत्र भी पीरमुरीदी, जो उनका परंपरागत व्यवसाय था, अपनाये। किन्तु 'महजूर' औरों के सामने हाथ पसारने के बजाय अपनी मेहनत से दो पैसे कमाना उचित समझते थे। इन्हीं दिनों चौधरी खुशीमुहम्मद, बन्दोबस्त अधिकारी बलूचिस्तान, कश्मीर आये। उन्हें अपने विभाग के लिए कर्मचारियों की ज़रूरत थी। 'महजूर' को नौकरी मिल गई। नौकरी करने उन्हें लद्दाख पैदल जाना पड़ा। इसी बीच उनके पिता चल बसे। 'महजूर' छुट्टी लेकर घर आये। वे और छुट्टी लेना चाहते थे किन्तु अधिकारियों ने अतिरिक्त अवकाश स्वीकृत नहीं किया और उन्हें सेवा से मुक्त कर दिया गया। 'महजूर' को नौकरी के लिए पुनः हाथ-पाँव मारने पड़े। अथक प्रयत्नों के बाद वे कश्मीर राज्य के राजस्व विभाग में नियुक्त हो गए और अन्त समय तक पटवारी पद पर रहे। राजकीय सेवा से निवृत्त होने के बाद उन्हें १०० रुपए प्रति मास की सहायता दी जाने लगी। भाग्य की विडम्बना! 'महजूर' ने अभी इस सहायता की प्रथम किस्त ही ली थी कि वे इस संसार से चल बसे। २३ दिसम्बर १९५० को श्रीनगर के प्रदर्शनी-भवन में उनकी ६०वीं वर्षगाँठ 'महजूर-दिवस' के नाम से मनाई गई थी। उत्फुल्ल मन से उन्होंने जनता को सम्बोधित किया था—'मैं अपनी आँखों से अपने बाग़ को शिगूफ़ों से मालामाल देख रहा हूँ। मैंने जो *काम आज से तीस वर्ष पहले शुरू किया था, उसे आगे ले जाने वालों की आज कमी नहीं* रही।'[1] कौन जानता था कि दो वर्ष बाद ही वे अपना बोझ नयी पीढ़ी के कन्धों पर छोड़कर चल देंगे। ९ अप्रैल १९५२ को 'महजूर' का देहावसान हो गया। उनके जनाज़े को पूर्ण राजकीय सम्मान के साथ *'पांद्रेठन' ले जाया गया, जहाँ* उन्हें सुपुर्द-खाक करने से पूर्व इक्कीस तोपों की सलामी दी गई। इससे पहले कश्मीर के किसी भी शायर को ऐसा सम्मान नहीं मिला था। 'महजूर' के नाम पर पुलवामा के हाई स्कूल का नाम 'महजूर मेमोरियल हाई स्कूल' रखा गया।

*'महजूर की काव्य-प्रतिभा उनके बचपन से* विकासोन्मुखी रही। १९०५ ई०

---

१. 'महजूर' श्री पृथ्वीनाथ पुष्प पृष्ठ, ६

से उन्होंने 'महजूर' उपनाम से शायरी करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १९०१ के प्रारम्भ में जब 'महजूर' अमृतसर आए और मौलाना बिस्मिल से मिले तो बिसमिल ने 'महजूर' का परिचय उस समय के प्रसिद्ध फारसी कवि मौलाना शिबली नागमानी से कराया—यह नौजवान निहायत खुश-मिज़ाज और प्रतिभाशाली। कश्मीर का रहने वाला है। फारसी अदब का शौकीन है और इस जबान में शेर भी कहता है। तखल्लुस 'महजूर' है। मौलाना 'महजूर' का कुछ फारसी कलाम सुनकर बहुत खुश हुए और फरमाया—'बरखुरदार, आप किससे महजूर है। 'महजूर' ने उत्तर दिया—हज़रत अपने वतन कश्मीर से।' मौलाना ने पुनः प्रश्न किया—'अच्छा, जब आप अपने वतन वापिस जायेंगे तो क्या अपना तखल्लुस तबदील कर लेंगे।' महजूर ने कहा—'नहीं, तबदील नहीं करूंगा।' मौलाना ने फिर पूछा—'क्यों, वहाँ आप किससे महजूर होंगे।' 'महजूर' के मुख से अनायास निकल पड़ा—'हज़रत, आप से।' मौलाना को 'महजूर' का यह उत्तर बहुत पसन्द आया। उन्होंने 'महजूर' को आशीर्वाद दिया कि खुदा तुम्हारे कलाम को तासीर बख्शे।'

सन् १९११ तक 'महजूर' फारसी में कवितायें करते रहे। इसके बाद जब उन्होंने देखा कि फारसी का प्रभाव दिनोदिन घटता जा रहा है और उर्दू उसका स्थान ले रही है तो उन्होंने उर्दू में भी शेर कहना शुरू कर दिया। १९११ ई० के प्रारम्भ मे 'महजूर' पुनः पंजाब आये और यहाँ उन्हें अमृतसर से लुधियाना जाना पड़ा। उन्हीं दिनों लुधियाना में एक अंजुमन बजम-ए-अदब के नाम से हजरत आफत लुधियानवी के नेतृत्व में कार्यरत थी। यह अंजुमन हर पन्द्रह दिन बाद एक मुशायरा करवाती थी। 'महजूर' को भी इस मुशायरे मे भाग लेने के लिए निमन्त्रण दिया गया। 'महजूर' ने मुशायरे में उर्दू की जो गजल सुनाई, उसकी प्रथम दो पंक्तियाँ इस प्रकार थीं:—

'उजड़े गारों में रहा करते हैं रहज़न छुप के
दिले-मुज़तर में ही दिलबर का कयाम अच्छा है।'

गज़ल को सुनकर श्रोतागण झूम उठे और 'महजूर' की खूब वाह-वाही हुई। सन् १९१८ तक 'महजूर' उर्दू मे कविताएँ करते रहे। उर्दू के प्रसिद्ध शायर इकबाल से उन्होंने पत्र व्यवहार करके कई प्रकार के निर्देश भी प्राप्त किए।

सन् १९२६ के मौसिम बहार मे एक दिन 'महजूर' अपने गाँव में चिनारों की घनी छाया के नीचे सुस्ता रहे थे। तभी उन्हे दूर से एक कश्मीरी गाने की मीठी धुन सुनाई पड़ी। कुछ देहाती औरतें जंगल में लकड़ियाँ काटने जा रही थी और प्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री हब्बाखातून की ये पंक्तियाँ गा रही थी—

दिल निश मे रोटयम गोशाय
वलो ब्यानि पोशे मदनो.........

मेरा दिल चुराकर तू यों न जा। रे मेरे प्यारे साजन, तू यों रूठकर न जा। 'महजूर' इस सुरीले गीत को सुनकर झूम उठे। कश्मीरी कविता की भावप्रवणता

तथा सरसता के प्रति उनका आदरभाव बढ़ गया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब वे उर्दू में कविताएँ न करके कश्मीरी में ही किया करेंगे। उनकी पहली कश्मीरी कविता 'पोशि मति जानानो' को तत्कालीन जन-समाज ने खूब पसन्द किया।

१९२७ में श्री देवेन्द्रसत्यार्थी कश्मीर आए। एक दिन वे वेरीनाग के जंगलों में घूम रहे थे। उनके कानों में एक निहायत सुरीले गीत की धुन पड़ी। छोटे-छोटे ग्वालबाल गा रहे थे—पोशि मति जानानो…। सत्यार्थी जी को इस गीत की धुन ने बहुत प्रभावित किया। श्रीनगर पहुँचकर उन्होंने इस गीत के रचयिता का नाम मालूम किया तथा गीत का अंग्रेजी अनुवाद 'माडर्न रिव्यू' कलकत्ता में प्रकाशित कराया। पत्रिका का अंक रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नजरों से गुजरा। वे 'महजूर' की कविता पढ़कर आनन्दविभोर हो उठे। कवीन्द्र ने 'महजूर' का सम्पूर्ण साहित्य, उनके चित्र तथा उनके जीवन-विषयक तथ्य प्राप्त करने के लिए सत्यार्थी जी को पुनः १९३४ में कश्मीर भेजा। पं० आनन्द कौल बामजई के घर पर दोनों की मुलाकात हुई। 'महजूर' १५ दिन तक सत्यार्थी जी के साथ रहे। इस बीच सत्यार्थी ने 'महजूर' के जीवन की विशिष्ट घटनाओं तथा उनकी रचनाओं का संकलन कर लिया और इसका विवरण कवीन्द्र को बराबर भेजते रहे। इन्हीं दिनों आनन्दकौल बामजई ने 'महजूर' की एक और कश्मीरी कविता 'ग्रीस्यकूर' का अंग्रेजी-अनुवाद 'विश्वभारती' में प्रकाशित कराया। कवीन्द्र ने 'महजूर' को लिखा—मैंने आपकी कविता देखी। आपके और मेरे विचार मिलते-जुलते हैं। अगर आप बंगला और अंग्रेजी जानते होते तो मैं यह कहता कि ये विचार आपने मेरी कविताओं में से प्राप्त किए हैं। मैं आपकी कविता से बहुत खुश हुआ।[1]

'महजूर' के प्रशंसकों में प्रसिद्ध फिल्म-अभिनेता बलराज साहनी भी एक रहे हैं। उन्होंने १९३८-३९ में 'विश्वभारती' में 'महजूर' के व्यक्तित्व व कृतित्व पर दो लेख लिखे थे। एक स्थान पर साहनी साहब ने लिखा है—अगर 'महजूर' आज एक गीत लिखते हैं तो वह एक पखवाड़े के अन्दर-अन्दर जनता की जबान पर चढ़ जाता है। बच्चे स्कूल जाते हुए, लड़कियाँ धान काटते हुए, माँझी नाव खेते हुए और मजदूर काम करते हुए, सब-के-सब इस गीत को गाते रहते।[2] जम्मू व कश्मीर के सूचनालय विभाग से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'तामीर' के संपादक ने सन् १९५७ ई० में 'महजूर अंक' के लिये बलराज साहनी से एक लेख भेजने का अनुरोध किया था। साहनी साहब ने जो उत्तर सम्पादक को दिया उससे 'महजूर' के प्रति उनकी श्रद्धा व घनिष्ठता का परिचय मिल जाता है। पत्र का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है—

---

१. कश्मीरी जबान और शायरी, पृष्ठ २०८ भाग ३, अब्दुल अहद आजाद
२. वही पृ० २०८

जुहू
९-३-१९५७

मान्य शमीम साहब,

आपने मुझे लेख लिखने के लिए याद किया, कृतज्ञ हूँ। यह सच है कि 'महजूर' मेरे बहुत ही प्यारे और आदरणीय दोस्त थे। मेरी उनसे मुलाकात सन् १९३४ में हुई थी। मैंने उनके कलाम के बारे में १९३८ ई० में शान्ति निकेतन के त्रैमासिक रिसाले 'विश्वभारती' में एक लेख लिखा था जिसको टैगोर ने पढ़ा और बहुत पसन्द किया···· । मुझे इस बात का खेद है कि मेरे पास समय नहीं है कि मैं उस महान व्यक्तित्व वाले कवि के बारे में कुछ लिख सकूँ। बेहद व्यस्त हूँ वरना लिखने के लिये बहुत कुछ है। 'महजूर' के साथ मैंने जो क्षण बिताये वे मेरी जिन्दगी की अत्यन्त मूल्यवान निधि हैं। मैं उनके बारे में बहुत कुछ लिख सकता हूँ, मगर मजबूर हूँ।

एक अभिनेता के नाते मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी तमन्ना यह है कि एक दिन 'महजूर' की जिन्दगी को फिल्मा सकूँ। कौन कह सकता है—शायद यह ख्वाब पूरा हो जाये।

आपका,
बलराज साहनी[1]

गुलाम अहमद 'महजूर' के सम्पूर्ण काव्य-साहित्य को कालक्रम की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, १—उर्दू-फारसी-प्रधान काव्य, (१९०५-१९१८), २—प्रेम तथा शृंगार-प्रधान काव्य (१९१९-१९३०) और ३—देश-भक्ति प्रधान काव्य (१९३१-१९५०)।

'महजूर' का उर्दू फारसी-प्रधान काव्य-साहित्य यद्यपि मात्रा में अधिक नहीं है तथापि जितना उपलब्ध है, उसमें प्रकृति व शृंगार वर्णन की प्रधानता है। उर्दू-फारसी में लिखी इनकी कविताओं में 'नाल-ए-महजूर', 'गुल-ए-वीरान' आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी उर्दू में लिखित एक कविता के कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

> अब के आया मौसिम गुल लेके पैगाम निशात
> आंख नरगिस की खुली बुल्बुल ने जुल्फें खोल दीं
> है गुल बादाम मस्त लज्जत जाम निशात
> सब्ज नौखेज धुर-रवस उर्स नौ बहार
> झूमता फिरता है गोया बाद-ए-शाम-निशात···।

प्रेम तथा शृंगार प्रधान काव्य में 'महजूर' के हृदय से निकले स्वछन्द प्रेमोद्गार, यौवन की उल्लसित उमंगें, आशा-निराशा आदि का प्राधान्य है। 'ग्रीस्यकूर' 'सोज-ए-दिल', 'वनय क्याह्', 'यावुन रावस छ़ु न्यान माय', 'दीवा़ नु कोरसस', आदि

१. कश्मीरी जबान और शायरी, भाग ३, पृ० २०९ संपादक की टिप्पणी से (सहानी साहब ने 'शायरे-कश्मीर: महजूर' नाम से एक फिल्म बना भी ली है। यह फिल्म १९७० में रिलीज हो चुकी है।)

कविताएँ प्रेम व सौन्दर्य की हृदय-ग्राही धड़कनों से युक्त हैं। 'ग्रीस्यकूर' में एक कृषिक बाला के नैसर्गिक रूप लावण्य का अपूर्व चित्रण है। कवि ने उसे अनुपमा ही बना दिया है—

> पोश वनि वा गुच पोश सोन्द्रिय
> ग्रीस्यकूरी नाज़नीनी सोन्द्रिय
>
> सोर गुच हीयमाली काफ़िरच परिये
> ग्रीस्यकूरी नाज़नीनी सोन्द्रिये
>
> आज़ाद वनचि पोश परिए
> मुश्क सातो ब्रूरिय कम्य बरिये
> सथ रंग बरुशी कमो रंगिये
> ग्रीस्यकूरी नाज़नीनी सोन्द्रिये
>
> स्योद साद जाम छि स्याम सोन्द्रिये
> न चे छुप गोट न ज़रिये
> कारतिक ज़ूनिये ज़न छि काल अबर क्या ठारिये
> ग्रीस्यकूरी नाज़नीनी सोन्द्रिये
> गहन कनि पोश छि तन जर्य गरिये
> पारिय सागिज़ अथ कारीगरिये
> हयाकी आव छय चेश्म वर्य वरिये
> ग्रीस्यकूरी नाज़नीनी सोन्द्रिये……।

री कुसुमवन की फुलवारी, नाज़नीन सुन्दरी। स्वर्ग की हीमाल[1]-अप्सरा और जन्नत की परी, तू आज़ाद वन की गुलबदन है। तेरी कलियाँ सुगन्ध से किसने भर दी हैं। तुम्हें किस रंगरेज ने सात रंगों से सजाया है। तेरे वस्त्र सीधे-सादे हैं, उन पर न गोटा लगा है और न किनारी। काले बादलों में तू शरद् के चन्द्रमा के समान चमक रही है। री कुसुमवन की फुलवारी, तेरे तन पर फूलों के गहने सुशोभित हो रहे हैं। जाने किस सुनार ने ये गहने बनाए हैं—ऐसी कारीगरी पर कुरबान……।

निठुर प्रेमी की बेरुखी का 'महजूर' ने 'यावन रायस छन स्यान माय' कविता में जिस अन्दाज से वर्णन किया है, उसमें एक प्रेममतवाली विरहिणी की वेदना साकार हो उठी है—

[1] एक सुप्रसिद्ध कश्मीरी लोक कहानी की नायिका।

कर् बयाह् स्यसिए, लानि स्यायस

यावन रायस छन स्यान माय,
यावन रायस बेपरवायस

यावन रायस छन स्यान माय
यछ़ं न गार न ज़मीनस ग्रायस

ज्यन स्यानि स्यानेन लज्य दिलस ग्राय
योर कोर ग्रायस कथ किच् ग्रायस

ग्रावन रायस छन स्यान माय

सखी री, भाग्य के लेख का क्या करूँ, उस यौवन के राजा को, उस बेपरवाह को मुझसे प्रीत नहीं। सोचती हूँ, मैंने जन्म ही क्यों लिया—किसी को मेरी चाह नहीं है। हाय, यौवन के राजा को मुझसे प्रीत नहीं।

१९३० तक 'महजूर' प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाते रहे। इसके बाद समय की परिवर्तनशीलता ने उनकी चिन्तनधारा को एक नई दिशा प्रदान की। स्वतन्त्रता संग्राम ने भारत में काफी ज़ोर पकड़ लिया था और उसकी लहर कश्मीर में भी फैल चुकी थी। वर्षों से पिसती आ रही कश्मीरी जनता रेज़िडेण्टशाही की दमन-नीति तथा उसके कुचक्रों को अब भली भाँति समझने लग गई थी। १९३१ ई० में दबी चिनगारी सुलग उठी। शासकों के विरुद्ध खुलेआम प्रदर्शन होने लगे। देशभक्तों ने एकत्र होकर जान हथेली पर ले, आततायियों से जूझने का प्रण किया। 'नया कश्मीर ज़िन्दाबाद' का नारा घर-घर गूँजने लगा। 'महजूर' इन राजनीतिक सरगरमियों को ध्यान से देखते रहे। उन्होंने देशभक्ति से ओत-प्रोत कविताएँ लिखीं, जिन्हें पढ़-सुनकर जनता में नई उमंग तथा स्फूर्ति का संचार हुआ। 'वलो हो बागवानो' कविता में उन्होंने देशवासियों को यों सम्बोधित किया—

वलो हो बागवानो नौव बहारुक शान पैदा कर
फोलन गुल गथ करन बुलबुल तिथिय सामान पैदाकर
चमन वीरान रिवा शबनम चटिथ जाम परेशान गुल
गुलन त बुलबुलन अन्दर दुबार जान पैदा कर
दि बागस जानवर बोलान मगर आवाज़ दुख म्योन म्योन
खिहिन्दिस आलवस मारख असर वखतान पैदा कर
अगर बुज़नावहन बस्तो गुलन हुंज़ आव खेरोवम
खुप्तुल कर वाव कर गगरायि कर तूफान पैदा कर.........

मेरा चमन वीरान पड़ा हुआ है, शबनम आँसू बहा रही है तथा गुल अपने दामन को चाक किए हुए है। रे मेरे (देशवासी) माली! तू इस उजड़े चमन में

गई बहार ले आ। इस चमन में विभिन्न पंछी चहक रहे हैं। किन्तु सभी अपनी-अपनी बोली बोल रहे हैं। तू इनकी कथनी में एकरूपता का असर पैदा कर। यदि तू गुलों की बस्ती को जगाना चाहता है तो आलस्य त्यागकर भूकम्प ला, आंधी ला और गर्जन व तूफान पैदाकर·······।

'नोव कश्मीर' कविता में 'महजूर' ने 'नये-कश्मीर' के सपनों को यों संजोया—

कंड्य करन बा'गुच चूकदारी
नेज हू'यथ रोजन इस्ताद सारिय
पोशन ध्युय्‌नु घटि नादाना
गांठ वातिनावनि जुवजाव अज़ार
माजि न माजस बनि घरहेजगार
खारिय खेयि फल्य दाना
शिन्याह चान्य न रोजन शिन्याह
शिन्याहन अन्दर बसि नोव दुनिया
गुलशन बनि वीराना
डल मंज ड्'गल लालन जवाहर
वोलर सदर नंजमोख्त गछि ज़ाहिर
छ़ारिनि यी अख जहाना
लूक बोड त कमज़ोर बनि ज़ोरावर
रोज़ि न कांह गछ़न सारिय बराबर
आदमी बनि इन्साना
हथियार खोलन मज़हब दारन
येति योर यिन तिम अख अकिस मारन
मज़हब रोज़ि अख निशाना·······।

कांटे बाग़ की रखवाली करेंगे ताकि कोई फूलों को तोड़कर न ले जाए। चील किसी जन्तु को तकलीफ न पहुँचायेगी तथा माँस नोचना छोड़ देगी। छोटे-बड़े, कमज़ोर-ताक़तवर का भेद मिट जायेगा। सभी एक समान हो जायेंगे तथा आदमी इन्सान बन जायेगा। डल झील में से मोती निकल आयेंगे। वुल्लर की गहराइयों से जवाहर पैदा होंगे और एक दिन सारी दुनिया इनकी तालाश में यहाँ आयेगी। मज़हबदारों के हथियार खोल दिये जायेंगे ताकि वे एक दूसरे के साथ लड़ते-मरते न रहें

और मज़हब मात्र एक चिन्ह रह जायेगा।

कवि आगे कहता है—

> बुलबुल वनान छु पोशन गुलशन वतन म्योनुय
> सोनुय वतन छु गुलशन गुलशन वतन छु म्योनय
> अन्द्यमद्न्य सफ़ेद संगर दोबरा संग मरमर
> मंजबाग सब्ज़ नोहर गुलशन वतन छु म्योनुय
> नालन कोलन त आरन जोयेन त आबशारन
> द्युत सोज़ नव बहारन गुलशन वतन छु म्योनुय······

मेरा वतन फूलों का वतन है। यह मेरा गुलशन है। पहाड़ों के बीच स्थित यह कल-कल करते झरनों, सरोवरों, चश्मों का वतन है। बहार हमेशा नया संदेश देने यहाँ आती है—ऐसे खूबसूरत वतन से मुहब्बत करना लाज़िमी है······।

आगे चलकर 'महजूर' की कविता में क्रान्ति के स्वर गूँज उठे। वे निर्भय हो कर कहने लगे—

> फ़ाकु फ़रि शोंगमिति मज़दूरी
> व्राव गफ़लत गछ़ हुशयार
> वोथ इस्ताद सपुन
> जुल्मन छुख च़ कोरमुत नाबकार
> वोथ नज़र कर गाश आव
> खोत इन्कलाबुक आफ़ताब
> चोन दोदमुत बाग फोलि
> पैगाम ह्यथ आव नोव बहार·········

रे भूख से पीड़ित मजदूर! तू गफ़लत की नींद से जाग। उठ अपने पैरों पर खड़ा होना सीख। जुल्म ने तुझे पौरुषहीन बना दिया है। उठ और देख इन्कलाब का प्रकाश लेकर नया सूर्य पूर्व से उगा है······।

## मास्टर ज़िन्दाकौल

इनका जन्म श्रीनगर के शिहिलटेंग मुहल्ला में १७ जुलाई १८८४ ई० में हुआ था। निधन ३ फरवरी १९६५ में जम्मू में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने मास्टर दामोदरजी की पाठशाला, स्टेट हाई स्कूल, सी० एम० एस० हाई स्कूल आदि शिक्षण-संस्थानों से प्राप्त की। ये सभी संस्थान श्रीनगर में स्थित हैं। मैट्रिक की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् ये स्थानीय हिन्दू-स्कूल में तीन रुपये प्रतिमास वेतन पर अध्यापक के पद पर नियुक्त हुए। अध्यापन-कार्य के साथ-साथ लिखते-

पढ़ते भी रहे। बी० ए० की परीक्षा प्राइवेट उत्तीर्ण कर ली। सन् १९२४ में राज्य सरकार के पुरातत्व विभाग में अनुसंधान अधिकारी के पद पर नियुक्त हुए। तत्पश्चात् ये सचिवालय में आ गये जहाँ सेवा मुक्त होने तक पब्लिसिटी शाखा में अनुवादक के पद पर कार्य करते रहे। १९२९ में राजकीय सेवा से निवृत्त हुए।

जिन्दाकौल के जीवन का अधिकांश समय अध्यापन-कार्य में ही बीता। यही कारण है कि कश्मीरी जनता उन्हें उनके नाम से कम और 'मास्टरजी' के नाम से अधिक जानती है। सन् १९४० तक मास्टरजी उर्दू, फारसी तथा कभी-कभी हिन्दी में कवितायें करते थे। उर्दू में उन्होंने अपनी पहली कविता १३ वर्ष की आयु में लिखी थी। १९२० में उनकी हिन्दी कवितायें अंग्रेज़ी अनुवाद सहित 'पत्र-पुष्प' शीर्षक से प्रकाशित हुई। 'सुमरन' मास्टरजी की ३५ कश्मीरी कविताओं का एक सुन्दर संकलन है। इस पुस्तक पर कवि को १९५६ का 'साहित्य अकादमी' का पुरस्कार भी मिला है।

मास्टरजी मूलतः रहस्यवादी कवि हैं। यह रहस्यवाद बिल्कुल वैसा बन पड़ा है जैसा हिन्दी में महादेवी वर्मा का है। महादेवी की भाँति ही पीड़ा एवं वेदना के साथ-साथ इनकी कविताओं में प्रेमतत्व की प्रधानता दृष्टिगत होती है। यह प्रेमतत्व कवि के अन्तर्मन तथा बाह्य-जगत् की सीमाओं को एक-दूसरे के निकट लाने में पर्याप्त मात्रा में सचेष्ट रहा है। इनकी कविताओं में शिशु की-सी निरीह सरलता तथा उषाकाल के समान छिटकती आभा विद्यमान है। विपुल जीवन-रस से इनकी कवितायें सिंचित हैं। प्रत्यक्ष जीवनानुभूतियों ने उनकी कविताओं में ढलकर कश्मीरी कविता को एक नई दिशा प्रदान की है।

मास्टर ज़िंदाकौल की समस्त कविताओं का वर्ण्यविषय प्रायः रहस्यानुभूति है जो साधक और साध्य की अनवरत संघर्ष-साधना से उत्पन्न आतुरता व विह्वलता पर आधारित है। उनकी रहस्यवादी दृष्टि नितान्त स्पष्ट तथा पैनी है। उनके अनुसार प्रेम भगवान का ही व्यक्त स्वरूप है। प्रेम के लिए समर्पण ही उसका अन्तिम साध्य है। यदि प्रेम दीपक की शिखा है तो साधक उस पर न्योछावर होने वाला शलभ—

बु छुस पोंपुर च़ दीपस पथ
सतिय जाम करहा,बु गय।

मैं शलभ हूँ और तू दीपक। बस, तुझपर न्योछावर होकर भस्म होना चाहता हूँ।

धर्म सम्बन्धी मास्टरजी की मान्यता सारगर्भित है। वे धर्म को कर्तव्य का पर्याय मानते हैं तथा उसी धर्म को श्रेष्ठ समझते हैं जो विश्वबन्धुत्व के लिए जीवनदायिनी सुधा का संचार करे। किन्तु आज के युग में धर्म का उक्त स्वरूप नष्ट होता जा रहा है। उस पर कलह, भेदभाव एवं वैमनस्य की जग चढ़ रही है। अब तक

व्यक्तियों में 'तेरे और मेरे' की भावना रहेगी तब तक इस संसार में शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। वस्तुतः यह दुर्भावना ही समस्त दुःखों एवं आपदाओं का मूल है—

कु नर बावित यि दुय कासुम
गटे हुंदी नाशय लो लो······

हे भगवान, यह द्वैत की भावना मेरे मन से मिटा दीजिए, मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाइए।

मास्टरजी का मन ईश्वर के निर्गुण रूप में ही अधिक रमा है। उनके अनुसार ईश्वर *का कोई रंग-रूप नहीं है, निराकार है तथा विराट् शक्ति का पुंज है।* संसार में अपने को प्रकट तथा व्यक्त करने के लिए ही उसने भौतिक पदार्थों आदि मे अपना रंगरूप धारण कर लिया है। वे पालनकर्त्ता भी हैं तथा संहारक भी। वे कभी शंकराचार्य, कभी टैगोर और कभी बुद्धदेव का रूप धारण कर इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं—

कुन सुय टयगोर आमुत
शंकराचारी त बुद्धय···।

दीन हीन और असहायों के वे ईश्वर सहायक हैं। जिनमे' अहं' और 'स्वार्थ' की भावना रहती है उनसे ईश्वर रुष्ट हो जाते हैं। सुदामा जैसा दीन व्यक्ति भी उनकी कृपा से उपकृत हो उठा था। ईश्वर सर्वज्ञाता हैं और भोले शिशु के समान सूरदास जैसे भक्तों से दूर नहीं हैं। वे अपने प्रियजनों के भक्तिपूर्ण पद उत्सुकता से सुनते हैं—

अंद्य पश्यतली छु आसान
बुदओर सूर दासुन······।

ईश्वर-प्राप्ति की तत्परता मे, भक्त के मनरूपी उपवन मे प्रेम के कुसुम लहक उठते हैं। ईश्वर-साक्षात्कार का मार्ग है मानवप्रेम। जिस प्रकार पौधे को सींचने पर आसपास की भूमि आर्द्र हो उठती है, उसी प्रकार मानव से प्रेम करना भगवान से प्रेम करना है। ईश्वर स्वयं जीव से प्रेम करता है तथा उस प्रेम को निभाने के लिए वह ईश्वर (प्रेमी) अपने जीव (प्रिय) को कुसमित घाटियों, सरोवरों, नक्षत्रों से भरे आकाश, जलप्रपातों, 'पोपनूल' पक्षी, नरगिस, तितली आदि के द्वारा प्रणय-सन्देश भिजवाता है। यद्यपि वह ब्रह्म स्वयं शून्य है किन्तु प्रेम के सूत्र द्वारा वह इस लोक से सम्बद्ध है। ईश्वर अपने भक्तों से मिलने के लिए बराबर आतुर रहते हैं किन्तु उन्हें आमंत्रण दिये भला वे कैसे आ सकते हैं—

'साल रोस्तुय आव यार क्योत ?'

पहले कहा जा चुका है कि मास्टरजी हिन्दी में भी कवितायें करते थे। इनकी प्रसिद्ध हिन्दी कविता 'प्रेम-स्तुति' से कुछ पद्यावतरण प्रस्तुत हैं—

प्रेम ही सुख का मूल है पगले
प्रेम है सुख का मूल।
प्रेमी विष अमृत सम समझे
बंसी राम त्रिशूल, प्रेम ही सुख का···

प्रेमी मारो आदर जाने
बंधन को निस्तारा माने
चन्दन औ कांमल पहिचाने
पिय चरणों की धूल, प्रेम ही सुख का···

प्रेमी संकट में सुख पाये
सूली पर भी तान उड़ाये
अंत समय पर यूँ मुस्काये
जैसे कोई फूल, प्रेम ही सुख का···

मास्टरजी की प्रसिद्ध काव्यकृति 'सुमरन' में से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

सुमरन पनन्य दिच्ं नम
प्रेमुक निशान ब्यसिये
रछुन सोगुम न रोवुम
मोगुम न बाम ब्यसिये
वालिजि मंज़ थवुन गोछ़
हाबुन सोवुम मयस ष्यठ
राह् कस छु कोर मैं पागम
मोलसाम पानु ब्यसिये···

री सखी, मेरे प्रियतम ने मुझे अपने प्रेम की एक निशानी दी थी किन्तु वह निशानी मुझसे खो गई। मैं उसे सम्भाल कर न रख सकी। उसे सम्भाल कर रखने की सामर्थ्य मुझमें न थी। सखी, उस निशानी को दिल से लगाकर रखना चाहिए था मगर मैंने उसे हाथ में लेकर उसका प्रदर्शन किया। अब किस को दोष दूँ, मैंने स्वयं ही अपने आपको हानि पहुँचाई······।

### पं० नीलकण्ठ शर्मा

इनका जन्म सन् १८८८ में श्रीनगर से लगभग १२ मील दूर [illegible] गाँव में हुआ। निधन दिसम्बर १९७० में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने घर पर ही अपने पिता पं० शंकरनाथ शर्मा से प्राप्त की। हिन्दी व संस्कृत भाषाओं का ज्ञान

यथेष्ट ज्ञान था।

पं० नीलकण्ठ शर्मा का कविहृदय भक्ति में अधिक रमा है। यही कारण है कि इनका अधिकांश साहित्य धार्मिक प्रवृत्ति का है। संस्कृत के किन्हीं महत्वपूर्ण ग्रन्थों का कश्मीरी में अनुवाद कर शर्माजी ने कश्मीरी साहित्य की अमूल्य सेवा की है। इनके द्वारा रचित साहित्य का विवरण इस प्रकार है—

१—शिव-पुराण, अनूदित, संवत् १९९९
२—रामायणिशर्मा — कश्मीरी रामायण, संवत् १९७६-८३
३—बिलवा-मंगल — नाटक, संवत् १९९८
४—सुदामा चरित — काव्य, संवत् २०१२
५—स्वप्नवासवदत्ता — अनूदित
६—श्रीमद्भगवद्गीता — अनूदित

'रामायणिशर्मा' पं० नीलकण्ठ शर्मा की बहुचर्चित प्रबन्ध-कृति है। प्रकाशराम के 'रामावतारचरित' के पश्चात् यह कश्मीरी में लिखी जाने वाली दूसरी महत्वपूर्ण रामायण है। इस बृहदाकार महाकाव्य को लिखने में कवि को सात वर्ष लगे हैं। इसके वर्ण्य-विषय के लिए 'वाल्मीकि-रामायण' तथा 'पद्मपुराण' का आधार लिया गया है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह काव्य अत्यन्त कलापूर्ण बन पड़ा है। इस काव्यकृति से एक पद्यांश प्रस्तुत है। इसमें राम-रावण-युद्ध प्रसंग के अन्तर्गत राक्षसों व वानरों की झड़प का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

असर आ॑स्य गोरज़व मूत्य जंग करान
गरान वन अहन आ॑स्य आहंगरान
वनन यी अकिस अख रटुन हा रटुन
व ख़ंजर चटुन तस खु़रन तल खटुन······
यि वान्दर वनान लायुस घ़सेट
करन बन्द कोह मूत्य करस चट त फ़ट
करस कुराव् यलदम च् बोस्स मुश्त दिथ
तुलुन पुशत रटिथ पथर दिन वरिथ······[1]

असुर आपस में कहते कि इसे पकड़ो, उसे पकड़ो। खंजर से इसे काटो और पैरों तले उसे कुचलो—वानर एक-दूसरे से कहते कि ज़ोर से असुरों को पूँछ द्वारा बाँध लो और घसीट दो। कसकर उनका कचूमर निकाल दो, मुक्के मार-मार कर इनका चूर्ण बना डालो और पीठ से पकड़ कर उन्हें धराशायी कर दो।

सीताहरण के पश्चात् मानसकार के राम जिस प्रकार 'हे खग मृग, हे मधुकर

---

१. 'मार्ग-दर्शक' कश्मीर विशेषांक, पृ० ५५।

भेणी, तुम्ह देखी सीता मृगनैनी' कहकर अपनी तीव्र विरह-वेदना का परिचय देते हैं, उसी प्रकार 'रामायणि शर्मा' में विरह-वेदना से पीड़ित होकर रामचन्द्रजी सीता का पता जंगली फल-फूलों से यों पूछते हैं—

> आसानी चे वन दर समन ग्रय समन
> खयालन कमन छुस बमन वय व वन
> गुलालो, दिलस दाग्र छुम चोन ह्यू
> निशाना तमुन्द वनतम कय जायि छू......।[1]

रे बेला पुष्प, तू किन विचारों में डूबकर मेरी बेबसी पर मुस्करा रहा है। रे गुल-लाला पुष्प, तेरे जैसा दाग मेरे दिल पर भी लगा है, अतः तू जानकीजी की कोई निशानी बता दे कि वह कहां है—

## शमसउद्दीन 'हैरत'

ये श्रीनगर में जामा-मस्जिद के निकट पांदान मुहल्ला के रहने वाले थे। पीर-मुरीदी इनका परम्परागत व्यवसाय था। इनका जन्म १८६० ई० में हुआ था।

शमसउद्दीन ने प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता पीर गुलाम मुहम्मद से प्राप्त की थी। पिता की मृत्यु के बाद इन्होंने मौलवी सेफ-अलद्दीन से अरबी-फारसी का ज्ञान हासिल किया। शेरोशायरी का शौक बचपन ही से था। प्रारम्भ में 'आशिक' उपनाम से कवितायें कीं किन्तु बाद में यह उपनाम बदल डाला और 'हैरत' उपनाम से कवितायें करने लगे। 'हैरत' ने जो कुछ भी लिखा है उसमें फारसी का कलाम अधिक है तथा कश्मीरी का कम। कश्मीरी में लिखी इनकी मात्र एक काव्यकृति का उल्लेख मिलता है, जिसका नाम है—'मसनवी रैणा व ज़ेबा'। यह एक इश्किया दास्तान है जिसमें आशिक रैणा तथा माशूक ज़ेबा की प्रेम कहानी दर्ज है। इस प्रेम कहानी का आधार 'हैरत' ने 'शमस कहका' से लिया है। कहा जाता है कि काव्यकृति को लिखने की प्रेरण 'हैरत' को अपने एक मित्र से मिली थी। इस सम्बन्ध में कवि ने एक स्थान पर लिखा है—

> लोगुम न चारु अज़ फरमान आन यार
> ह्योतुम छारुन फसान रत बना चार
> किताबा आस नामी शमस कहका
> करान तथ वुछिथ आशक वाह वाह
> स्यठा ज़ेबा सु अन्दर इल्म इखलाक
> परिथ सारिय तथ प्यठ गछान मुश्ताक
> फसाना तमी अन्दर मे छोरम
> दरे ज़ेबा अज़ा दरिया मे छोरम
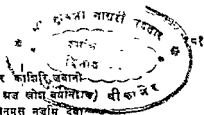
---

[1] कश्मीर विशेषांक, पृ० ५५

कोरम सुय मुख्तसर काशिरि जबानी
दहन वोहन अन्दर अज खोश बयीमी[illegible])
सु नसरी ओस योनमस नज़मि देवा
योवुम मे नाव अथ 'रेणा व जेबा'—[1]

अपने मित्र के अनुरोध को पूरा करने के लिए मैं विवश हो गया। मैं किसी अच्छी कहानी को ढूंढने के लिए अनेकों ग्रन्थ पढ़ने लगा। मेरे सामने से 'शमसकहका' नाम की एक किताब गुज़री। इस पुस्तक को देखकर आशिक वाह-वाह करते थे। इसमें चरित्र-निर्माण की अच्छी बातें कही गई थी। मैंने इसी पुस्तक में से एक कहानी चुन ली और इसे दस दिन के अन्दर कश्मीरी मे पद्यबद्ध कर डाला और नाम रखा 'रेणा व जेबा'।

'रेणा व जेबा' मसनवी के अतिरिक्त 'हैरत' ने कुछ स्फुट कवितायें भी लिखी हैं। इन कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें कश्मीरी संगीत की विभिन्न राग-रागनियों को सरलतापूर्वक निबद्ध किया गया है। इन राग-रागनियों में प्रमुख हैं—मुकाम ललित, नौरोज सबा, रास्त कश्मीरी आदि। 'हैरत' की फारसी में लिखित विभिन्न काव्यकृतियों के नाम है—'मसनवी गुलज़ार-करामात' 'मसनवी आइने—उलफत,' 'फरियाद-ए-हैरत' आदि।

### अमरचन्द वली

इनका जन्म श्रीनगर के मुहल्ला वड़ीयार मे सन् १८६४ में हुआ था। इनकी कविताओं में प्रेम व शृंगार का वर्णन अधिक है। यह वर्णन कवि के आत्मपीड़न, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व तथा आत्मोत्सर्ग से युक्त है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१—थोंख ब्यार छु ज़ाल्य वाल वाशे छु पलन
जानवर छु दिलकुय लोगुम मंज़ कोकले चाने मत्यो
छुम बरावर शोकसय मंज़ रोज़ुन मरुन
दम पिये चाने मत्यो या दम चले चानेमत्यो······

(सोने अदब १९६४ से)

२—चानिव्यि अशिव मे कर्य कम कम सितम
गाह अडेयो मे नार गाहे शोस कम
छुस व गुज़राथान पि गुदस्न अश्कुकय
छुम न हसरत राहतुक नय दर्द गम······

(सोन अदब १९६३ से)

मेरे दिल का पंछी तुम्हारे चोटी रूपी काँटे में फँस गया है। अब तुम्हारे ही ऊपर मेरे जीवन-मरण का प्रश्न आधारित है······

---

१. 'कश्मीरी जबान और शायरी' भाग २. पृ० ४७८

तुम्हारे आँसुओं ने मुझ पर न जाने कितने सितम किये। कभी मेरे इश्क की आग भड़क उठी और कभी ठण्डी पड़ गई। मुझे अब न राहत पाने की इच्छा है और न दर्द-गम लेने की।

## अब्दुल कदूस रसाजायदानी

इनका जन्म सन् १९०१ में जम्मू प्रान्त के प्रसिद्ध कस्बे भद्रवाह में हुआ था। रसाजावदानी की जितनी भी कवितायें मिलती हैं, उनमें प्रेम-वर्णन अपने विराट् तथा परम-सुन्दर रूप में मिलता है। कहीं-कहीं पर यह वर्णन रहस्यात्मक भावनाओं से संयुक्त हो गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

छु अश्क शोलनावन कायनातस
छु अश्क सारि समसारस जुवन पाये
छु अश्क कोह् चटन बालन फिरन आब
छु अश्क पान जालन नार बे वाये
सना कस आलम मंज चे‌ड़ छि चुजमुच्
दिलक्य सारिय अरमान कस सना द्राये......।

('सोन अदब' १९६१ से)

इश्क से ही यह समस्त सृष्टि लहक उठी है तथा उसी से सारा संसार अनुप्राणित है। इश्क पहाड़ों को चीरकर उनमें से पानी निकाल लाता है तथा आशिकों को आग के समान जलाता है। ऐसा कौन है जो इश्क की अग्नि में न जला हो। इस संसार मे ऐसा कोई बिरला ही होगा जिसकी सारी कामनायें पूरी हुई होंगी...।

## समद मीर

इनके जमन्काल के सम्बन्ध में मतभेद है। श्री हाजिनी व प्रो० जियालाल कौल इनका जन्म सन् १९०१ में मानते हैं।[1] समद मीर के सम्बन्धियों का कहना है कि लगभग ६५ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ]था और यह तिथि ९ जनवरी १९५९ थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समदमीर १८९३-९४ के आस-पास जन्मे थे।[2] इनके पिता का नाम ख्वाजा अब्दुल खालिक मीर था और ये नम्बलहार (केमराज) के रहने वाले थे। जीविकोपार्जन के लिये वे गाँव छोड़कर श्रीनगर चले आये। यहाँ आकर उन्होंने दूसरी शादी कर ली। (पहली शादी अपने ही गाँव मे कर चुके थे) दूसरी पत्नी से इनके तीन पुत्र हुये— समदमीर, रहीममीर तथा मुहम्मदमीर।

---

१. 'काशिर शायरी' पृ० १९९ तथा 'समदमीर' निबन्ध 'सोन अदब'—१९५९ में प्रकाशित, पृ० २७६
२. समदमीर के निकटतम सम्बन्धियों से सम्पर्क करने पर भी उनके जन्म का निश्चित वर्ष ज्ञात न हो सका।

समदमीर के पिता अब्दुल खालिक स्वयं एक अच्छे कवि थे। अपने पिता से प्रेरणा पाकर समदमीर ने भी कवितायें करना प्रारम्भ किया। सन् १९१९-२१ के बीच समदमीर श्रीनगर से अपने पिता के गाँव नम्बलहार चले गये और अन्त समय तक वहीं रहे। आर्थिक जटिलताओं तथा अन्य पारिवारिक समस्याओं में घिरे रहने के कारण वे जीवन के अन्तिम वर्षों में सूफी-साधु बन गये। जब उनका देहावसान हुआ तो उन्हें 'अगर' के चश्मे के निकट दफनाया गया। इस बात के लिये मीर साहब ने अपने शिष्यों से पहले ही आग्रह कर रखा था—

अगर चश्मन बनी गोश, नेह् हर शब रुस्तगारी
मगर ए साहबे होश च् कर लब बस्त दारी।[1]

इनके मजार के ऊपर प्रत्येक वर्ष नवम्बर के महीने में मेला लगता है और रात भर इनके कलाम का गायन होता है।

समदमीर पहले-पहल शृंगारपरक कवितायें लिखते थे। बाद में दुनियाई जंजाल से जूझते-जूझते उन्हें जीवन की यथार्थता का ज्ञान हो गया और वे दार्शनिक हो गये। जीवन की सच्चाई तथा उसके मर्म को जन साधारण तक कविता के माध्यम से पहुँचाने का उन्होंने सङ्कल्प कर लिया। इनकी कवितायें 'कलाम-ए-समदमीर' शीर्षक से छः भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके कलाम के कुछ नमूने पेश हैं—

१—यलि यस शक दुय चलित शुबहो
राम रहीम तस यकसान हो
यलि यस मनि दुय वनि साधो
राहि बदनिश कर आहि भगवान······
२—या गछि गोड कँह् पानस सनुन
नत अल्य बनुन अपिज़योर
नावुन सास्य आसमानस खनुन
तोति मा वोतलेस दूर······।

जिसके मन से द्वैत और अहं की भावना का लोप हो जाए, उसके लिए राम और रहीम दोनों बराबर हैं। जो अपने मन को वश में कर सके, वही असली साधु है।

ज्ञान के मर्म को अच्छी तरह समझने के बाद ही ज्ञानी कहलाने की अभिलाषा करनी चाहिए······

१. 'शीराज़ा' उर्दू १९६४, 'समदमीर-एक तारुफ़' मोतीलाल साक़ी।

तुम्हारे आँसुओं ने मुझ पर न जाने कितने सितम किये। कभी मेरे इश्क की आग भड़क उठी और कभी ठण्डी पड़ गई। मुझे अब न राहत पाने की इच्छा है और न दर्द-ग़म लेने की।

## अब्दुल कदूस रसाजावदानी

इनका जन्म सन् १९०१ में जम्मू प्रान्त के प्रसिद्ध कस्बे भद्रवाह में हुआ था। रसाजावदानी की जितनी भी कवितायें मिलती हैं, उनमें प्रेम-वर्णन अपने विराट् तथा चरम-सुन्दर रूप में मिलता है। कहीं-कहीं पर यह वर्णन रहस्यात्मक भावनाओं से संयुक्त हो गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

छु अश्क शोलनावन कायनातस
छु अश्क सारि समतारुक जुवन पाये
छु अश्क कोह् चटन बालन फिरन आब
छु अश्क पान जालन नार बे वाये
सना कस आलम मंज़ यो छि यजमुष
विलक्य सारिय अरमान कस सना आये……।

('सोन अदब' १९६१ से)

इश्क से ही यह समस्त सृष्टि महक उठी है तथा उसी से सारा संसार अनुप्राणित है। इश्क पहाड़ों को चीरकर उनमें से पानी निकाल लाता है तथा आशिकों को आग के समान जलाता है। ऐसा कौन है जो इश्क की अग्नि में न जला हो। इस संसार में ऐसा कोई विरला ही होगा जिसकी सारी कामनायें पूरी हुई होंगी……।

## समद मीर

इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में मतभेद है। श्री हाजिनी व प्रो० जियालाल कौल इनका जन्म सन् १९०१ में मानते हैं।[1] समद मीर के सम्बन्धियों का कहना है कि लगभग ६५ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ था और वह तिथि ६ जनवरी १९५९ थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि समदमीर १८९३-९४ के आस-पास जन्मे थे।[2] इनके पिता का नाम ख्वाजा अब्दुल खालिक मीर था और वे नवकदार (बेलदार) के रहने वाले थे। जीविकोपार्जन के लिये वे गाँव छोड़कर श्रीनगर चले आये। यहाँ आकर उन्होंने दूसरी शादी कर ली। (पहली शादी गाँव में ही कर चुके थे) दूसरी पत्नी से इनके तीन पुत्र हुए— अहमदमीर, रहीममीर तथा मुहम्मदमीर।

---

१. 'कॉशिर शायरी' पृ० १९९ तथा 'समदमीर' विशेषांक 'सोन अदब'—१९६९ में प्रकाशित, पृ० २०६
२. समदमीर के निकटतम सम्बन्धियों से सम्पर्क करने पर भी इनके जन्म का निश्चित वर्ष ज्ञात न हो सका।

समदमीर के पिता अब्दुल खालिक स्वयं एक अच्छे कवि थे। अपने पिता से प्रेरणा पाकर समदमीर ने भी कवितायें करना प्रारम्भ किया। सन् १९१९-२१ के बीच समदमीर श्रीनगर से अपने पिता के गाँव नम्बलहार चले गये और अन्त समय तक वहीं रहे। आर्थिक जटिलताओं तथा अन्य पारिवारिक समस्याओं में घिरे रहने के कारण वे जीवन के अन्तिम वर्षों में सूफी-साधु बन गये। जब उनका देहावसान हुआ तो उन्हें 'अगर' के चश्मे के निकट दफनाया गया। इस बात के लिये मीर साहब ने अपने शिष्यों से पहले ही आग्रह कर रखा था—

अगर चश्मन बनी गोश, नेह हर शब दस्तगारी
मगर ए साहबे होश च् कर लब दस्त दारी।[1]

इनके मजार के ऊपर प्रत्येक वर्ष नवम्बर के महीने में मेला लगता है और रात भर इनके कलाम का गायन होता है।

समदमीर पहले-पहल शृंगारपरक कवितायें लिखते थे। बाद में दुनियाई जंजाल से जूझते-जूझते उन्हें जीवन की यथार्थता का ज्ञान हो गया और वे दार्शनिक हो गये। जीवन की सच्चाई तथा उसके मर्म को जन साधारण तक कविता के माध्यम से पहुँचाने का उन्होंने संकल्प कर लिया। इनकी कवितायें 'कलाम-ए-समदमीर' शीर्षक से छः भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके कलाम के कुछ नमूने पेश हैं—

१—दलि मस शक दुय चल त गुबहो
राम रहीम तस यकसान हो
मलि यस मनि दुय बनि साधो
राहि बदनिश कर आहि भगवान······
२—या गछि गोड कँह पानस सनुन
नत बल्य बनुन अविछयोर
नाखून सात्य आसमानस खनुन
तोति मा वोतलेस दूर······।

जिसके मन से द्वैत और अहं की भावना का लोप हो जाए, उसके लिए राम और रहीम दोनों बराबर हैं। जो अपने मन को वश में कर सके, वही असली साधु है।

ज्ञान के मर्म को अच्छी तरह समझने के बाद ही ज्ञानी कहलाने की अभिलाषा करनी चाहिए······

---

१. 'शीराजा' उर्दू १९६४, 'समदमीर-एक तारुफ' मोतीलाल साक़ी।

# आधुनिक-काल

## (१६००)

कश्मीरी साहित्य का आधुनिक-काल सन् १६०० से प्रारम्भ होता है। इस काल में जहाँ एक ओर गद्य का विकास हुआ वहाँ दूसरी ओर कश्मीरी-कविता में एक नई संचेतना का उदय हुआ। १६०० से लेकर १६६० तक का समय कश्मीरी साहित्य के इतिहास में कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। कश्मीरी कहानी, नाटक, निबन्ध, एकांकी उपन्यास आदि इसी काल की देन हैं। काव्य के क्षेत्र में जो अभूतपूर्व परिवर्तन हुऐ, वे विशेष महत्त्व के हैं। १६४७ तक की कश्मीरी-कविता में प्रकृति प्रेम तथा देश-प्रेम की मिली-जुली भावानुभूति व्याप्त रही। १६४७ के बाद १६६० तक की सोलह वर्षीय अवधि में जो काव्यरचना हुई, उसे आधुनिक कश्मीरी कविता अथवा प्रयोगवादी कविता कहा जा सकता है। इस काल की कविता में प्रमुख रूप से दो प्रकार की प्रवृतियाँ देखने को मिलती हैं। १. क्रांतिकारीप्र वृत्ति और २. प्रतीकात्मक प्रवृति। इन दोनों प्रवृत्तियों के स्वरूप, विकास तथा परंपरा के पीछे वही दर्शन और भावभूमि विद्यमान है जिनकी प्रेरणा से हिन्दी में प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता का जन्म हुआ।

१६४७ का वर्ष कश्मीर के इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इस वर्ष कश्मीर की घाटी पर कबाइलियों का आक्रमण हुआ, जिसके फलस्वरूप अनेक देशभक्तों ने एकत्र होकर पाकिस्तानियों के विरुद्ध स्वदेश-प्रेम से ओत-प्रोत कवितायें लिखीं। 'कल्चरल फ्रंट' नाम से एक साहित्यिक परिषद की स्थापना की गई जिसमे क्रान्तिकारी कवियों, साहित्यिकों तथा अन्य कलाकारों ने मिलकर अपने भावों को व्यक्त किया तथा उन्हें जनता तक पहुँचाया। आधुनिक कश्मीरी कविता में यह क्रान्तिकारी प्रवृति लगभग छः वर्षों तक रही। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह क्रांति का काल था जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक कवि की काया में स्फूर्ति तथा जीभ पर देशभक्ति के स्वर गूँज रहे थे तथापि इस काल की कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसका आन्तरिक सौंदर्य क्रान्ति के क्रूर क्रन्दन द्वारा दब नहीं गया। कविता का सौंदर्य ज्यों-का-त्यों बना रहा। इस प्रवृति के कवियों मे अब्दुल अहद आजाद, दीनानाथ नादिम, पीताम्बर नाथ फानी, नूर मुहम्मद रोशन, अर्जुनदेव 'मजबूर' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'रोशन' और 'नादिम' की कविताओं में क्रान्ति अपने प्रशान्त, संयत तथा मर्यादित रूप में उपस्थित हुई है। उसमें 'आजाद' की भाँति परिस्थितियों के प्रति अति-विद्रोहात्मकता नहीं है।

१९५३ के बाद राजनीतिक परिस्थितियों की स्थिरता के परिणामस्वरूप कश्मीर में शान्ति का वातावरण स्थापित होने लगा। जिससे कवियों की विचारधारा में भी नया परिवर्तन होने लगा। नई भावभूमि की सृष्टि हुई। नई परिवर्तित परिस्थितियों के फलस्वरूप नये मूल्यों एवं प्रतिमानों की प्रतिष्ठा होने लगी। नये विषयों नये प्रयोगों, नये उपमानों आदि का संचयन होने लगा। नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि मूल्यों में विशेष परिवर्तन आ गया। कविता में व्यक्तिवादी प्रवृत्ति समाहित होने लगी। उसमें समष्टिगत भावों की अपेक्षा व्यक्तिगत भावों को प्रधानता दी जाने लगी। वर्ण्य-विषय की विविधता के साथ-साथ कविता की शैली में भी पर्याप्त परिवर्तन हुआ। रूपक-काव्य, अतुकान्त कवितायें, प्रगीत आदि विविध काव्य-विधाओं को अपनाया गया। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें प्रतीकात्मकता की प्रधानता प्रमुख रही। इसी विशेषता के आधार पर इस काल की प्रवृत्ति को 'प्रतीकात्मक प्रवृत्ति' से अभिहित किया जा सकता है। इस प्रवृत्ति के प्रमुख कवि हैं—रहमान राही, अमीन कामिल मुज़फ्फर आज़म, गुलाम नबी ख़याल आदि।

## कश्मीरी गद्य : उद्‌भव और विकास

हिन्दी की भाँति कश्मीरी में भी गद्य-लेखन की परम्परा १९वीं शताब्दी से मिलती है। सन् १८२१ में पहली बार बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेण्ट' का कश्मीरी गद्य में अनुवाद किया गया और यह कार्य 'सिरमपोर मिशनरी' के तत्वावधान में सम्पन्न हुआ। यहीं से कश्मीरी गद्य का विधिवत् श्रीगणेश होता है। इससे पूर्व कश्मीरी गद्य के चिन्ह नहीं मिलते। कश्मीरी गद्य के उद्‌भव और विकास की प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए, सुविधा की दृष्टि से, कश्मीरी-गद्य-साहित्य को दो काल-खण्डों में विभाजित किया जाता है—

१. सन् १८२१ से १९४७ तक का गद्य-साहित्य,
२. सन् १९४७ से अब तक का गद्य-साहित्य

भारत की राजनीति पर नियन्त्रण कर लेने के पश्चात् अंग्रेज-शासकों ने यहाँ की धार्मिक परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना शुरू कर दिया था। इस काम के लिए विभिन्न मिशनरियाँ कायम की गईं तथा विद्वान् पादरियों को ईसाई-धर्म के व्यापक प्रचार-प्रसार के लिए नियत किया गया। कश्मीर भी इस अभियान से अछूता न रह सका। सन् १८२१ में कश्मीर में एक ईसाई मिशनरी स्थापित हुई और इसने अपना प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया। इसी मिशनरी के सद्‌प्रयत्नों से 'न्यू टेस्टामेण्ट' का कश्मीरी में अनुवाद किया गया तथा इसके दो और संस्करण क्रमशः १८२७ तथा १८३२ में प्रकाशित हुए। उक्त तीनों संस्करणों की लिपि शारदा थी। सन् १८८४ में 'ब्रिटिश एण्ड फारिन बाइबिल सोसाइटी' ने सिरमपोर मिशनरी द्वारा प्रकाशित अनुवाद को पुनः परिवर्धित रूप में प्रकाशित किया तथा इस बार इसकी लिपि फारसी

रखी गई। इसी संस्था ने बाइबिल के 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' का कश्मीरी में अनुवाद तैयार किया तथा दोनों 'न्यू टेस्टामेण्ट' और 'ओल्ड टेस्टामेण्ट' को एकसाथ १८९९ में लुधियाना से प्रकाशित कराया। लुधियाना से ही १८८४ का कश्मीरी-बाइबिल संस्करण भी प्रकाशित हुआ था। उक्त सभी अनुवाद-कार्य प्रसिद्ध पादरी टी-आर-वेड़ की देखरेख में संपन्न हुये थे। कश्मीरी में अनूदित बाइबिल का एक अंश प्रस्तुत है।

१. तो पत आव ईसू रूहकि कोवत सात्य बियाबानस अन्दर निनु युथ शैतान तस अज़माविः।

२. त येलि चतजिहन राचन दोहन रोज थाविय मोकल्योव आसर लजिस बोछि।

३. त आज़मावन वाल्य दोप तस निश यिथ तस च हय खोदायिसुन्द फरज़न्द छुख चु दप यिम कनि सपनन्य चोचि।[1]

ईसा को बियाबान में ले जाया गया ताकि शैतान उसकी परीक्षा ले। जब चालिस दिन तक उसने उपवास रखा तो आखिर उसे भूख लगी। परीक्षा लेने वाले शैतान ने पूछा—तुम तो भगवान के बन्दे हो, कहो यह पत्थर रोटी बन जाये……।

सन् १८७९ में ईश्वर कौल ने संस्कृत में कश्मीरी व्याकरण की रचना की जिसे बाद मे १८९८ में सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'कश्मीरशब्दामृत' शीर्षक से संपादित कर एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल से प्रकाशित कराया। इससे पूर्व १८७९ में पं० रामजू दर की गद्य में लिखित ज्यामिति-शास्त्र पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'तहरीर अकलीदस बज़बान कश्मीरी' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। (पं० रामजू दर डोगरा-शासनकाल मे शिक्षा विभाग के निदेशक थे।) इस पुस्तक की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसका मुद्रण कश्मीर के ही एक स्थानीय प्रेस में हुआ था। कागज़ भी कश्मीर मे ही बना था। इस पुस्तक से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ऋजु रेखा—स्यज़ रख गयि सो योस आगि दोन फेरेन मंज़ मीलिथ्युव हस कोन छोट।[2]

ऋजु-रेखा वह रेखा है जो किन्हीं दो बिन्दुओं से मिली हुई रेखाओं में सब से छोटी हो।

सन् १८८५ मे एक अन्य पादरी श्री जे० हिन्टन नोल्स ने कश्मीरी कहावतों और सूक्तियों का एक सुन्दर कोश तैयार किया तथा इसे कलकत्ता से प्रकाशित कराया। इस कोश में लगभग १४०० कश्मीरी कहावतें, मुहावरे, सूक्तियाँ तथा सम्पादक, नुरुद्दीन आदि संत कवियों के अमृत-वचन शामिल हैं। नोल्स ने कश्मीरी

1. 'काफुर बमर' पृ० ५२
2. तहरीर इन कश्मीरी, जे० एम० कौल, पृ० ६७

लोककथाओं का एक महत्वपूर्ण संग्रह भी तैयार किया तथा इसे 'फोल्क टेल्स आफ कश्मीर' शीर्षक से सन् १८९३ में लंदन से प्रकाशित कराया। सन् १९२३ में ग्रियर्सन महोदय ने श्री स्टेन साहब के सहयोग से कश्मीरी लोककहानियों का एक और संग्रह 'हातिमस टेल्स' शीर्षक से प्रकाशित कराया। स्टेन साहब ने ये कहानियाँ सन् १८९६ में सिन्ध (पांजीन) के रहने वाले हातिम तेली से एक कश्मीरी पंडित श्री गोविन्दकौल की मदद से सुनी थी। इनमें कुछ कहानियाँ भारतीय, कुछ ईरानी तथा कुछ कश्मीरी थी। कश्मीरी की लोक-कहानियों में प्रमुख हैं—'शबरंग', 'दिन का चोर और रात्रि का चोर', 'निकम्मा पति', चतुर पत्नी', 'तोते की कहानी' आदि। 'तोते की कहानी' शीर्षक से एक नमूना प्रस्तुत है—

'वपान वोस्ताद, शहर अख मत्र शहरि ईरान। तति ओसपादशाहा, तमिसय छु नाव बहादुर खान। तम्य ओस वोरमुत बाग जनानन क्युत, तथ आस न वथ गारज़ानस। तथ बागस मंज़ गव पाद फकीरा। नज़रबाजव कर नजर, खबरदारव नी खबर अमिस पादशाहस दोपुख—फकीर च्राव बागस मंज़। बूज़ुन पादशाहहन। ह्योतुन सूत्य वज़ीर। गयि तथ बागस मज़ वुछुन अति फकीर।'[1]

उस्ताद का कहना है कि शहरों में एक शहर था ईरान। वहाँ एक बादशाह था जिसका नाम था बहादुर खान। उसने अपनी रानियों के लिए एक बाग बनवाया था। इसमें कोई भी व्यक्ति घुस नहीं सकता था। एक दिन इस बाग में एक फकीर पैदा हुआ। चौकीदारों ने बादशाह को खबर की कि एक फकीर बाग में घुस आया है। बादशाह ने जब यह बात सुनी तो वे अपने वजीर को साथ लेकर चल पड़े और वहाँ बाग में फकीर को देखा।

इन्हीं वर्षों में कुछ धार्मिक पुस्तकें भी गद्य में लिखी गईं। इनमें कुराने-पाक के कश्मीरी अनुवाद प्रमुख हैं। अनुवादकों में मीर वाइज़ मौलवी यूसुफशाह साहब तथा मौलवी याहिया के नाम उल्लेखनीय हैं।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि कश्मीरी गद्य का सूत्रपात यद्यपि सन् १८२१ में हो चुका था तथापि साहित्य में उसे एक विशिष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर सन् १९२३ के बाद ही मिला। यह प्रतिष्ठा उसे कश्मीरी नाटककारों की सफल गद्य-साधना द्वारा प्राप्त हुई।

## रंगमंच व नाटक का विकास

कश्मीरी रंगमंच के विकास की परंपरा में कश्मीरी के प्रसिद्ध लोकनाट्य 'भांडपाथर' का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'भांडपाथर' संस्कृत के दो शब्दों—

---

१. 'काशुर नसर' पृ० ५५

'भाण' और 'पात्र' से बना है जिसका अर्थ है हास्य-व्यंग्य प्रधान हाव-भाव एवं अन्य प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं से किसी स्थिति का अभिनय करना। भांड कुशल कलाकार हुआ करते थे। प्रभावपूर्ण वेशभूषा, भाव-भंगिमा, कटाक्ष आदि से वे किसी भी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक विषय को सुरुचिपूर्ण ढंग से जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। मुगलकाल में यह नाट्यकला अपने चरमोत्कर्ष पर थी। अफ़गान और सिक्ख शासनकाल में यह कला पूर्णतया नष्ट होगई। सन् १८७७ के भयकर दुर्भिक्ष के कारण इस कला के अधिकांश कलाकार काल-कवलित हो गए। 'सोयबुग', 'वाहथोर' और 'अकिनगोम' गाँवों में से भी बहुत कम कलाकार जीवित रह सके। (ये तीनों गाँवो इस कला के प्रधान केन्द्र थे।) जो बचे रहे उन्होंने तथा उनकी बाद की पीढ़ियों ने इस नाट्यकला को छोड़ दिया। कारण, इस कला को न तो राजकीय प्रश्रय ही मिला और न जनता ही इसे अब पसन्द करने लगी। उलटा इस नाट्य-व्यवसाय को हेय एवं अशिष्ट समझा जाने लगा। कालान्तर में इस कला की विशृंखलित कड़ियों को पुनः जोड़ने का प्रयास किया गया और वर्तमान कश्मीरी रंगमंच और नाटक का विकास हुआ।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारसी थिएटर कम्पनी को आगा हश्र, बेताब तथा मास्टर रहमत के नाटकों ने एक नया जीवन प्रदान किया था। कश्मीर के कई कलाकारों को ये नाटक देखने का मौका मिला। उन्होंने इन नाटकों से प्रभावित होकर कश्मीर में भी एक नाटक-कम्पनी खोलने का संकल्प किया। नाटक-कम्पनी खोलते समय उनके सामने दो तरह की समस्यायें आई। एक,जनतामें नाटक देखनेकी रुचि पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाई थी और दो, कलाकारों को लोक-निन्दा का भय था कि कहीं उनका अंजाम भी वही न हो जो भांडों का हुआ था। फिर भी इन कलाकारों का उत्साह कम न हुआ। उन्होंने लोक निन्दा की प्रवाह न कर श्रीनगर में गावकदल के निकट झेलम के किनारे पर एक व्यावसायिक नाटक-कम्पनी खोल दी। इस काम के लिये श्री वेदलाल दर वकील के सद्प्रयत्न सदा स्मरणीय रहेंगे। कम्पनी ने स्त्री पात्रों का अभिनय करने के लिये बाहर से कुछ अभिनेत्रियाँ मंगवायीं किन्तु यह कम्पनी अधिक समय तक चल न सकी। कारण, जनता की रुचि अभी इतनी विकसित एवं परिष्कृत नहीं हुई थी कि वह नाटक देखने के लिये पाँच-चार आने खर्चती। फलस्वरूप आर्थिक-संकट के कारण इस कम्पनी को टूटना पड़ा। अपने कार्यकाल के दौरान इस कम्पनी ने जो नाटक मंच पर प्रस्तुत किये, वे सभी उर्दू में लिखे गये थे तथा इनके लेखक आगा हश्र, बेताब आदि ही थे। यह कम्पनी अगरचे ज्यादा समय तक न चल सकी किन्तु कश्मीरी रंगमंच को उसने अंकुरित होने में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसी कम्पनी के भरसक प्रयत्नों की बदौलत कश्मीरी रंगमंच को सर्वश्री रामकृष्ण, अमरनाथ हाण्डा बाबू किशनदास, वेदलाल दर, जगन्नाथ साकी, स्वामीजी

जैसे उच्चकोटि के अभिनेता एवं कलाकार मिले। कालांतर में जनता की रुचि में परिष्कार होने लगा और उसने उर्दू के बजाय कश्मीरी में नाटक देखने की प्रवृति दिखाई। सन् १९२३ में पहली बार एक कश्मीरी नाटक श्रीनगर के इस्लामिया हाई स्कूल मे खेला गया। यह नाटक छात्रों के लिये लिखा गया था।

कश्मीरी का प्रथम साहित्यिक नाटक 'सत्यच काहवट' सन् १९२९ में लिखा गया। इसके लेखक थे श्री नन्दलाल कौल। इनका जन्म आलखोड, श्रीनगर में सन् १८७१ को हुआ था तथा निधन १९४० में हुआ। 'सत्यच काहवट' (सत्य की कसौटी) लिख कर कौल साहब ने यह सिद्ध कर दिया कि कश्मीरी में भी सफल नाटक लिखे जा सकते हैं। कश्मीरी-नाटक-साहित्य में इस नाटक को वही स्थान प्राप्त है जो उर्दू या हिन्दी में अमानत के 'इन्द्रसभा' को है। सन् १९२९ से लेकर सन् १९३१ तक यह नाटक अनेक बार श्रीनगर के 'रघुनाथ मन्दिर स्टेज' पर खेला गया। यह नाटक इतना लोकप्रिय हुआ कि बच्चे-बच्चे के कंठ पर इसके गीत व संवाद चढ़ गये। इस नाटक का कथानक सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा उसकी पत्नी तारामती के जीवन-संघर्ष पर आधारित था। भूलोक पर सत्यवादी हरिश्चन्द्र की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा को देखकर इन्द्र को इस बात की आशंका होने लगी कि कहीं हरिश्चन्द्र अपनी सत्य-निष्ठा से उनकी तथा उनके सहयोगियों की प्रतिष्ठा को धूमिल न बना दे। इन्द्रदेव विश्वामित्र को यह कार्य सौंपते हैं कि वह जैसे-तैसे हरिश्चन्द्र की सत्य-प्रतिष्ठा को भ्रष्ट कर दें। विश्वामित्र सभी तरह के कुचक्रों का प्रयोग कर हरिश्चन्द्र को सत्यपथ से गिराने का यत्न करता है। हरिश्चन्द्र का राज्य चला जाता है, पति-पत्नी को भिखारी बनकर दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती हैं आदि। पुत्र रोहित की सर्पदंश से मृत्यु हो जाने पर बेचारी तारामती उसका दाह-संस्कार कराने के लिये चाण्डाल के समक्ष स्वर्ण-मुद्रा के बदले अपना शीर्ष समर्पित करने को तैयार हो जाती है। तभी विश्वामित्र ग्लानिवश अपने कुचक्रों का भेद खोल देता है तथा हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। नाटक को सुरुचिपूर्ण बनाने के लिये लेखक ने इसमें हास्य-व्यंग्य का पुट भी दिया है। नाटक के मुख्य पात्र हैं—राजा हरिश्चन्द्र, तारामती, रोहित, विश्वामित्र, विदूषक नक्षत्र आदि। नक्षत्र के कंठ से गवाया गया हास्यगीत 'रंगस गयि बेरंगी...' खूब लोकप्रिय हुआ था। जहाँ तक इस नाटक की टेक्नीक का प्रश्न है, यह नाटक संस्कृत नाट्यकला से प्रभावित था। इसमें भी प्रारम्भ में सूत्रधार मंच पर आकर नाटक की भूमिका पर प्रकाश डालता तथा मार्मिक बिन्दुओं पर विदूषक सहसा दर्शकगण का मनोरंजन करने उपस्थित हो जाता। कथानक चूँकि धार्मिक था इसलिये इसमें संस्कृत शब्दों की बहुलता थी। इस नाटक के प्रथम दृश्य से एक अंश देखिये—

इन्द्र—(बोस वाविथ) हे त्रिभुवन नाथ !

सेवक—महाराज, शाहि रोज़ शामिन दुश्मन राजा सोरुन गछुन नाश।
अगि रुछिन गुर्ज़ व आश। वनुन छु कारण-अज़ कव्हू छु मन उदास।

इन्द्र— सेवको, तोहि क्या वनोव कारण, मन छु म स्यठा वारन।

वशिष्ठ—हे राज, च़ छुख वोश स वोश त्रावान, मनुक प्रयोजन कोनु छुख वावान।

इन्द्र— महर्षिजी, अज़ पेयि मे च़ेतस अख कथा। मेय केंह सोचनस न सामर या। मन छुम गोमुत स्यठा व्याकुल। आराम छुम न बिलकुल। राजुक ति छुम शिवान रोज़ुन दुशवुन।

विश्वामित्र—च़ क्याहजि छुख वाक करान, कम कथ छुय मनस मंज़ सोरान।
मन च़ क्याह दूर छुम मनस मंज़। ब कर दूर्य सु काशनुक संज़।

[इन्द्र— (निःश्वास छोड़कर) हे त्रिभुवननाथ!

सेवक— महाराज, आपका राज्य नाश-रहित हो। शत्रुओं का नाश हो। हमें तो आपकी ही आशा है। आज आपका मन उदास क्यों है।

इन्द्र— सेवको, तुम्हें क्या बताऊँ। मन विकल हो रहा है।

वशिष्ठजी—हे राजन आप बार-बार निःश्वास छोड़ रहे हैं, मन की बात व्यक्त क्यों नहीं करते।

इन्द्र— महर्षिजी, आज मुझे बात एक आ रही है याद। मन बहुत व्याकुल हो गया है। आराम भी छूट रहा है। राज्य का रहना भी मुश्किल दिखाई दे रहा है।

विश्वामित्र—आप चिन्ता क्यों कर रहे हैं। मन में कौन-सा शोक समाया हुआ है, मैं उसे अभी दूर कर देता हूँ।]

नन्दलाल कौल ने और भी कुछ नाटक लिखे जिनमें उल्लेखनीय हैं—'सावित्री-सत्यवान', 'कृष्ण-सुदामा', 'रामुनराज' आदि। ये सभी नाटक मंच पर खेले गये किन्तु इन्हें उतनी सफलता नहीं मिली जितनी 'सत्यच काहवट' को प्राप्त हुई थी।

नन्दलाल कौल के पश्चात् कश्मीरी नाटककारों की परंपरा में सवश्री गुलाम नबी सोज़ (१९१६–१९४१), ताराचन्द बिसमिल (१९०४–१९४८) तथा नीलकण्ठ शर्मा (१८८८–१९७०) के नाम उल्लेखनीय हैं। इन तीनों ने नन्दलाल कौल की ही नाट्यकला का अनुसरण किया। गुलाम नबी सोज़ ने 'लैला-मजनू' व 'शीरीं-खुसरो' शीर्षक दो संक्षिप्त नाटक लिखे। ये दोनों नाटक 'राजपाल-ग्रामोफोन-कम्पनी' की ओर से रिकार्ड भी हुये थे। जनता ग्रामोफोन पर इन नाटकों को सुनकर आनन्द लेती थी।

ताराचन्द बिसमिल ने नन्दलाल कौल के'सत्यच काहवट' से प्रभावित होकर सत्यवादी

हरिश्चन्द्र के जीवनवृत्त पर एक नया नाटक 'सत्युच वथ' (सत्य का मार्ग) और लिखा। यह नाटक १९३८ में हब्बाकदल, श्रीनगर के प्रकाशक श्री अली मुहम्मद ने प्रकाशित किया था। इसके अलावा बिसमिल ने 'अकनन्दुन', 'रामावतार', 'प्रेमच काहवट' आदि कुछ और छोटे-मोटे नाटक लिखे। पं० नीलकण्ठ शर्मा ने 'बिलवा मंगल' तथा 'स्वप्न-वासवदत्ता' शीर्षक दो नाटक लिखे। 'स्वप्नवासदत्ता' भास के प्रसिद्ध संस्कृत-नाटक का स्वतन्त्र रूपांतर था।

सन् १९३८ में मोहीउद्दीन का नाटक *'ग्रीस्यसुन्द गरु'* प्रकाशित हुआ। तक-नीक की दृष्टि से यह एक नया प्रयोग था। संवाद संक्षिप्त तथा प्रवाहशील थे। उनमें पूर्ववर्ती नाटकों की तरह काव्यात्मकता का पुट न था। गीत-संयोजना भी इस नाटक में नहीं के बराबर थी। वर्ण्य-विषय भी एकदम सामयिक तथा यथार्थता लिये हुये था। इसमें जागीरदारी निज़ाम में पिसते आ रहे एक गरीब किसान की दुर्दशा का चित्रण किया गया था। यह नाटक दो पत्रिकाओं 'प्रताप' व 'गुलरेज़' में किस्तों में छपा था।

सन् १९४२ से लेकर १९४७ तक की छः वर्षीय कालावधि ने कश्मीरी रंग-मंच को एक नया मोड़ दिया। कश्मीरी कलाकारों ने पहली बार मिलकर इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि इस प्रदेश में भी 'इण्डियन पीपुल्ज़ थियेटर ओर-गनाइज़ेशन' जो उस समय देश में कार्यरत थी, की एक शाखा खुलनी चाहिए ताकि कलाकारों को अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए समुचित अवसर मिल सके। उन्हीं दिनों उक्त नाट्य-संस्थान के प्रमुख कार्यकर्ता प्रसिद्ध अभिनेता बलराज साहनी कश्मीर आये और उन्होंने यहाँ के कलाकारों से कश्मीर में इण्डियन पीपुल्ज़ थियेटर ओरगनाइज़ेशन की शाखा खोलने की सम्भावनाओं पर विचार-विमर्श किया। प्रदेश-सरकार चूँकि ऐसे संगठनों के विरुद्ध थी। अतः निश्चित यह हुआ कि आई-पी-टी की शाखा खोलने से पूर्व एक ऐसा नाटक मंच पर प्रस्तुत किया जाये जो जनता में देश प्रेम की भावना को जगा सके तथा उनमें नाटक के प्रति रुचि उत्पन्न करे और बाद में एक नाटक-मण्डली गठित की जाये जिसका नाम आई-पी-टी के स्थान पर कुछ और रखा जाए। नाटक के लिए आलेख तैयार करने का काम प्रसिद्ध कश्मीरी कथाकार स्वर्गीय प्रेमनाथ परदेसी को सौंपा गया। परदेसी जी ने १९४५ में 'बतहर' शीर्षक से एक नाटक तैयार किया। इस नाटक में परदेसी जी ने प्रदेश की खाद्य समस्या तथा भुखमरी का चित्रण किया था। प्रदेश-सरकार से जब इस नाटक को रंगमंच पर खेलने की इजाज़त माँगी गई तो उस समय के गवर्नर महाराजकृष्ण दर ने यह कहकर इस पर रोक लगादी कि इस नाटक में सरकार-विरोधी तत्वों को उभारा गया है। सरकार के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई किन्तु उस आवाज को बुरी तरह से कुचला गया और इस कारवाई में 'बतहर' नाटक का आलेख भी सरकार ने ज़ब्त कर लिया।

इतना होते हुए भी कलाकारों का उत्साह भंग न हुआ। वे कश्मीरी रंगमंच व नाटक को एक स्थायी रूप देने के लिए कटिबद्ध रहे। इसी दौरान 'श्रीप्रताप ड्रामा क्लब', 'नेशनल ड्रामा क्लब' तथा 'सुधार समिति ड्रामा क्लब' नाम से तीन नाट्य-संस्थायें स्थापित की गईं। इन तीनों संस्थाओं को श्रीनगर के युवा कलाकार चलाते थे। इनमें 'सुधार समिति क्लब' द्वारा प्रस्तुत 'विधवा' नाटक काफी लोकप्रिय रहा। इस नाटक में एक विधवा के दारुण-जीवन की मर्मस्पर्शी कथा कही गई थी। इस नाटक के गीतों की धुनें प्रसिद्ध संगीतकार मोहनलाल ऐमा ने तैयार की थीं।

सन् १९४७ में कबाइली-आक्रमण का प्रतिकार करने तथा जनता में देशभक्ति की भावना को जगाने के लिए कश्मीर के तरुण साहित्यकार और कलाकार इकट्ठे हुये और उन्होंने 'कल्चरल फ्रंट' नाम से एक साहित्य-परिषद् बनाई। इस परिषद् के तत्वावधान में अनेक साहित्यकार प्रकाश में आये और उन्होंने कवितायें, कहानियाँ, नाटक आदि लिखे जिनका मूल स्वर देशभक्ति था। आततायियों को मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए 'कश्मीर यह है' नामक एक नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किया गया। यह नाटक उर्दू में लिखा गया था किन्तु इसके गीत कश्मीरी में लिखे गए थे। इस नाटक में पहली बार स्वेच्छा से स्त्री-पात्रों ने पुरुषों के साथ काम किया। इसके बाद प्रेमनाथ परदेसी का एक अन्य नाटक 'शहीद शेरवानी' मंच पर खेला गया। बारामूला निवासी शेरवानी ने किस प्रकार मातृभूमि की रक्षा के लिये कबाइलियों के नापाक इरादों को विफल बनाया तथा अन्त में अपनी जान दे दी—इस नाटक का वर्ण्य-विषय था। इस नाटक के लिए गीत कविवर 'महजूर' ने लिखे थे। वैसे, यह नाटक सफल न हुआ क्योंकि अविकसित एवं सीमित रंगमचीय कला शहीद शेरवानी की उन उपलब्धियों को उस रूप में प्रस्तुत न कर सकी जिस रूप में जनता को अपेक्षा थी।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् कश्मीरी रंगमंच व नाटक-साहित्य उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होने लगा। 'कल्चरल फ्रंट' के सतत प्रयासों द्वारा कश्मीरी नाटकों का प्रचार-प्रसार ग्रामीण क्षेत्रों में भी बढ़ गया। श्रमिक एवं कृषक वर्ग में नाटक के प्रति रुचि जगाने के लिए नाटककारों ने छोटे-छोटे प्रभावपूर्ण नाटक लिखे जिनका कथानक श्रमिक एवं कृषक वर्ग की विभिन्न समस्याओं पर आधारित था। ग्रामीण-समाज में ये नाटक खूब लोकप्रिय हुए क्योंकि इन में किसानों की ज़िन्दगी तथा उनकी विभिन्न गतिविधियों का अच्छा-खासा वर्णन था। इस प्रसंग में 'तीन बट्टा चार' और 'डालर साहब' नाटकों के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों नाटक अपने समय में काफी लोकप्रिय हुए थे। 'तीन बट्टा चार' नाटक का मूल संदेश यह था कि उपज का तीन-चौथाई भाग काश्तकार को मिलना चाहिए और एक-चौथाई भाग ज़मींदार को। इस प्रगतिवादी विचारधारा को प्रदेश सरकार भी व्यावहारिक रूप देना चाहती थी तथा 'तीन बट्टा चार' नाटक ने इसके लिए अनुकूल पृष्ठभूमि तैयार की। 'डालर

माहव' हाकिम वर्ग द्वारा अधिक मुनाफा कमाने के लिये यन्त्रीकरण-संयोजना पर व्यंग्य था। उक्त दोनों नाटक सर्वश्री सोमनाथ जुत्शी, नूर मुहम्मद रोशन, पुष्कर भान तथा प्राण किशोर के सामूहिक परिश्रम के परिणाम थे।

'कल्चर फ्रन्ट' के टूट जाने पर 'कल्चर कांग्रेस' तथा बाद में 'भाल स्टेट कल्चरल कांग्रेस' नाम की साहित्य-संस्थायें बनीं। इन संस्थाओं का लक्ष्य कश्मीरी गद्य का समुचित विकास करना था। कश्मीरी नाट्यकला में नूतन प्रयोग करना भी इन संस्थाओं का ध्येय रहा। सन् १६५३ में पहली बार एक ओपेरा (गीतिनाट्य) 'बोम्बर येम्बरज़ल' स्टेज पर प्रस्तुत किया गया जिसकी दर्शकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। इस गीतिनाट्य के लेखक कश्मीर के प्रसिद्ध कवि दीनानाथ नादिम थे। इस प्रतीकात्मक ओपेरा में असत्य के ऊपर सत्य की, अन्याय के ऊपर न्याय की तथा साम्राज्यवाद के ऊपर लोकतन्त्रवाद की विजय दिखाई गई थी। पतझर और प्रभंजन इस गीतिनाट्य में साम्राज्यशाही के प्रतीक थे जो हरीभरी फुलवाड़ी के भोले सदस्यों—भौंरे, गुललाला, टेकबटनी आदि का जीना दूभर कर देते हैं। अन्त में पतझर और प्रभंजन को हार स्वीकार करनी पड़ती है। रंगमंचीय सज्जा की दृष्टि से यह ओपेरा अपूर्व बन पड़ा था।

सन् १६५६ में पहली बार सरकार की ओर से 'जश्न-ए-कश्मीर' मानने की योजना कार्यान्वित हुई। इसके अन्तर्गत सांस्कृतिक एवं साहित्यिक समारोह सम्पन्न हुये। नाटक प्रतियोगितायें, कवि-सम्मेलन, संगीत-समारोह आदि आयोजित किये गए। सन् १६५६ के 'जश्न-ए-कश्मीर' के दौरान जो नाटक मंच पर प्रस्तुत किये गए उनमें श्री दीनानाथ नादिम व नूरमुहम्मद रोशन का ओपेरा 'हीमाल नागराय' 'नौकी त वरी', अमीन कामिल का 'हुब्बाखातून' आदि उल्लेखनीय हैं।

सन् १६५६ के बाद कश्मीरी नाटक-साहित्य में उल्लेनीय परिवर्तन देखने को मिलते हैं। मौलिक नाटकों की सर्जना के साथ-साथ अब अंग्रेजी, बंगला आदि नाटकों के रूपान्तर भी सफलतापूर्वक किये जाने लगे। नाटकों का शिल्प पक्ष भी अब उत्तरोत्तर समृद्ध हो गया। सन् १६५६ के बाद जो नाटक लिखे गए, उनमें प्रमुख हैं—श्री अलीमुहम्मद लोन का 'विज छि सॉन्य', रोशन का 'चोर बाजार', अमीन कामिल का 'पगाह छु गाशदार', 'पुष्कर भान' का 'तन तड़ाक' और 'हीरो-मचामा सिरीज', अख्तर मोहीउद्दीन का 'नस्तिहुन्द सवाल' और 'शीश त संगिस्तान', राधाकृष्ण ब्रारू का 'यादू' सोमनाथ साधू का 'ग्रैण्ड रिहर्सल', सुदामाजी का 'मिलचार' आदि। टैगोर के चार नाटकों का कश्मीरी रूपान्तर श्री नूर मुहम्मद रोशन ने किया। इनके नाम हैं—'चोरवानी', 'मालनी', 'चाण्डाल कट' और 'वोज़िल्य गोलाब'। श्री अमीन कामिल ने भी टैगोर के दो नाटकों का अनुवाद किया। इनके नाम हैं—'राज त रॉन्य' और

'हावपर'। अंग्रेजी से अनूदित नाटकों में उल्लेखनीय हैं—इब्सन का 'वाइल्ड डक' और 'पोरटम'। इन दोनों नाटकों के अनुवादक श्री सोमनाथ जुत्शी हैं।

कश्मीरी रंगमंच व नाटक के इतिहास पर विचार करते समय 'रेडियो कश्मीर' के अमूल्य योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। यह प्रसारण-केन्द्र सन् १६४८ से कश्मीरी साहित्य, विशेषकर कश्मीरी गद्य की अथक सेवा कर रहा है। कश्मीरी साहित्य को जनता तक पहुँचाने तथा उनमें कश्मीरी नाटक, एकांकी, फीचर आदि के प्रति रुचि व निष्ठा जगाने में इस केन्द्र ने बहुमूल्य कार्य किया किया है। नाटक के क्षेत्र में तो इसका योगदान सर्वोपरि है। सन् १६७० तक इस केन्द्र से ४०० से ऊपर कश्मीरी नाटक प्रसारित हो चुके थे। रेडियो-कश्मीर से प्रसारित होने वाले नाटकों में अनेक इतने लोकप्रिय हुए कि उन्हें दोबारा प्रसारित किया गया। इन रेडियो-नाटकों में उल्लेखनीय हैं—अलीमुहम्मद लोन के 'अगर आस सोरि', महान' और 'ताज्य बद्‌य कान', प्रेमनाथ परदेसी का 'बुद गोजवोर', अमीन कामिल का 'वदरान्य', सोमनाथ जुत्शी का 'विजिवाव', नूरमुहम्मद रोशन का 'मिसकीन बुड', सूफी गुलाम मुहम्मद का 'वेछक्ठ' आदि। कुछ ओपेरा भी प्रसारित हुए जिनमें उल्लेखनीय हैं—मुज्जफर आजम का 'सन्य केसर', अमीन कामिल के 'बोम्बर त लोलरे' तथा 'गुलरेज'।

## कहानी और उपन्यास

कश्मीरी कहानी भी आधुनिककाल की ही देन है। लगभग बीस वर्ष पूर्व 'कल्चरल कांग्रेस' के तत्वावधान में हुई २५ फरवरी १६५० की साहित्यिक बैठक में पहली कश्मीरी कहानी 'येलि फोल गाश' पढ़ी गई। इसके लेखक थे श्री सोमनाथ जुत्शी।[१] इसके बाद 'कल्चरल कांग्रेस' के ही अन्य प्रगतिवादी सदस्य-साहित्यकारों ने कश्मीरी कहानी को अपना बहुमूल्य सहयोग देकर संवर्द्धित किया। इस साहित्यकार मण्डली में सोमनाथ जुत्शी के अलावा सर्वश्री अब्दुल अजीज हारून, दीनानाथ नादिम, नूर मुहम्मद रोशन, रहमान राही, मिर्जा आरिफ आदि के नाम उल्लेनीय हैं। नादिम की कहानी 'जवाबी कार्ड' और 'शीन प्यतो-प्यतो', रोशन की 'नेहगट', हारून की 'जून' व 'भ्रम', राही की अनूदित कहानी 'येलि सु थन प्यव', आरिफ की 'जय' आदि कहानियाँ कश्मीरी कहानी-साहित्य के विकास की परम्परा में प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। 'कल्चरल कांग्रेस' का गठन चूँकि प्रगतिवादी विचारधारा के आधार पर हुआ था अतः उक्त कहानियों के कथानक प्रायः उपदेशात्मक तथा आदर्शप्रधान ही रहे। उनमें जीवन के यथार्थ का चित्रण बहुत कम था। 'कल्चरल कांग्रेस', दरअसल, साहित्य के क्षेत्र में कबाइली-आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए प्रगतिशील लेखकों व चिन्तकों का एक मोर्चा था जिसने अपनी सक्रिय साहित्यिक गतिविधियों से प्रदेश में धर्मनिरपेक्ष

१. 'अ.ज्युक काशुर अफसानु' सम्पादक, मुहम्मद अमीन कामिल, पृ० ५, १६६७

भावना के संतुलन को डगमगाने से रोके रखा, जनता में देशप्रेम की भावना को जगाया तथा कश्मीरी साहित्य को गद्य की विभिन्न विधाओं से परिचित कराने का बीड़ा उठाया। अतः अपने प्रारम्भिक प्रयासों में इस मोर्चे ने जो भी कार्य किये वे प्रगतिवादी विचारधारा से युक्त थे। यही कारण है कि १९५० से लेकर १९५५ तक जो कहानियाँ लिखी गईं उनमें प्रचारात्मकता का पुट विशेष रूप से रहा है।

सन् १९५५ लेकर १९६० तक की कालावधि कश्मीरी कहानी-साहित्य की महत्वपूर्ण कालावधि है। कहानिकारों का ध्यान पहली बार कहानी के शिल्प की ओर गया। उसकी टेकनीक में एक विशेष परिवर्तन आया। अब कहानी महज़ एक 'लेक्चर' न थी अपितु वह मानव-चरित्र के गूढ़तम रहस्यों, उसकी समस्याओं व जीवन-दृष्टियों को मार्मिक ढंग से प्रकाशित करने वाली विधा बन चुकी थी। इस प्रसंग में अख्तर-मोहीउद्दीन का नाम गिनाया जा सकता है जिन्होंने अपनी अनवरत साहित्य-साधना से कश्मीरी कहानी-कला को एक नयी दिशा प्रदान की तथा आने वाले कहानीकारों के लिए प्रयोग के नये मार्ग खोल दिये। अख्तरमोहीउद्दीन की 'दन्दवजुन', 'दरियायि-हन्द येज़ार', 'दाग', 'आदम छु अजीब ज़ाथ', 'चस' आदि कहानियाँ कश्मीरी कहानी-साहित्य की अमर कथाकृतियाँ बन चुकी हैं। अख्तर के दो कहानी-संग्रह 'सतसगर' तथा 'सोंज़ल' प्रकाशित हो चुके हैं। 'सतसगर' पर कहानीकार को १९५८ का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिल चुका है।

अख्तरमोहीउद्दीन के बाद कश्मीरी-कहानी उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होती रही। अनेक कहानीकार इस रचना क्षेत्र में उतरे तथा उन्होंने लगन व परिश्रम से कश्मीरी कहानीकला को सभी दृष्टियों से समुन्नत किया। कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हुये जिनमे उल्लेखनीय हैं—बंसी निर्दोष का 'आदम छु यिथ बदनाम', डा० शंकर रैणा का 'ज़्रतनिज़ूल', अमीन कामिल का 'कथि मंज़ कथ' आदि। इन सग्रहों में सूफी गुलाम मुहम्मद की 'मालदद,' कामिल की 'पोशकल' व 'नोवतावन', बन्सी निर्दोष की 'सोचुन' डा० शंकर रैणा की 'वन्य कहंज़ वारुय' आदि कहानियाँ बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं।

ऐसे कहानीकारों की संख्या भी कम नहीं है जिनकी कहानियाँ स्वतन्त्र संग्रहों के अन्तर्गत सामने नहीं आ सकीं किन्तु जिन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ लिखकर कश्मीरी कहानी के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। ऐसे कहानीकारों में सर्वश्री उमेश कौल, हृदयकौल भारती, गुलाम रसूल सन्तोष, अजास तालिब, गुलामनबी शाथ, हरिकृष्ण कौल, गुलाम नबी शाकर, रतनलाल शान्त, फारूक मसूदी, ताज बेगम रेंज़ू आदि के नाम गिनये जा सकते हैं। उमेश कौल की कहानी 'पद्ुर कथ', भारती की 'तेह', 'शिरम्न', 'दाहनूनुक रोगर ज़िकरुष

मिशीन' आदि, दीपक कौल की 'सफ़र त सायबोन', संतोष की 'खांदार' व 'दोद त दग', अख्तर शाकिरा की 'वय कुतालन्य निश नजात', गुलाम नबी बाबा की 'रंगव मंज़ बद-रंग', हरिकृष्ण कौल की 'ताफ़', गुलाम नबी शाकर की 'अवन सोंतख पोश', शान्त की 'छायि गरव', फ़ारूक़ मसूदी की 'स्यठा मोमूनी', ताज बेगम रीज़ू की 'अम्तान डेड़ित' व 'रव येलि खति' आदि कश्मीरी की विकसित कहानीकला का प्रतिनिधित्व करती हैं।

कहानी की भाँति कश्मीरी उपन्यास का इतिहास भी ज़्यादा पुराना नहीं है। कश्मीरी का प्रथम उपन्यास 'ज़ात बुतरात' सन् १९५५ में लिखा गया। इसके लेखक थे श्री हबीब कामरान। इस उपन्यास का प्रथम अध्याय सन् १९५५ में 'कोंगपोश' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। शेष अध्याय अप्रकाशित ही रहे। इसके बाद तीन उपन्यस लिखे गये। इनके नाम हैं—अख्तमोहीउद्दीन का 'दोद दग', अमीन कामिल का 'गटि मंज़ गाश' और अली मुहम्मद लोन का 'असय ति छि इन्सान'। कुछ विद्वान 'दोद दग' को कश्मीरी का प्रथम उपन्यास मानते हैं क्योंकि 'ज़ात बुतरात' कभी भी पूर्ण रूप से प्रकाशित होकर सामने न आ सका तथा लोग उसे पढ़ न पाये। 'दोद दग' एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें दो बहनों फाता और राजा के जीवन-संघर्ष, अब्दुल गनी की लोलुपता तथा दामस साहब के पतन की कहानी वर्णित है। 'गटि मंज़ गाश' कबाइली-आक्रमण की पृष्ठभूमि पर लिखा गया हिन्दू-मुस्लिम मेल-जोल व भाईचारे की भावना को जगाने वाला उपन्यास है। 'असय ति छि इन्सान' मूलतः एक रिपोर्ताज है जिसकी शैली औपन्यासिक कला के काफ़ी निकट है। उक्त तीन उपन्यासों के अति-रिक्त टैगोर के उपन्यास 'चोखेर बाली' का कश्मीरी रूपांतर भी मिलता है। रूपांतर-कार हैं श्री पृथ्वीनाथ पुष्प तथा उपन्यास का शीर्षक है 'अच्छ किदुर'। नाटक और कहानी के मुकाबले में कश्मीरी का उपन्यास-साहित्य अत्यल्प है। इस विषम स्थिति के क्या कारण हैं—इस पर विचार करना अपेक्षित है। पहला तथा मुख्य कारण उप-न्यास-प्रकाशन के लिये समुचित प्रोत्साहन तथा सुविधाओं का अभाव है। कहानी, नि-बन्ध या एकांकी किसी भी पत्र-पत्रिका में सुगमतापूर्वक स्थान पा सकते हैं किन्तु समू-चे उपन्यास का पत्र-पत्रिका में छपना कठिन है। सम्भवतः यही कारण है कि लेखक-गण इस विधा के पीछे नहीं पड़े। उन्होंने छोटी-मोटी कहानियाँ तथा अन्य प्रकार की गद्य रचनायें लिखकर ही साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने की कोशिश की। दूसरा का-रण यह है कि जागरूक पाठकों के अभाव ने उपन्यासकारों का उत्साह भंग कर दिया। उपन्यासकारों के लिये उपन्यास लिखना उतना कठिन कार्य न था जितना कि लिखे को आगे सरकाना। कुछ वर्ष पूर्व राज्य की कल्चरल अकादमी ने लेखकों को पुस्तक-प्रकाशन के लिये अनुदान देने की योजना कार्यान्वित की है। आशा है कि इस योजना से कश्मीरी उपन्यास-साहित्य को गति मिलेगी।

## पत्रकारिता

सन् १६३६ तक कश्मीरी पत्रकारिता की कोई स्पष्ट परंपरा नहीं मिलती है।[1] सन् १६३६ में पहली बार प्रो० जे० एल० कौल के सद्प्रयत्नों से श्रीप्रताप कालेज श्रीनगर की पत्रिका 'प्रताप' में कश्मीरी विभाग जोड़ दिया गया। इसी पत्रिका में नन्दलाल कौल के प्रसिद्ध नाटक 'सत्यच वाहवट', 'पज़ पतिव्रता' आदि प्रकाशित हुये थे। 'प्रताप' का यह कश्मीरी विभाग कई वर्षों तक कश्मीरी पत्रकारिता की कमी को पूरा करता रहा। इस विभाग के सम्पादक-मण्डल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसने केवल कालेज के छात्र-लेखकों की ही रचनायें इस पत्रिका में प्रकाशित नहीं की अपितु उसने प्रदेश के विभिन्न उच्चकोटि के साहित्यकारों की रचनायें भी इसमें दे दी। ('प्रताप' की अभी भी यही नीति है।) कुछ वर्षों के बाद अमरसिंह कालेज की 'लालारुख' पत्रिका ने भी 'प्रताप' की नीति का अनुसरण किया। दोनों पत्रिकाओं ने कश्मीरी साहित्य की अमूल्य सेवा की।

सन् १६४० में कश्मीरी का प्रथम साप्ताहिक पत्र 'गाश' प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशक मुहम्मद अमीन थे। इस पत्र का साहित्यिक क्षेत्रों में खूब स्वागत हुआ। पत्र में समाचारों के अतिरिक्त कविवर 'मजहूर' की कवितायें नियमित रूप से छपती थीं। एक स्तम्भ 'असुन त गिन्दुन' (हँसी और खेल) भी था जिसके अन्तर्गत हास्य-विनोद विषयक सामग्री रहती थी। यद्यपि यह पत्र अर्थाभाव के कारण अधिक समय तक न चल सका और इसके केवल दो-तीन अंक ही निकल पाये, तथापि कश्मीरी पत्रकारिता के विकास-क्रम में इसने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। यदि यह पत्र कुछ और समय तक चल पाता तो जिस उद्देश्य को लेकर यह पत्र निकला था उसे वह अवश्य प्राप्त कर लेता। इस पत्र से एक अंश दिया जा रहा है—

'कशीरि प्यठ लाहोर ताम्य यियि आमन्द हवाई जहाजन हन्दि ज़रियि डाक निनुन त अननुन, येलि आमन हूक ति यिवान गछान हवाई जहाजन हन्दि ज़रियि। निहाबा छुपमि खातर इस्तजाम यिवान करनु, अस हवाई गर यियि पीर पंचाल कोहस प्यठ त ब्याख यियि दामोदर वुदरि प्यठ बनावनु। अमिन सारिनय चीज़न हुन्द खरच यियि सरेज हुकूमत। विराय आति कशीरि प्यठ लाहौर ताम्य अकिस सवारि पंजाह

1. एक ईसाई मिशनरी द्वारा प्रकाशित एक कश्मीरी पत्र का उल्लेख अवश्य मिलता है जो मिशन-अस्पतालों के रोगियों के मनोरंजन के लिए निकाला गया था। किन्तु इस पत्र का क्या नाम था तथा इसके कितने अंक निकले—मालूम नहीं हो सका है।

रोपयि ।'

'गाश १८ भाद्रपद, सं० १६६७

भविष्य में कश्मीर से लाहौर तक हवाई जहाज के जरीये डाक लाई और ले जायी जायगी । लोग भी हवाई जहाज से यात्रा कर सकेंगे । इसके लिये इन्तजाम किए जा रहे हैं । एक हवाई अड्डा पीरपांचाल पर्वत के ऊपर और दूसरा दामोदर घाटी पर बनाया जायेगा । इन कामों के लिए अँग्रेज-हकूमत सारा खर्चा देगी । कश्मीर से लाहौर तक का एक सवारी का किराया पचास रुपया होगा ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १८४६ में 'कश्मीर कल्चरल कांग्रेस' के तत्वावधान में 'कोंगपोश' नाम की एक मासिक-पत्रिका प्रकाशित हुई। आर्थिक-संकट के कारण यह पत्रिका भी अधिक समय तक न चल सकी तथा १६५२ में इसका प्रकाशन अस्थायी रूप से रुक गया । इसके बाद १६६२ तक यह पत्रिका रुकती-निकलती हुई प्रकाशित होती रही । प्रकाशन के प्रारम्भिक वर्षों में यह पत्रिका न केवल 'कश्मीर कल्चरल कांग्रेस' की आवाज जनता तक पहुंचाती रही अपितु इस संस्था के प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं को भी जनता तक पहुँचाती रही । कश्मीरी गद्य को एक स्थिर रूप देने के साथ-साथ इस पत्रिका ने विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों के लिए स्वीकृत फारसी-लिपि के विभिन्न चिन्हों को भी काफी लोकप्रिय बना दिया ।

सन् १६५२ में एक और पत्रिका सामने आई। इसका नाम था 'गुलरेज' और इसके प्रकाशक थे श्री मिर्जा आरिफ । यह पत्रिका सन् १६५५ तक नियमित रूप से निकलती रही । इस पत्रिका के माध्यम से कश्मीरी के अनेक साहित्यकार प्रकाश में आ गये ।

अगस्त १६५७ में दिल्ली से 'पंपोश' तथा कश्मीर से 'तामीर' नाम की दो पत्रिकायें निकलीं । ('तामीर' मूलतः उर्दू पत्रिका थी किन्तु उसमें कुछ पृष्ठ कश्मीरी के लिए सुरक्षित रखे जाते । ) सन् १६६४ में गुलाब नबी खयाल ने 'वतन' नाम से एक पत्रिका निकाली जो बाद में अर्थाभाव के कारण नियमित रूप से प्रकाशित न हो सकी । १६६६ में श्री गुलाम रसूल संतोष ने 'कागुर अदब' शीर्षक से एक साहित्यिक-पत्रिका निकाली । राज्य की कल्चरल आकादमी के तत्वावधान में एक कश्मीरी त्रैमासिक 'शीराजा' पिछले छः-सात वर्षों से नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। इसके अतिरिक्त अकादमी की ही ओर से एक वार्षिक पत्रिका 'सोन अदब' (हमारा-साहित्य) प्रकाशित होती है । दोनों में कश्मीरी भाषा और साहित्य विषयक निबन्धों के अतिरिक्त कवितायें, कहानियाँ, नाटक आदि प्रकाशित होते हैं ।

साप्ताहिक पत्र 'चमन' और 'उस्ताद' ने भी कश्मीरी पत्रकारिता की कुछ वर्षों तक सेवा की किन्तु बाद में ये दोनों पत्र आर्थिक-संकट के कारण बन्द हो गये ।

## समालोचना

कश्मीरी का समालोचना साहित्य मुख्यतया चार रूपों में मिलता है। समालोचकों का एक वर्ग ऐसा है जिसने अंग्रेजी भाषा में कश्मीरी साहित्य का मूल्यांकन किया। कुछ समालोचकों ने उर्दू में, कुछ ने हिन्दी में तथा कुछ ने अपनी मातृ-भाषा कश्मीरी में उसका महत्वांकन किया।

अंग्रेजी समालोचकों में सर्वश्री ग्रियर्सन, रिचर्ड टेंपल, जे० हिण्टन नोल्ज, आनन्दकौल बामज़ई, प्रो० जे० एल० कौल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' भाग २ खण्ड ८ में पृष्ठ २३३ से लेकर २५४ तक कश्मीरी भाषा के उद्गम व विकास पर विचार किया है। इसके अतिरिक्त कश्मीरी साहित्य के प्रमुख कवियों लल्लद्यद, दिवाकर प्रकाश, परमानन्द, महमूदगामी आदि के व्यक्तित्व व कृतित्व पर सारगर्भित टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। सन् १८६८ में ग्रियर्सन ने 'कश्मीरशब्दामृत' शीर्षक से कश्मीरी-व्याकरण पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक उन्होंने कश्मीरी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री ईश्वर कौल की सहायता से लिखी थी। सन् १६२० में उन्होंने श्री मुकुन्दराम शास्त्री के सहयोग से प्रसिद्ध संतकवयित्री लल्लद्यद के पदों को 'लल्लवाक्यानि' के अन्तर्गत प्रकाशित किया। सन् १६२४ में सर रिचर्ड टेंपल ने 'द वर्ड आफ लल्ला' शीर्षक से लल्लद्यद के ऊपर एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित करायी। इसमें लल्लद्यद के पदों को तनिक संशोधन, परिवर्धन तथा एक सारगर्भित भूमिका के साथ प्रस्तुत किया गया।

कश्मीरी कहावतों की मार्मिकता की ओर सर्वप्रथम १८८३ ई० में एक ईसाई पादरी जे० हिण्टन नोल्ज़ का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने कश्मीर में ईसाई मिशन संस्था स्थापित करते समय कश्मीरी भाषा सीख ली। लोक-व्यवहार में प्रचलित कश्मीरी मुहावरों तथा कहावतों की सजीवता से प्रभावित होकर उन्होंने उनका संकलन करना प्रारम्भ कर दिया। अथक परिश्रम के पश्चात् सन् १८८५ में 'ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेइंग्स' नाम से कश्मीरी कहावतों का एक सुन्दर कोष लन्दन से प्रकाशित कराया। रोमन लिपि में लिखित २६३ पृष्ठों के इस कोश में लगभग १५०० मुहावरे, कहावतें तथा अन्य उपदेशात्मक सूत्र संकलित हैं। सन् १८६३ में नोल्ज़ ने कश्मीरी लोक-कहानियों का सुन्दर संकलन भी प्रकाशित कराया।

सन् १६३३ में पण्डित आनन्द कौल बामज़ई ने 'इण्डियन एण्टिक्वरी' नामक पत्रिका में तीन लेख प्रकाशित कराए जिनमें उन्होंने उन कश्मीरी कहावतों को प्रकाशित कराया जो श्री नोल्ज़ अपने कोश में नहीं दे पाये थे। इन लेखों को पाँच छोटे-छोटे भागों में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया है। इनमें १२५ कहावतें तथा १५ उपदेशात्मक सूक्तियाँ संकलित हैं। बामज़ई साहब ने लल्लद्यद के उन ७५ पदों (वाखों) को भी 'इण्डियन एण्टिक्वरी' में प्रकाशित कराया जो न ग्रियर्सन महोदय और

रोपयि।'

'गाश १८ भाद्रपद, सं० १९९७

भविष्य में कश्मीर से लाहौर तक हवाई जहाज़ के ज़रीये डाक लाई
ले जायी जायगी। लोग भी हवाई जहाज से यात्रा कर सकेंगे। इसके लिये इन्त
किए जा रहे हैं। एक हवाई अड्डा पीरपांचाल पर्वत के ऊपर और दूसरा काश
घाटी पर बनाया जायेगा। इन कामों के लिए अंग्रेज-हकूमत सारा खर्चा देगी। कश
से लाहौर तक का एक सवारी का किराया पचास रुपया होगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १८४६ में 'कश्मीर कल्चरल काँग्रेस' के त
वधान में 'कोंगपोश' नाम की एक मासिक-पत्रिका प्रकाशित हुई। आर्थिक-अस
कारण यह पत्रिका भी अधिक समय तक न चल सकी तथा १९५२ में इसका प्रक
अस्थायी रूप से रुक गया। इसके बाद १९६२ तक यह पत्रिका रु
निकलती हुई प्रकाशित होती रही। प्रकाशन के प्रारम्भिक वर्षों में यह पत्रिका
केवल 'कश्मीर कल्चरल कांग्रेस' की आवाज जनता तक पहुंचाती रही अपितु इस का
के प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं को भी जनता तक पहुंचाती रही। कश्मीरी
को एक स्थिर रूप देने के साथ-साथ इस पत्रिका ने विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों के लि
स्वीकृत फारसी-लिपि के विभिन्न चिन्हों को भी काफी लोकप्रिय बना दिया।

सन् १९५२ में एक और पत्रिका सामने आई। इसका नाम था 'गुलरेज़' इ
इसके प्रकाशक थे श्री मिर्जा आरिफ। यह पत्रिका सन् १९५५ तक नियमित रू
निकलती रही। इस पत्रिका के माध्यम से कश्मीरी के अनेक साहित्यकार प्रकाश
आ गये।

## समालोचना

कश्मीरी का समालोचना साहित्य मुख्यतया चार रूपों में मिलता है। समालोचकों का एक वर्ग ऐसा है जिसने अंग्रेजी भाषा में कश्मीरी साहित्य का मूल्यांकन किया। कुछ समालोचकों ने उर्दू में, कुछ ने हिन्दी में तथा कुछ ने अपनी मातृ-भाषा कश्मीरी में उसका मूल्यांकन किया।

अंग्रेजी समालोचकों में सर्वश्री ग्रियर्सन, रिचर्ड टॅंपल, जे० हिण्टन नोल्ज, आनन्दकौल बामज़ई, प्रो० जे० एल० कौल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री ग्रियर्सन ने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' भाग ८ खण्ड ८ में पृष्ठ २३३ से लेकर २५४ तक कश्मीरी भाषा के उद्गम व विकास पर विचार किया है। इसके अतिरिक्त कश्मीरी साहित्य के प्रमुख कवियों लल्लद्द, दिवाकर प्रकाश, परमानन्द, महमूदगामी आदि के व्यक्तित्व व कृतित्व पर सारगर्भित टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। सन् १८९८ में ग्रियर्सन ने 'कश्मीरशब्दामृत' शीर्षक से कश्मीरी-व्याकरण पर एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित की। यह पुस्तक उन्होंने कश्मीरी के प्रसिद्ध विद्वान् श्री ईश्वर कौल की सहायता से लिखी थी। सन् १९२० में उन्होंने श्री मुकुन्दराम शास्त्री के सहयोग से प्रसिद्ध कवयित्री लल्लद्द के पदों को 'लल्लवाक्यानि' के अन्तर्गत प्रकाशित किया। सन् १९२४ में सर रिचर्ड टॅंपल ने 'द वर्ड आफ लल्ला' शीर्षक से लल्लद्द के ऊपर एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकाशित करायी। इसमें लल्लद्द के पदों को तनिक संशोधन, परिवर्तन तथा एक सारगर्भित भूमिका के साथ प्रस्तुत किया गया।

कश्मीरी कहावतों की मार्मिकता की ओर सर्वप्रथम १८८३ ई० में एक ईसाई पादरी जे० हिण्टन नोल्ज़ का ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्होंने कश्मीर में ईसाई मिशन संस्था स्थापित करते समय कश्मीरी भाषा सीख ली। लोक-व्यवहार में प्रचलित कश्मीरी मुहावरों तथा कहावतों की सजीवता से प्रभावित होकर उन्होंने उनका संकलन करना प्रारम्भ कर दिया। अथक परिश्रम के पश्चात् सन् १८८५ में 'ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेइंग्स' नाम से कश्मीरी कहावतों का एक सुन्दर कोश लन्दन से प्रकाशित कराया। रोमन लिपि में लिखित २६३ पृष्ठों के इस कोश में लगभग १४०० मुहावरे, कहावतें तथा अन्य उपदेशात्मक सूत्र संकलित हैं। सन् १८९१ में नोल्ज़ ने कश्मीरी लोक-कहानियों का सुन्दर संकलन भी प्रकाशित कराया।

सन् १९३३ में पण्डित आनन्द कौल बामज़ई ने 'इण्डियन एण्टिक्वरी' नामक पत्रिका में तीन लेख प्रकाशित कराए जिनमें उन्होंने उन कश्मीरी कहावतों को प्रकाशित कराया जो श्री नोल्ज़ अपने कोश में नहीं दे पाये थे। इन लेखों को पाँच छोटे-छोटे भागों में पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित किया गया है। इनमें १२५ कहावतें तथा १५ उपदेशात्मक सूक्तियाँ संकलित हैं। बामज़ई साहब ने लल्लद्द के उन ७५ पदों (वाखों) को भी 'इण्डियन एण्टिक्वरी' में प्रकाशित कराया जो न ग्रियर्सन महोदय और

रोशयि।'

'गाश १८ भाद्रपद, सं० १९९७

भविष्य में कश्मीर से लाहौर तक हवाई जहाज़ के ज़रीये डाक लाई और ले जायी जायगी। लोग भी हवाई जहाज से यात्रा कर सकेंगे। इसके लिये इन्तज़ाम किए जा रहे हैं। एक हवाई अड्डा पीरपांचाल पर्वत के ऊपर और दूसरा दामोदर घाटी पर बनाया जायेगा। इन कामों के लिए अंग्रेज-हकूमत सारा खर्चा देगी। कश्मीर से लाहौर तक का एक सवारी का किराया पचास रुपया होगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १८४६ में 'कश्मीर कल्चरल काँग्रेस' के तत्वावधान में 'कोंगपोश' नाम की एक मासिक-पत्रिका प्रकाशित हुई। आर्थिक-संकट के कारण यह पत्रिका भी अधिक समय तक न चल सकी तथा १९५२ में इसका प्रकाशन अस्थायी रूप से रुक गया। इसके बाद १९६२ तक यह पत्रिका रुक-रुक कर निकलती हुई प्रकाशित होती रही। प्रकाशन के प्रारम्भिक वर्षों में यह पत्रिका न केवल 'कश्मीर कल्चरल काँग्रेस' की आवाज जनता तक पहुँचाती रही अपितु इस संस्था के प्रगतिशील लेखकों की रचनाओं को भी जनता तक पहुँचाती रही। कश्मीरी गद्य को एक स्थिर रूप देने के साथ-साथ इस पत्रिका ने विशिष्ट कश्मीरी ध्वनियों के लिए स्वीकृत फारसी-लिपि के विभिन्न चिन्हों को भी काफी लोकप्रिय बना दिया।

सन् १९५२ में एक और पत्रिका सामने आई। इसका नाम था 'गुलरेज़' और इसके प्रकाशक थे श्री मिर्जा आरिफ। यह पत्रिका सन् १९५५ तक नियमित रूप से निकलती रही। इस पत्रिका के माध्यम से कश्मीरी के अनेक साहित्यकार प्रकाश में आ गये।

अगस्त १९५७ में दिल्ली से 'पंपोश' तथा कश्मीर से 'तामीर' नाम की पत्रिकायें निकली। ('तामीर' मूलतः उर्दू पत्रिका थी किन्तु उसमें कुछ पृष्ठ कश्मीरी के लिए सुरक्षित रखे जाते।) सन् १९६४ में गुलाब नबी ख़याल ने 'वतन' नाम की एक पत्रिका निकाली जो बाद में अर्थाभाव के कारण नियमित रूप से प्रकाशित न हो सकी। १९६६ में श्री गुलाम रसूल संतोष ने 'काशुर अदब' शीर्षक से एक साहित्यिक-पत्रिका निकाली। राज्य की कल्चरल आकादमी के तत्वावधान में एक त्रैमासिक 'शीराज़ा' पिछले छः-सात वर्षों से नियमित रूप से प्रकाशित हो रहा है। इसके अतिरिक्त अकादमी की ही ओर से एक वार्षिक पत्रिका 'सोन अदब' (हमारा साहित्य) प्रकाशित होती है। दोनों में कश्मीरी भाषा और साहित्य विषयक निबन्धों के अतिरिक्त कवितायें, कहानियाँ, नाटक आदि प्रकाशित होते हैं।

साप्ताहिक पत्र 'चमन' और 'उस्ताद' ने भी कश्मीरी पत्रकारिता की कुछ वर्षों तक सेवा की किन्तु बाद में ये दोनों पत्र आर्थिक-संकट के कारण बन्द हो गये।

कश्मीरी के प्रमुख कवियों के व्यक्तित्व व कृतित्व को सोदाहरण पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित करना। इस प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनका विवरण इस प्रकार है।

| | |
|---|---|
| १—आज़ाद | श्री पृथ्वीनाथ पुष्प (१९५९) |
| २—अब्दुल अहद नादिम | मीर गुलाम रसूल नाज़की (१९५९) |
| ३—हब्बाख़ातून | अमीन कामिल (१९५९) |
| ४—ललद्यद | जे० एल० कौल व तालिब (१९५९) |
| ५—हक़्क़ानी | मौलाना फ़ितरत कश्मीरी (१९५९) |
| ६—मक़बूलशाह क्रालवारी | हबीब अल्लाह हामिदी (१९५९) |
| ७—महजूर | श्री पृथ्वीनाथ पुष्प (१९६०) |
| ८—परमानन्द | श्रीकण्ठ तोषखानी (१९६०) |
| ९—रसूलमीर | मुहम्मद यूसुफ़ टेंग (१९६०) |
| १०—शमस फ़क़ीर | शमसउद्दीन अहमद (१९५९) |
| ११—वहाब परे | मोहीउद्दीन हाजिनी (१९५९) |

उक्त सभी पुस्तकें उर्दू में लिखी गई हैं तथा कश्मीरी समालोचना-साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि करती हैं।

हिन्दी में कश्मीरी-समालोचना का श्रीगणेश प्रो० पृथ्वीनाथ पुष्प के उस गवेषणात्मक निबन्ध से होता है जो 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्' पटना द्वारा प्रकीर्ण पुस्तक माला २, [चतुर्दश भाषानिबंधावली] के अन्तर्गत 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' शीर्षक से १९५७ में प्रकाशित हुआ था। इस शोधपूर्ण निबन्ध के माध्यम से पहली बार हिन्दी जगत् कश्मीरी भाषा और साहित्य की विशेषताओं से परिचित हुआ। पुष्पजी ने अपने इस निबन्ध में कश्मीरी के भाषा-क्षेत्र, उसके उद्भव व विकास, उसकी ध्वनियों तथा उसके आधुनिक व प्राचीन साहित्य पर विस्तार से प्रकाश डाला था।[1]

कश्मीर विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग ने कश्मीरी समालोचना साहित्य की पर्याप्त सेवा की है। सन् १९५७-५८ में जब डा० हरिहरप्रसादजी अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुये तो उन्होंने एम० ए० उत्तरार्द्ध के छात्रों को तृतीय प्रश्नपत्र के विकल्प में अनुबन्ध (Dissertation) लिखने की सुविधा दिलाई। अनुबन्ध के लिये जो विषय दिये गये वे मुख्यतः कश्मीरी भाषा और साहित्य सम्बन्धी थे।

१. बिहार-राष्ट्र-भाषा परिषद् पटना के तत्वावधान में इन पंक्तियों के लेखक ने भी दिनांक १८ नवम्बर ७१ को कश्मीरी साहित्य की नव्यतम प्रवृत्तियाँ शीर्षक निबन्ध पढ़ा है। निबन्ध परिषद् द्वारा प्रकाशित हुआ है।

| | |
|---|---|
| ७—श्री भूषणलाल कौल | महजूर और बालकृष्ण शर्मा नवीन का तुलनात्मक अध्ययन' (कश्मीर विश्वविद्यालय |
| ८—श्री जियालाल हण्डू, | कश्मीरी तथा हिन्दी सूफी-काव्य का तुलनात्मक अध्ययन कुरुक्षेत्र (विश्वविद्यालय) |

हिन्दी-माध्यम से जिन अन्य लेखकों ने कश्मीरी—समालोचना साहित्य की अभिवृद्धि की है, उनके नाम हैं—सर्वश्री चमनलाल सपरू, रतनलाल शान्त, जे० एल० जलाली, द्वारिकानाथ गिगू, त्रिलोकनाथ शास्त्री, भद्रीनाथ कल्ला, अवतार कृष्ण राजदान, बलजिन्नाथ पण्डित, त्रिभुवन नाथ शास्त्री, हरिकृष्ण कौल, सोमनाथ रैणा, जियालाल हण्डू, नन्दलाल चत्ता, मोहन कृष्ण दर प्रो० काशी नाथ दर, पृथ्वी नाथ मधुप, ललिता कौल, जवाहर लाल हण्डू, कौशल्या वली आदि। चमनलाल सपरू की 'सतूर के स्वर' (कश्मीर के इतिहास और साहित्य पर १० आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह), पृथ्वीनाथ मधुप की 'कश्मीरी पाठमाला' तथा मोहन-कृष्ण दर की 'कश्मीर का लोकसाहित्य' आदि पुस्तकें कश्मीरी-समालोचना साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

कश्मीर से हिन्दी में जो पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं उन्होंने भी कश्मीरी-समालोचना साहित्य को पर्याप्त उन्नत किया है। 'कश्यप' (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्रीनगर का मुखपत्र) ने पहली बार कश्मीरी भाषा को देव नागरी मे लिपिबद्ध करने का प्रयास किया तथा किन्ही कश्मीरी कहानियो को नागरी में लिपिबद्ध कर पाठकों के समक्ष रखा। आर्थिक-संकट के कारण यह पत्रिका अधिक समय तक न चल सकी। इस पत्रिका के प्रधान-संपादक प्रो० काशीनाथ दर थे। पाक्षिक 'प्रकाश' (ब्राह्मण महामण्डल श्रीनगर का मुखपत्र) मे यद्यपि धर्म-दर्शन सम्बन्धी सामग्री की बहुलता रही तथापि इसके कई अकों मे कश्मीरी भाषा और साहित्य विषयक सामग्री छपती रही। यह पत्रिका तीन वर्षों तक नियमित रूप से प्रकाशित होती रही फिर अर्थाभाव के कारण इसका प्रकाशन बन्द हो गया। इस पत्रिका के प्रधान-सम्पादक श्री सिबन कृष्ण रैणा थे। राज्य के सूचनालय विभाग से कुछ वर्ष पूर्व 'योजना' नाम की एक सुन्दर पत्रिका निकलती थी। इसके प्रत्येक अक में कश्मीरी जीवन, संस्कृति तथा साहित्य सम्बन्धी तीन-चार लेख रहते थे। पाँच वर्षों तक नियमित रूप से निकलते रहने के बाद राज्य-सरकार की व्यय-कटौती नीति के अन्तर्गत इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। प्रारम्भ में इस पत्रिका का सपादन श्रीमती मोहनी मट्टू करती थी। बाद में इसके क्रमशः श्री वेद राही तथा श्री शशिशेखर तोषखानी सम्पादक हुए।

इस समय जो हिन्दी पत्रिकायें कश्मीरी-समालोचना साहित्य की सेवा कर रही हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं—धर्मार्थ ट्रस्ट जम्मू से निकलने वाली मासिक पत्रिका

## अब्दुल अहद 'आज़ाद'

युगकवि 'आज़ाद' का जन्म श्रीनगर से लगभग चौदह मील दूर बडगाम तहसील के रागर गाँव में सन् १९०३ ई० में एक ज़मीदार-घराने में हुआ था। इनके पिता सुलतान डार एक सूफ़ी-सन्त थे जिन्हें अरबी-फारसी तथा इस्लाम-धर्म का अच्छा ज्ञान था। 'आज़ाद' ने उपनी प्रारम्भिक शिक्षा का विवरण स्वयं इस प्रकार दिया है—'सन् १९१६ ई० में मेरे बड़े भाई गुलाम अली ने एक प्राइवेट मकतब खोला। मैंने इस मकतब में इब्तिदाई उर्दू-फारसी की तालीम पाई'[1]। लगभग दो साल तक मकतब में शिक्षा लेने के पश्चात् १९१८ ई० में 'आज़ाद' ने सोलह साल की उम्र में अपने पास के 'ज़ोहामा' गांव के एक सरकारी स्कूल में १३ रुपये प्रतिमास वेतन पर अरबी-फारसी के अध्यापक की नौकरी कर ली। अध्यापन-कार्य के साथ-साथ उन्होंने अपने अध्ययन कार्य को भी जारी रखा। उर्दू भाषा और साहित्य का अध्ययन तत्परतापूर्वक कर लिया तथा सन् १९२४-२६ ई० में मुन्शी आलिम की परीक्षा अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण की। मुन्शी फाज़िल की परीक्षा भी देनी चाही किन्तु स्वास्थ्य गिरजाने की वजह से यह परीक्षा न दे पाये। 'आज़ाद' नितान्त सरल तथा विनोदप्रिय मिज़ाज के व्यक्ति थे। मझला कद, सावला वर्ण तथा गम्भीर मुद्रा—ये इनके व्यक्तित्व की खास खूबियां थी। सादा भेस इन्हें बेहद पसन्द था। सिर पर सदैव साफा बाधते जिससे इनका व्यक्तित्व भव्य लगता। इतना होने हुए भी इनका स्वास्थ्य सदैव नर्म रहा। वात-कफ तथा उदर-रोग इनको बराबर घेरते रहे।

साहित्य-सर्जन की प्रेरणा के सम्बन्ध मे आज़ाद ने स्वयं लिखा है—मेरे पिता शेरो-शायरी के बेहद शौकीन थे। विशेषकर कश्मीरी गीत और मसनवियाँ पढने और सुनने का उन्हें बहुत शौक था। प्रायः मुझसे भी पढवाते थे। जिसका मेरी तबीयत पर यह असर हुआ कि मैंने पन्द्रह-सोलह साल की आयु मे कश्मीरी मे शेर कहना शुरू कर दिया। पहले-पहल गज़ल लिखी और बाद मे अन्य प्रकार की कविताएँ—। 'आज़ाद' अपनी प्रारम्भिक कविताओं में अपना उपनाम 'अहद' लिखते थे। फिर यह उपनाम बदल कर उन्होंने 'जानबाज़' उपनाम से कविताएँ करना शुरू किया। सरकार ने उनपर प्रतिक्रियावादी होने का आरोप लगाया। फलस्वरूप उनका 'ज़ोहामा' से नाल के मिडिल स्कूल मे स्थानांतरण किया गया। उनके घर की तलाशी भी ली गई किन्तु फटी-पुरानी पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य हस्तलिपियों के अतिरिक्त अधिकारियों को कुछ भी न मिला। इसी बीच उनका चार वर्ष का इकलौता बेटा इस संसार से चल बसा। 'आज़ाद' को इस सदमे से गहरा आघात पहुंचा। नाल की प्रसिद्ध हमदान-मस्जिद में एक दिन बैठे-बैठे उन्हें अपना उपनाम 'आज़ाद' रखने का विचार आया और तभी से इस उपनाम से बराबर साहित्य-सृजन करते रहे।

१९३३-३४ ई० मे 'आज़ाद' अध्यापकीय प्रशिक्षण लेने हेतु श्रीनगर आये। बाद मे १९३४ ई० से लेकर १९४४ ई० तक पुनः ज़ोहामा के स्कूल मे कार्यरत रहे।

---

1. कुलयाते-आज़ाद, पृ० ३६

इनका आखिरी समय 'सोरस्यार' में बीता तथा वहीं पर अन्त समय तक अध्यापन-कार्य करते रहे। 'आज़ाद' चूंकि हमेशा अस्वस्थ रहते अतः इनका आखिरी समय निहायत ही दुःखपूर्ण वातावरण में गुज़रा। १९४८ ई० में (स्योरस्यार में) उदर-रोग काफी गम्भीर हो गया और उपचार हेतु इन्हें श्रीनगर के रतनरानी अस्पताल मे दाखिल किया गया। रोग काफी बढ़ गया था अतः आपरेशन करने की नौबत आगई। आपरेशन श्रीनगर के सरकारी अस्पताल में किया गया। आज़ाद चूंकि काफी कमज़ोर हो चुके थे अतः अत्यधिक रक्तस्राव के करण और भी अशक्त होगये। चुनांचे ४५ वर्ष की आयु में १६ अप्रैल १९४८ ई० को सायं साढ़े सात बजे कश्मीरी साहित्य-गगन के इस देदीप्यमान नक्षत्र का अवसान हुआ। शायरे-आज़म-महजूर ने प्यारे शायर-दोस्त की जुदाई पर अपनी श्रद्धांजलि यों अर्पित की—

> आह आज़ाद अज जहां रोपोश शुद
> याकि अज जाम बका मदहोश शुद,
> बहर-ए-साल रहलतश महजूर गुफ्त
> बुलबुल शीरीं बयान खामोश शुद।

'आज़ाद' और महजूर की पहली मुलाकात सन् १९३५ ई० में रांगर में हुई थी। 'आज़ाद' ने महजूर की शायरी से प्रभावित होकर उनके ऊपर एक पुस्तक लिखनी चाही थी और इसी प्रसंग में वे महजूर से मिले थे। दोनों की मुलाकात धीरे-धीरे अटूट दोस्ती में परिवर्तित हो गई। दोनों अपने-अपने कलाम को डाक द्वारा एक दूसरे के पास भेजते और एक-दूसरे की प्रशंसा करते। 'आज़ाद' ने महजूर के कृतित्व पर एक गवेषणात्मक अनुबन्ध लिखने का जो निश्चय किया था उसे उन्होंने पूरा भी किया। महजूर के ऊपर 'आज़ाद' का महत्वपूर्ण खोजकार्य उनकी 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' (भाग तीन) मे है।

आज़ाद ने कश्मीरी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है वह चिर-स्मरणीय रहेगी। अनेक तरह की विवशताओं तथा सीमाओं के बावजूद आज़ाद जीवन-भर जिस लगन और तत्परता के साथ कश्मीरी साहित्य की अथक सेवा करते रहे, वह अनुकरणीय है। २० वीं शती के द्वितीय दशक तक कश्मीरी भाषा और साहित्य का सम्यक् परिचय देने वाला कोई भी इतिहास-ग्रन्थ उपलब्ध नही था—यह बात आज़ाद को चुभी थी। उन्होंने कश्मीरी भाषा और साहित्य का इतिहास लिखने की ठान ली। इस विस्तृत कार्य को सम्पन्न करने में 'आज़ाद' को काफी परिश्रम करना पड़ा। अन्त में, दिन-रात एक करके १३ वर्षों की अनवरत साधना के उपरान्त यह महत्वपूर्ण कार्य पूरा हो गया। यह काम उन्होंने १९३५ ई० में हाथ में लिया था तथा १९४८ ई० में पूरा किया। 'आज़ाद' ने इस इतिहास-ग्रन्थ का नाम 'तवारीख-ए-अदबीयात-कश्मीर' रखा था जिसे बाद में उनके मरणोपरान्त जम्मू व कश्मीर प्रदेश की कल्चरल अकादमी ने 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' शीर्षक से तीन भागों में प्रकाशित किया। प्रथम भाग में कश्मीरी

इसके अतिरिक्त इसी भाग के अन्तर्गत कश्मीरी कविता की विशेषताओं—उस पर सूफी-दर्शन का प्रभाव, इस्लाम-धर्म का प्रभाव आदि पर अनुभवपूर्ण चर्चा मिलती है। दूसरे भाग में कश्मीरी साहित्य की आदि कवयित्री लल्लद्यद से लेकर शमसउद्दीन हैरत तक के विभिन्न कवियों का परिचय उनके व्यक्तित्वांकन तथा कृतित्वांकन के साथ दर्ज है। तीसरे भाग में कविवर परमानन्द, मकबूलशाह कालवारी तथा गुलाम अहमद महजूर के साहित्य का सम्यक् अध्ययन उनकी विस्तृत जीवनी के साथ प्रस्तुत किया गया है।

'आज़ाद' की साहित्यिक-प्रतिभा को प्रकाश में लाने का श्रेय कश्मीर के प्रसिद्ध पत्रकार श्री प्रेमनाथ बजाज़ को है। बजाज़ साहब उन दिनों 'हमदरद' नाम की पत्रिका के प्रधान संपादक थे। उन्होंने 'आज़ाद' की कई कविताओं व लेखों को 'हमदरद' में प्रकाशित कराया और इस प्रकार आज़ाद का साहित्यिक व्यक्तित्व दिनोदिन निखरने लगा। आज़ाद के सम्पूर्ण साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है १—उनका गद्य-साहित्य और २—उनका काव्य-साहित्य। आज़ाद के गद्य-साहित्य का ऊपर परिचय दिया जा चुका है।

अब्दुल अहद 'आज़ाद' नाम के साथ कश्मीरी-कविता का एक ऐसा युग जुड़ा हुआ है जिसमें राष्ट्रीय संचेतना, देशभक्ति तथा जनजागरण के स्वर गूँजते मिलते हैं। कालक्रम की दृष्टि से उनके काव्य-साहित्य को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है—१-प्रारम्भिक काल और २—परिपक्व काल। प्रारम्भिक काल के अन्तर्गत 'आज़ाद' की ऐसी कविताएँ रखी जा सकती हैं जिनमें कवि की सुकुमार व अबोध भावनाओं का प्राधान्य है। इस काल में कवि ने गज़लें ही ज्यादा लिखीं। इनमें कवि का प्रेमोल्लास तथा हृदय का कोमल-स्पंदन यत्र-तत्र व्याप्त है। परिपक्व काल में आकर 'आज़ाद' की काव्य प्रतिभा एक नयी दिशा को लेकर प्रकाशित हुई। इस काल की कविताओं में प्रेम की रंगीनियाँ यथार्थ जीवन की कटु-अनुभूतियों में परिवर्तित हो जाती हैं। द्वितीय महायुद्ध के छिड़ने से पूर्व कश्मीर की राजनीति एक नयी करवट ले चुकी थी। वर्षों की दासता तथा शोषण-चक्र से मुक्ति पाने के लिये जनता हाथ-पांव मारने लगी थी। शोषक-वर्ग के अत्याचारों, हाकिमों के आतंक तथा ज़मींदारों के अन्याय से त्राण पाने के लिये जनता ने मिलकर अपनी आवाज़ बुलन्द करने का साहस बटोर लिया था। आज़ाद अपनी आँखों से देख चुके थे कि किस प्रकार शोषकवर्ग निरीह जनता पर जुल्म ढा रहा था। श्रमिक व कृषक वर्ग किस प्रकार जागीरदारों के दमन-चक्र में पिसता जा रहा था। उपन्यास-सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द ने जिस प्रकार अपने उपन्यासों द्वारा अपने युग का चित्रण किया था उसी प्रकार 'आज़ाद' ने अपनी कविताओं द्वारा अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। उनकी चिन्तन-धारा ने एक सुनिश्चित मोड़ ले लिया और वह था उनका मानवतावादी दृष्टिकोण। इस चिन्तन-धारा में प्रगतिशीलता के साथ-साथ क्रान्ति की उद्धत धड़कनें भी समाहित थीं। सिपाही [illegible] ...म तलवार से लेता है वही साहित्यिक क्षेत्र में 'आज़ाद' ने [illegible] ' के साहित्य-सर्जन का यह युग दस वर्षों [illegible] राष्ट्रीय-संचेतना

से ओतप्रोत कविताएँ, जनजागरण-गीत तथा कौमी तराने लिखे।

'आज़ाद' ने स्फुट कविताओं के अतिरिक्त कुछ मसनवियाँ भी लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं—'चन्द्रबदन-व-ममार' 'तम्बसुम'-गुल', 'कमरुज़्ज़मान' आदि।

पहले कहा जा चुका है, 'आज़ाद' ने प्रारम्भ में जो कविताएँ कीं उनमें सोज़ो-दर्द के साथ आशिकी का रंग छिटकता मिलता है। कुछ उदाहरण हैं—

> बस वन घोसुम यात यार है ब्येसिये
> योवनम मलवुन नार है ब्येसिये,
> मय च्यथ गयस मस्तान है
> देवान है देवान है,
> घोम मदफुन मैयखान हय
> मैयखान है मैयखान है—।

री सखी, किस से कहूं, मेरा बचपन का साथी मुझ से रूठकर भाग गया और मेरे लिए विरह की अग्नि छोड़ गया। मैं इश्क की शराब पीकर इतनी मदहोश होगई थी कि मैयखाना और पैमाना में कोई फर्क दिखाई न दिया।

इश्क की महिमा को आगे चलकर कवि ने संयत एवं उदात्त रूप में यों वर्णित किया—

> अश्क फेरान कमन-कमन तपरेशन त आलिमन
> अश्क करान मूसिमन पोशबदन कज़ुल्ये—।

इश्क ने बड़े-बड़े तपस्वियों एवं आलिमों की मति फेर दी है। यह मासूम व खिले यौवन को क्षण-भर में मिटाकर राख कर देता है।

'आज़ाद' ने यद्यपि परम्पराओं का खुलकर खण्डन नहीं किया किन्तु अन्ध-विश्वासों, धार्मिक-रूढ़ियों तथा अन्य प्रकार की कुप्रथाओं से उन्हें निहायत चिढ़ थी। वे समाज को सभी दृष्टियों से स्वस्थ देखना चाहते थे—

> त्राव प्रोन्य क़ुस्सु त अफसान
> त्राव ज़ोल्य-ज़ोल्य पंजर त ज़ोलान,
> छाव यावनुक थावुन त हार ब्येसिये
> नेरी छावान गुल त गुलज़ार ब्येसिये—

रे मेरे हमदम, तू इन पुरानी बातों और अफसानों को छोड़। पिंजरे में बन्द पंछी की तरह अपनी विवशता को तू त्याग दे। बाहर आ, और अपने यौवन की मस्ती का प्रकृति के सौन्दर्य के साथ भोग कर।

'आज़ाद' का कवि-हृदय अत्यन्त संवेदनशील था। वे जब तक जीवित रहे तब तक हाकिमों की ताना-शाही देखते-झेलते रहे। वे जिधर भी नज़र दौड़ाते उधर जनता ... के पंजों में जकड़ी दीख पड़ती। समाज का प्रत्येक सदस्य चाहे वह किसान हो ..., सरकारी कर्मचारी हो या कोई कारीगर— ज़माने का मारा हुआ था। उधर ... देश पर अंग्रेज़ी शासक जुल्म ढा रहे थे और इधर आज़ाद की मातृभूमि—

कश्मीर का और भी बुरा हाल था। अंग्रेज़ अधिकारी दिखावे के लिए कश्मीरी जनता का उद्धार करने के लिए यहां आते किन्तु यहां पहुँचकर वे हाकिम-वर्ग से मिलकर सैर-सपाटे तथा खाने-पीने में लग जाते। बेचारी जनता के दुःख-दर्द को समझने वाला कोई न था। 'आज़ाद' कश्मीरियों की यह बेबसी देखकर ज़ार-ज़ार रोया। उसने जनता को आह्वान किया—

> आसि दीह अनकरीब दीद वुछन खोशनसीब
> नेरि यि खूनि गरीब जोश दिवान आशकर
> वोथि यि तूफान ब्वन आवि पथर ज़ालिमन
> फेरिकोहन जंगलन नेरि करान सूर थार
> रूद कति सूदख़ोर ज़ि रोज़ि यि सरमायदार—।

यदि जिन्दा रहना चाहते हो तो दिलों में जोश पैदा करो, गफलत की नींद से जाग पड़ो। अपने पैरों पर खुद खड़ा होना सीखो, जुल्म और अन्याय एक दिन मिटकर रह जायेंगे और वह दिन दूर नहीं जब तुम अपने मुल्क के स्वयं मालिक होगे। मेरे देश-वासियो, गरीबों का खून रंग अवश्य लायेगा और वह तूफान व बाढ़ बनकर ज़ालिमों को बहाकर ले जायेगा, न सूदखोर रहेंगे और न सरमायादार—।

'आज़ाद' ने आततायियों को कभी नहीं कोसा। वे जानते थे कि जनता मूक गाय की तरह अन्याय सह रही है, अतः दोषी वही है। जनता में हुब्ब-वतन (देशप्रेम) की कमी है, तभी आतंकवादियों को भोली जनता पर अत्याचार करने का मौका मिल रहा है। 'जनता के दिलों में देश-प्रेम की भावना बर्फ के समान ठण्डी पड़ गई है। अपनी ही लापरवाही की वजह से उनका सब कुछ लुट रहा है। रे देशवासी, अब ज़रा नींद से जाग। हमारी धरती को स्वर्ग कहा जाता था किन्तु हाय अफ़सोस, हम ने उसे नरक बना दिया है। हाकिमों के लिए खून पसीना एक करके हम उन्हें सुख-सुविधा का सामान सुलभ करते हैं लेकिन बदले में वे हमारी बोटी-बोटी नोच देते हैं। यह धरती बड़शाह, कल्हण, सरफी, गनी जैसे सपूतों की है, उस धरती की यह दुर्दशा! ग़ैर-मुल्की शासन के चंगुल से मुक्त होना, ज़ालिमों के जुल्म-जब्र का अन्त करना तथा जनता के दिलों में देशप्रेम को जगाना—यही मेरी तमन्ना है, यही मेरी आरज़ू है और यही मेरा पैगाम है—

> सोन खोत सर्द वुछान छुस बु तिम सोन गोमित
> हा वतन वारो युनि ग्यंदरि गछ्स मा बेदार
> मास चोन खारि सपुन ज़ुव ति मा गछि ब्राये
> कल्हन गनि त सरफी साराव कर्‌य येम आबन
> सुम आव सानि बापथ ज़हर हिलाल आसिहा
> आज़ाद बनुन ज़ुल्म गालुन बहम करन दूर
> यो म्योन हवस, यो छु सदा, यो छु म्योन मुदा—।।

कवि इतना कुछ कहने पर भी सन्तुष्ट नहीं दिखता। वह आगे कहता है—

युस इ्यकस अलराधि अरशस फर्श ह्यथ वक्त नियाज़
सुय सुय इ्यकस दरवाज़न्‌ प्यठ क्याज़ि ओवुथ, ती पश्या
बस मन्नुय योतुय चे खोनुथ प्यण्ड परुन मेरास थ मुल्क
ज़िन्दगी हुन्द खून नाहक बारि थोवुथ, ती पश्या—।

रे देशवासी, तेरे सजदा-ए-नियाज़मन्दी से तो ज़मीनो-आसमान हिल सकते थे किन्तु हाय अफसोस, तूने वह सजदा गैर-मुल्की हाकिमों की दलहीज़ पर नज़र कर दिया। तूने अपनी ज़िन्दगी का मकसद सिर्फ पेट भरना सीखा है और अपना फर्ज़ भूल गया है। अपने फर्ज़ से विमुख होकर तू इन्सानियत का खून कर रहा है, क्या यही उचित है।

मजहब की दीवार इन्सान को इन्सान से जुदा करे—यह 'आज़ाद' को मंज़ूर न था। 'हम सभी एक हैं, हम सब का एक खुदा है, हम सब एक ही धरती-माता की संतान हैं—फिर यह भेदभाव क्यों—

येमि यकसानिक हालि मोदाना
कुसछु पनुन त कुसछु बेगाना म्योन
युथ म्येनिश ह्योंद त स्युथय मुसलमाना
गोश थव बोज़ अफसाना म्योन
दीन म्योन मिलचार धर्मयकसाना
सारिनय श्युत छु नूराना म्योन
युथ मेनिश कॅबा स्युथुय बुतखाना
गोश थव बोज़ अफसाना म्योन—।

मेरे लिए कोई भी अपना-पराया नहीं है। न मेरे लिए कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान। मेरा धर्म 'मिलजुल कर रहने' का धर्म है। जैसे मेरे लिये मस्जिद पवित्र है वैसे ही मन्दिर भी।

युवा-पीढ़ी को 'आज़ाद' ने विशेष रूप से खबरदार किया। उसी पर देश के उज्ज्वल भविष्य की आशा टिकी हुई है। बस, उसे अच्छे नेता मिल जायें तो देश की काया पलट जाये।

चु. योप रोश इस्ताद पत्थेन कोद्यन प्यठ
पनप्रन्य न्याय पानस मंज़राव् नवजवानो
वॉदिमिस पन-पत पहवुन्य तीरे
पान ति वोंडकुन मझारस कर
वांपि मंज़ मार गढ़ण ममहेंझि बीरे
पंत्रि शमशीरे गिम्बुना कर—।

नौजवानों, उठो और अपने बाज़ू-बाज़ू से अपनी मुश्किलें आसान करो। एक बात याद रखना, नेताओं के चक्कर में पड़कर उनका अंधानुकरण कभी मत करना। कहीं वे मौका-परस्त 'लीडर' तुम्हें मंझधार में ले जाने के बजाय किसी बीहड़ जंगल में

न ले जायें—इस बात का खयाल रखना।

'आज़ाद' ने जब देखा कि जनता के दिलों मे देश-प्रेम की भावना का द्रुतगति से संचार नही हो पा रहा है और हाकिमवर्ग अपना ज़ुल्म बराबर ढा रहा है तो उन्होंने अत्यन्त ओजस्वी वाणी में इन्कलाब का नारा लगाया। वे ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगे :—

पान पनुन परज़नाव छाव पनुन लोलबाग
दाग-गुलामी मिटाव हवाव पनुन दिलदिमाग
चोन्य खयालन बनोव्य ख्वाज अमीर बड्य नवाब
इन्कलाब अन, इन्कलाब अन इन्कलाब
सजदि कमन छुख करान खोफ़ कहन्दि छुख मरान
लोल छुख दावरान आन्दकन्यन सोन जरान
आसि ग्यहुन्द खून सोरख छुय चे रगन मंज़ आब
इन्कलाब अन इन्कलाब अन इन्कलाब—।

रे देशवासी, तू अपने आप को पहचान। अपने दिल-दिमाग से काम लेकर तू गुलामी का दाग मिटा दे। तू इन्कलाब ला, इन्कलाब ला। तेरी मेहनत की कमाई से दूसरे धनवान बन रहे हैं। तू किन के सामने भटकता है और किन के खौफ से डरता है। अपने खून-पसीने से तू जिनके लिए नींव बना रहा है, वही लोग तुझे हेय समझते हैं। रे पौरुषहीन, उठ इन्कलाब ला, इन्कलाब ला।

'आज़ाद' के अन्य देशभक्ति गीतों मे 'स्योन वतन', 'हा वतन-दारो', 'नग़मा-ए-बेदारी', 'इन्कलाब', 'शायर-लीडर-कौम', 'सुभापचन्द्र बोस', 'महात्मा गांधी', 'नाल-ए-बेदाद', 'शिकवाये-कश्मीर', 'सरमायादारी' आदि काफी प्रसिद्ध हैं।

'आज़ाद' के सम्पूर्ण कलाम को जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने सन् १९६६ ई० मे 'कुलयात-आज़ाद' शीर्षक से एक बृहदाकार पुस्तक मे संपादित कराया है। इस पुस्तक के संपादक डॉ० पद्मनाथ गंजू हैं। डॉ० गंजू 'आज़ाद' के करीबी दोस्तों मे से थे। इस पुस्तक में 'आज़ाद' की २४४ कवितायें, गज़लें तथा अन्य देशभक्ति गीत आकलित हैं।

'आज़ाद' ज़िन्दगी-भर एक साधारण स्कूल-मास्टर रहे। अनेक तरह की विवशताओं तथा सीमाओं के बावजूद भी उन्होंने कश्मीरी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी। 'आज़ाद' को अपने जीवनकाल मे कभी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। वे जानते थे कि आने वाला समय उनकी कद्रदानी अवश्य करेगा। तभी वे जाते-जाते कह गये थे—

आलम हा करि याद आज़ाद आज़ाद
दुनि सातु वुछ्तु याद पावय मदनो।

संसार 'आज़ाद' को याद करेगा कभी-न-कभी, मेरे दोस्त, देख लेना, याद दिलाऊँगा कभी-न-कभी।

## अहद ज़रगर

इनका जन्म सन् १६०८ में श्रीनगर में हुआ था। इनकी कविताओं में प्रेमवर्णन के साथ-साथ रहस्यात्मक गूढ़ दर्शन पर्याप्त मात्रा में है। अपनी कविताओं में इन्होंने यत्र-तत्र हिन्दुओं की धार्मिक कथाओं एवं परम्पराओं से उपमान एवं बिम्ब छांटे हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं—

पम्पोश मंज़ें गव पैदा काइनात[1]

विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से सृष्टि उत्पन्न हुई है।
अहद ज़रगर की कविता के अन्य नमूने प्रस्तुत हैं—

१—पुस मेलि हेरि बोन ग्र.ख्य शाहरग
गुप बनि मंन्य पोद्य अन-अल-हक़
शाह सिय सोत है शेख मनसूरत
ब करं मूरस होसं हो.........[2]

२—दिलस करिम सथ पार जिगरस यार सन्जि करतले
मुश्कि ग्र.तिन बाल बो डायस अदक संजर छुम हले
हर शाबे छस इन्तज़ारस बाल यारस वन्य दिवान
अर स्यठा छुम कर बो डेशन अर चलेम यम्बरज़लेः...।

जो पूर्णतया ब्रह्म में लीन हो गया हो, वही अन-हल-हक़, (मैं ही ब्रह्म हूं) कह सकता है। शेख मनसूर जब यह कह सकता था तो मैं क्यों न कहूं...। यार के खंजर से मैंने अपने दिल के सात टुकड़े कर दिये। मैं हर शाम उसकी प्रतीक्षा में बैठी रहती हूं कि कब वे आयें और मेरा नरगिसी बदन खिल उठे...।

## मीर गुलाम रसूल नाज़की

इनका जन्म माडर-खोयामा में सन् १६०६ में हुआ था। पहले उर्दू में कविताएँ करते थे, बाद में कश्मीरी में लिखने लगे। आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र से काफी समय तक सम्बद्ध रहने के बाद ये स्वतन्त्र-लेखन कार्य में जुट गये हैं। कविताएँ और मुक्तक दोनों लिखते हैं। मुक्तकों में इनका कविहृदय अधिक मालोड़ित हो उठा है। उनमें कहीं प्रणय-प्रकम्पित हृदय की धड़कनें हैं, कहीं शिशु का-सा सारल्य, कहीं करुणा-विगलित भाव और कहीं पीड़ा-जन्य आत्मरुदन :—

नचान वालन बियाबानन फेलिम पेद्य
अछिव स्योद जोये छम ग्राम्.ख मे वद्य वद्य
तमिस संगीन दिलस वोलुम न चोक तल
करान नीलवठ कन्येन आवचिदिगन ज़द्य।

---

१. 'सतूर के स्वर' निबन्धः—'कश्मीरी सन्तकवि—एक परिचय' प्रो० चमनलाल सप्रू पृ० ५५

२. वही पृ० ५५

मुछुन पोत जुनि सोत लोत छाये चोन्य
गनेयम कत सनेयम प्राये चोन्य
यि कँह ग्रोसुम दछिन त खोवर्य ति रोवुम
ग्रनेयम ग्रछ्य ग्रनेयम माये चोन्य।

प्रियतम की तलाश मे मैंने सारा जहां छान मारा किन्तु वह न मिला। उनके विछोह मे मेरी आंखो से दो अश्रुधाराएँ निकल पडी जिनसे बड़े-बडे पत्थर तक गल गए मगर उस पत्थर-दिल सनम का हृदय पसीज न सका।

मैंने जब ढलते चाद को रात्रि के पिछले पहर मे देखा तो तुम्हारी याद आ गई। मेरे पास जो कुछ भी था वह खो गया। आंखो मे एक तरह का अन्धेरा छा गया और तुम्हारा खयाल बढ़ता ही गया…।

नजकी जी की चतुष्पदी-शैली में लिखी 'नमरूदनामा' काव्यकृति काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इसमे लगभग २०० पद हैं। चतुष्पदी-शैली के इस प्रयोग ने कश्मीरी कविता की छन्द योजना को नई दृष्टि प्रदान की है। 'नमरूदनामा' तीन भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग मे कवि के स्वछन्द हृदयोद्गार, द्वितीय मे ईश्वरभक्ति विषयक उद्गार तथा तृतीय मे समकालीन विशिष्ट राजनीतिक व सामाजिक घटनाएँ वर्णित हैं। 'नमरूदनामा' के प्रारम्भ में कवि ने अपनी काव्यसाधना का लक्ष्य यो वर्णित किया है—

जमीनुक दाग, दीनुक, अँह, दिलुक सोज
मदीनुक दरूद, सीनुक जश्ने नौरोज़
ज़मानुक हाल, यारन हुंज़ हकायत
ज़ हय कय चोन हतन बोतन ग्रन्दर बोज।

इन दो सौ चतुष्पदो मे तुम को खुदा की महिमा, धर्म की महत्ता, दिल का सोज मन की खुशियां, जमाने का हाल तथा दोस्तों की बड़ाई पढ़ने को मिलेगी।

## मिर्ज़ा ग्रारिफ

इनका पूरा नाम मिर्ज़ा गुलाम बेग है। 'ग्रारिफ' उपनाम है। जन्म कोइयपोरा, इस्लामाबाद मे सन् १९१० ई० में हुआ था। एम० एस० सी० तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् ये जम्मू व कश्मीर राज्य के रेशम-उत्पादन विभाग मे काफी समय तक निदेशक के पद पर रहे। कश्मीरी भाषा और साहित्य के प्रति प्रारम्भ से ही विशेष लगाव रहा। प्रदेश सरकार ने सन् १९४८ में कश्मीरी भाषा के लिये एक उपयुक्त लिपि प्रस्तावित करने के लिये जो लिपि-समिति गठित की थी, ग्रारिफ साहब भी उसके एक सदस्य थे। कश्मीरी पत्रिका 'गुलरेज़' को प्रकाशित करने का श्रेय इन्हीं को है।

ग्रारिफ मुख्यत: कवि है। वैसे, इन्होंने दो कहानियाँ और एक यात्रावृत्त भी लिखा है। यात्रावृत्त इनकी चीन-यात्रा पर आधारित है। कश्मीरी मे इस प्रकार की लेखन-विधि का श्रीगणेश इन्हीं से होता है। इस यात्रा-वृत्त से एक ग्रवतरण उद्धृत किया जाता है—

छु प्योत ताम २६ गण्टन मु. ४१ मिण्टन हु द रेलि सफर। बड़ु. खूबसूरत कस्बु छु। यथ हिसस मंज ग्रस्य रोजान छि ग्रति छि नवि फैशिनिक बंगलु. बनावनु. ग्रामित्य। सड़कु. छि बजि बजि। बोनि, फस, वीरि, यारि, सरवु., कीकर छि कशीरि हुन्दि पोठ्य ग्रथ जायिय …[1]

चंग क्यांग चीन के पूर्व में स्थित एक छोटा-सा शहर है। पेकिंग से इस स्थान के लिए २६ घंटे ग्रौर ४१ मिनट रेल द्वारा लगते हैं। यह बहुत ही सुन्दर स्थान है। जिस भाग में हम रह रहे हैं वहाँ नये फैशन के कुछ मकान बने हुए हैं। सड़कें चौड़ी हैं। कश्मीर की तरह यहाँ पर भी चिनार, बेद, देवदार, सरो, सफेदा, कीकर आदि के पेड़ हर जगह पर हैं… ।

ग्रारिफ का कवि-हृदय रुबाइयों की रचना में ग्रधिक रमा है। उनकी प्रत्येक रुबाई में तीखा व्यंग्य रहता है जो पाठक के हृदय पर गहरा पैठ जाता है—

१—सियासी दोस्ती छि कागज़ी नाव,
च. हरफवय पोठ्य ग्रथ प्यठपान मो साव
पकुन छुय ग्रोंठ पकनु. च याव सूरत
छु वत्तच लहरि दोरान गरज़कुय वाव।

२—मनावान जश्न शोदी वुछ म्ये इबलीस
स्यठा बोर बार ग्रचनस लोगमुत फोस
दपान चे ज़ ग्रकलो वेन्य इमानच लय
कोड्रुम मज़हब पनुन तोरम बेयन पोस।

नेताग्रों की दोस्ती कागज की नाव के समान होती है। तू ग्रपने को उसमें न बहा। तुझे तो ग्रागे बढ़ना है, ग्रतः शक्ति का संचय कर। राजनीति की लहर तो स्वार्थ के समीर से युक्त होती है, ग्रतः उसमें न बह।

बुरे व्यक्तियों को मैंने खुशिया मनाते देखा, जो कल तक मंगते थे उनके द्वार पर ग्राज भारी भीड़ देखी। जिसने ग्रपने धर्म को छोड़ दिया वही बाज़ी मार गया…।

## अलमस्त कश्मीरी

वास्तविक नाम दोना नाथ है। 'ग्रलमस्त कश्मीरी' उपनाम है। इनका जन्म श्रीनगर में सन् १९१० में हुग्रा था। 'ग्रलमस्त' की कविताग्रों में पहली बार भावों ग्रौर प्राकृतिक रूपों का सहज-सरल रूप से मानवीकरण हुग्रा है। इस दृष्टि से उन्हें छायावादी कवि कहने में संकोच नहीं होता। इनका एक काव्य-संकलन 'वालयपारि' १९५५ में प्रकाशित हो चुका है। इनकी प्रसिद्ध कविता 'ग्रोवरस कुन' (बादल के प्रति) में ग्रमूर्त वस्तुग्रों को मूर्त रूप देने के लिए जो बिम्ब-योजनाएँ की गई हैं तथा भावाभिव्यक्तियों व संवेदनाग्रों के प्रकटीकरण के लिए प्रकृति को जिस रूप में ग्रहण करके चित्रित किया गया है, वह व्यापार-संयोजना द्रष्टव्य है—

---

१. 'कोंगुर नसर' पृ० २७१

च दुनिया वालेन निश छुख बेहान दूर, चे मा छिय म्योन पोठ्य यिम म्याय मंजूर
च मेहलावान जमीनुक नार ग्रोबारो, च छुख ग्रमि पास म्योनुय यार ग्रोबारो
हयातुक सग च सदर प्यठ ग्रनान छुख, सु छकरिय च बेयि सदरस वसान छुख
चे कति कुनि बेहनस छुख वारग्रोबरो, च छुख ग्रमि पास म्योनुय यार ग्रोबारो
करान छुख पान कोरबान बोपरतप्यठ, पनुन सरमायि छावान बोपरन य प्यठ
युय्य हेछ नाव मेति एसार ग्रोबारो, च छुख ग्रमिपास म्योनुय यार ग्रोबारो
मगर ग्रज्ञकथ च छुख करान गाशस रोट, ब ग्राव गाश ततिनस योतिनस छुग्रनिगोट
छु ग्रलमस्तप ग्रतेय इन्कार ग्रोबारो
ब ग्रति नस छुसन चोनुय यार ग्रोबारो।

तुम दुनिया वालों से दूर रहते हो क्योंकि मेरी ही तरह तुम्हें भी दुनिया के जजाल पसन्द नहीं हैं। तुम पृथ्वी की ज्वाला को शान्त कर देते हो और इस नाते तुम मेरे सहकर्मी हो। समुद्र से अमृत रस लाकर तुम पृथ्वी पर गिरा देते हो और वापिस समुद्र की राह लेते हो। तुम एक ही स्थान पर टिकने के आदी नहीं हो और इस नाते तुम मेरे सहकर्मी हो। तुम औरों की खातिर अपना जीवन कुर्बान करते हो तथा अपनी पूंजी दूसरों पर लुटाते हो। रे बादल! इस नाते भी तुम मेरे सहकर्मी हो। मगर तुम में और मुझमें एक अन्तर है। तुम प्रकाश को रोककर अन्धेरा करते हो और मैं अन्धेरे में प्रकाश फैलाता हूं। बस, यहीं पर मैं तुम्हें अपना सहकर्मी मानने के लिये तैयार नहीं हूं।

## गुलाम अहमद फ़ाज़िल

इनका जन्म श्रीनगर में सन् १९१४ में हुआ था। फाज़िल की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें सहज संप्रेषणीयता विपुल मात्रा में अनुस्यूत है। इनकी अधिकांश कविताएँ गेय हैं। अभी तक इनके चार काव्य-संग्रह 'कलाम-ए-फाज़िल', 'सहद', 'तसवीर-ए-गम', और 'ग्रोश त शबनम' प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी 'कालकूर' (कुम्हारिन), 'ज़ूनि मन्ज़ डल' (चाँदनी में डल झील)' 'ग्रम दिय साकी' (साकी द्वारा प्रमादित), 'गुलमर्ग', 'पहुल्यकूर' (चरवाहा-बाला) आदि कविताएँ काफी लोकप्रिय हो चुकी हैं। 'गुलमर्ग' कविता से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

गुल त बुलबुल कोहसारन कुन वुछान
कोहसारन सबज़रान कुन वुछान
जंगलन बालन त नारन कुन वुछान
बेशुमार रंगीन नज़ारन कुन वछान[1]

गुल और बुलबुलें पर्वत-श्रेणियों की ओर देख रही हैं। वे बहते झरनों, हरे-भरे जंगलों तथा प्रकृति के अन्य अनुपम नज़ारों की ओर देख रही हैं।

## दीनानाथ नादिम

पूरा नाम दीनानाथ कौल है। 'नादिम' उपनाम है। इनका जन्म १६ मार्च

१. 'सोन अदब' १९५६,पृ० १५०

सन् १६१६ में श्रीनगर में हुआ था।

सन् १६४६ तक नादिम साहब अंग्रेज़ी, उर्दू तथा हिन्दी में कविताएँ करते थे। इसके बाद वे कश्मीरी में कविता करने लगे। अंग्रेज़ी में अपनी पहली कविता इन्होंने सत्रह साल की आयु में लिखी थी। उर्दू कवियों में इनके ऊपर ग़ालिब, इक़बाल तथा जोश मलीहाबादी का विशेष प्रभाव पड़ा। कश्मीरी भाषी हिन्दी कवियों में नादिम को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। हिन्दी में विरचित इनकी एक प्रयोगवादी कविता 'कलिंग से राजघाट तक' से कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं—

यह कर दिया
यह कर दिया
यह किस लिये ?
यह किस लिये ?
विजय के लोभ के लिये ?
अशोक ने।[1]

जिस समय नादिम कश्मीरी-माध्यम से काव्य-सर्जन करने लगे, उस समय कश्मीरी-कविता पर युगकवि 'आज़ाद' की प्रगतिवादी विचारधारा पूर्णतया छा गई थी। नादिम ने भी समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रारम्भ में देश भक्ति से परिपूर्ण कविताएँ लिखी। 'जंगबाज़ ख़बरदार' इनकी अत्यन्त लोकप्रिय देशभक्ति-पूर्ण कविता है। १६४७ में कबाइलियों ने कश्मीर पर आक्रमण किया था, उक्त कविता में कवि ने इन्हीं आततायियों को ललकारा था। नादिम के प्रत्येक आह्वान में देशप्रेम के स्वर गूँजते मिलते हैं। उनकी कविदृष्टि व्यापक जनजागरण में विश्वास करती है, विश्वमैत्री में उनकी अडिग आस्था है और मानवतावाद उनका सम्बल है—

पकुन छुम
पकुन छुम म्ये जहमूरयथन असावरन प्यठ
नज़र छम म्ये कशीरिवयन रहबरन प्यठ
तु. वॆयि कोशिरेन प्यठ
मे दुनिया छु मिलचार किन कुन बनावुन
मे छुम ताज यावुन
म्ये छुम ताज़. यावुन, म्ये छुम ताज़. यावुन

मुझे जुमहूरी-शासन के सिद्धान्तों पर आगे बढ़ना है। मेरी दृष्टि कश्मीर की भावी पीढ़ी पर टिकी हुई है। सारे संसार को मैंने विश्वमैत्री से एक बनाना है। मुझमें जोश-ए-जवानी है, जोश-ए-जवानी है, जोश-ए-जवानी है।

'कोशिरिस शुर्य सुन्द तरानु.' शीर्षक कविता में नादिम ने एक देशभक्त बालक

---

१. 'सोन-अदब' १६५६, पृ१५०
२. 'कश्मीर प्रान्त में हिन्दी' प्रो० मुहम्मद अयूब खां, 'मार्गदर्शक' कश्मीर-विशेषांक, १६६४

के माध्यम से कश्मीरी जनता में नवचेतना एवं नवस्फूर्ति का संचार करना चाहा था—

सकुट छुस बु. कोशुर मे नाव नोव बहार
जवानी मे दिलस यार छुम लोकचार
मे ताख्क बनित छुम नबस प्यठ लसुन
गुलाब बनित मे वारि मंज छुम असुन
मे छुम ता कयामत लसुन तु. बसुन
मछन मंज मे नार नांपान हयातुक खुमार
सकुट छुस बु. कोशुर मे नाव नोव बहार
मे छुम खोश यिवान जलजलन सू. त्य गिन्दुन
तूफानन अन्दर बुजमलन सू.त्य गिन्दुन
बनित युप नेरनन पलन सू.त्य गिन्दुन
मे कुन वुछित कांपान अजल खुंख्वार
लोकुट छुस बु. काशुर मे नाव नोव बहार।

मैं एक कश्मीरी बालक हूं और मेरा नाम नई बहार है। मेरे दिल में जवानी का जोश है और बालपन मेरा मित्र है। मैंने तारा बनकर व्योम में चमकना है और एक गुलाब बनकर बाग में खिलना है। मेरी आंखों में नवजीवन की उमंगें हिलोर रही हैं। मुझे जलजलों से खेलना अच्छा लगता है, तूफान और बिजली से खेलना मुझे भाता है तथा बाढ़ बनकर पत्थरों से टकराना मुझे पसन्द आता है। मुझको देखकर खूंख्वार मौत भी मुझसे डरती है, मैं कश्मीरी बालक हूं—मेरा नाम नयी बहार है।

सन् १९५३ के बाद राजनीतिक परिस्थितियों की स्थिरता ने नादिम की सृजन प्रक्रिया को नया मोड़ प्रदान किया। अब उन्होंने देशभक्ति-प्रधान कविताओं के साथ-साथ प्रयोगवादी कविताएँ लिखना शुरू किया। कश्मीरी काव्य-शैली में पहले ही से महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, नादिम ने उसमें नये जीवन मूल्यों, प्रतिमानों, प्रयोगों एवं छन्दों का समावेश कर कश्मीरी कविता को एक नयी दिशा प्रदान की। इस नाते 'नादिम' कश्मीरी की प्रयोगवादी कविता के प्रवर्तक-कवि कहे जा सकते हैं। उनकी सब से बड़ी विशेषता यह रही कि उन्होंने कविता में नये प्रयोग करते समय परम्परा का खण्डन नहीं किया अपितु उसके साथ समझौता करते हुए आगे बढ़े।[1]

प्रयोगवादी शैली में लिखी नादिम की 'लखचुन' शीर्षक कविता कश्मीरी काव्य साहित्य की एक बहुमूल्य कलाकृति है। इस कविता को रचकर कवि ने कश्मीरी काव्य शैली को नूतन आयाम दिये हैं। मुक्त-छन्द में लिखी इस कविता में कवि की पैनी कल्पना-शक्ति, सटीक बिम्ब-योजना तथा प्रभावपूर्ण काव्यशैली के दर्शन होते हैं। कुछ पंक्तियां हैं—

१. Studies in Kashmiri, J.L. Kaul p. 314

मलवनि सु लवचुन
वुछु, कुय ति्रु, मन
तारु प्रजलवुन,
सिंगल दीपकि रानि पद्मिने
अपारान वुछु, म्यूठ सु चूमचुन
मूर अहूगरा हूर मिनाम
मत वन ति्रमन कोलगरा छुन
बति प्यठ नीलु व छ़ि्र दिथ छ़ाम।

उस रूपसी के माथे का तिल, ऐसा लग रहा है मानों असीम प्रकाश सिमटकर एक ही बिन्दु पर टिक गया हो। या फिर सिंहल द्वीप की रानी पद्मिनी को मानो अपरिमित तेज ने माथे पर चूम लिया हो। या फिर उसके केश रूपी वन से एक मृग भागकर नयन-झीलों के बीच जमकर बैठ गया हो।

नादिम साहब की प्रत्येक कविता में जीवन बोलता है। वर्ण्य-विषय की विविधता के साथ-साथ उनकी कविताओं में भाव-स्थितियों का ऐसा हृदयग्राही व सजीव अंकन है जो अत्यन्त दुर्लभ है। वास्तविक अनुभूतियों के गूढ़तम स्तरों में छिपी भावधारा को सहजता एवं कलात्मक ढंग के साथ कविताओं में रख देना नादिम की विशेषता है। चिन्तन की यह प्रक्रिया नादिम की १९६० के बाद लिखी कविताओं में विशेष रूप से मुखर उठी है—

ज़िन्दगी यीच़ वसीह तीच़ छ़ोट, डाये कदम
ज़ीठ तीच़ जनतु, बुतराज़ छि सेनान शीन प्यव
छ़ोट मगर तीच़ ज़ि मस्जिदि ताम्य छि यीच़ मलस दव
गहे छु वसुक मल वु ज़ गाह फ़राकुक सोन ग़म
ज़िन्दगी यीच़ वसीह तीच़ छ़ोट, डाये कदम।

ज़िन्दगी जितनी लम्बी दिखती है, वास्तव में वह उतनी ही छोटी है—केवल ढाई कदम। लम्बी और फैली हुई इतनी मानो पृथ्वी अपने ऊपर गिरी बर्फ को नाप रही हो, छोटी इतनी मानो मुल्ला की मस्जिद तक दौड़। इस ज़िन्दगी में कभी मिलन की एक घड़ी नसीब होती है और कभी जुदाई का गहरा ग़म मिलता है।

नादिम साहब ने अब तक लगभग १५० कविताएँ लिखी हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित हुई हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने तीन कहानियाँ 'रेह' (१९५०) 'जवाबी कार्ड' (१९५१) तथा 'शीन प्यतो-प्यतो' (१९५२) भी लिखी हैं। एक निबन्ध 'सोन गिन्दुन त प्रोकुन' (हमारे खेल-खिलवाड़) भी लिखा है। यह निबन्ध कश्मीरी पत्रिका 'कोंगपोश' के अक्तूबर १९५५ के अंक में छपा था। नादिम को विशेष ख्याति प्रसिद्ध गीति-नाट्य ओपेरा 'बोम्बर बोम्बरज़ल' के रचने से मिली है। कश्मीरी में लिखा जाने वाला ये ओपेरा कश्मीरी गीति-नाट्य की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस प्रतीकात्मक ओपेरा में नरगिस तथा मधुकर के विरुद्ध पतझर

और प्रभंजन का षड्यन्त्र दर्शाया गया है। संगीतिका का उद्देश्य असत्य पर सत्य की विजय दिखाना है।

नादिम साहब ने कश्मीरी साहित्य विशेषकर कश्मीरी-कविता की जो सेवा की है, वह अनुकरणीय है। इन्ही अमूल्य सेवाओं के लिये उन्हें १६७० का 'सोवियत लैण्ड नहरू पुरस्कार' प्रदान किया गया है।

**अब्दुलहक 'बर्क'**

इसका जन्म श्रीनगर के मुहल्ला बसंतबाग मे १७ अप्रैल १६१७ को हुआ था। प्रारम्भ मे ये उर्दू में कविताएँ करते थे। तत्पश्चात् १६४६ से श्री मिर्जा आरिफ की प्रेरणा से कश्मीरी की ओर प्रवृत्त हुये। १६४६ में कश्मीरी साहित्यकारों को एकत्र करने के निमित्त 'बज्म-ए-अदम' नाम की जो साहित्य-परिषद् बनी थी, उसके निर्माण में 'बर्क' साहब का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

'बर्क' की लगभग २५ कश्मीरी कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अतिरिक्त १० रेडियो-नाटक भी श्रीनगर व जम्मू के आकाशवाणी-केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। आजकल ये आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र मे कार्यक्रम प्रभारी के पद पर १६४८ से कार्य कर रहे हैं। इनकी कविता से एक अंश प्रस्तुत है—

> अव लारान दोरान अहरबलुक आबशार
> बाल छांडान बतु गारान पतु दवान बेकरार
> कल छाडान पल कश्येन पथ छु आवान पथ वना
> शोर त बेयि शेर अहिन्य वादिह आमित्य कोहतनार
> राश हय अछ्होस बनन क्या हुए चे गोमच् मंरा बनन···।

**पृथ्वीनाथ पुष्प**

'पुष्प' इनका उपनाम है। जन्म १६ अक्तूबर १६१७ को अनन्तनाग तहसील के उमा नामक गाँव में हुआ था। इन्होने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मटन (अनन्तनाग) के स्कूल से प्राप्त की। १६४२ में पंजाब विश्वविद्यालय से सस्कृत में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद काफी समय तक कश्मीर के विभिन्न राजकीय महाविद्यालयों में अध्यापन-कार्य करते रहे। १६६५ से जम्मू व कश्मीर राज्य के अनुसधान, संग्रहलय एवं पुस्तकालय विभाग के निदेशक-पद पर कार्य कर रहे हैं।

पुष्पजी प्रारम्भ में हिन्दी मे कविताएँ करते थे। हिन्दी में मौलिक काव्यसृजन के अतिरिक्त इन्होंने कश्मीरी की दो प्रसिद्ध कवयित्रियों लल्लद्यद तथा हब्बाखातून के कुछ कश्मीरी पदों का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया है। लल्लद्यद के प्रसिद्ध वाक् (पद) 'केंह छिय न्यंदरि हेत्य वुदिय—'का पुष्पजी ने यों अनुवाद किया है—

> कुछ तो निद्रित भी जागृत हैं,
> जगे हुये भी सुप्त कई।
> कुछ तो नहा-धोकर जूठे,
> घर कर के भी मुक्त कई।

पुष्पजी की पहली कश्मीरी रचना सन् १९३१ में श्रीप्रताप कालेज की पत्रिका 'प्रताप' में छपी थी। इस रचना का शीर्षक था—'कालेज जण्टमेनन्य ब्यद' (द वे आफ ए कालेज जेंनटलमैंन)। इसमें एक कालेज-छात्र की दिनचर्या तथा उसकी अन्य गतिविधियों का रोचक भाषा-शैली में वर्णन किया गया था। रेडियो के लिए भी पुष्पजी ने कुछ रूपक, फीचर आदि लिखे हैं। 'संगरमालन प्यव प्रागार' इनका एक प्रसिद्ध फीचर है। इसमें कश्मीर की प्राचीन संस्कृति एवं जीवन पद्धतियों का वर्णन किया गया था।

कश्मीरी कविताओं को हिन्दी मे रूपांतरित करने के अलावा पुष्पजी ने किन्हीं हिन्दी कविताओं को कश्मीरी में भी सफलतापूर्वक रूपांतरित किया है। कश्मीरी में भी पुष्पजी ने मौलिक कविताएं रची हैं किन्तु इनकी संख्या अत्यल्प है। गांधीजी के निधन पर रचित इनकी एक कविता 'भारत मातायिहिन्द वेदाम' (भारत-माता का विरहगीत) से कुछ पंक्तियां देखिए—

> चे धोरानोविथ दोह्—'अहिंसा इलाज छु सारनिय खुरन्यहुन्य
> शहीद सपदुख च पान पत्यकिस जिहादसय मंज़ अमारह स्याने,
> चे सूर सपदुय शहीद बदनस्य सोरम कनि लागना सु चेश्मन
> छोट्य चोपार्य चे. नूर पत्रारन्क ब तूर सपदोस बकारा स्याने···

तूने हमेशा यही कहा कि अहिंसा ही सभी प्रकार की समस्याओं का इलाज है। रे मेरे लाल, आज तू सत्य के मार्ग पर शहीद हो गया। मैं क्यों न तेरे शरीर की पवित्र भस्मी अपनी आंखों में काजल के स्थान पर लगाऊं। तू ने मेरे चारों ओर सत्य का प्रकाश फैला दिया और मैं एक दिव्य-पुंज बन गई···।

एक आलोचक की हैसियत से पुष्पजी का कश्मीर साहित्य को योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनका समालोचना-साहित्य इनके मौलिक सृजनात्मक कार्य से मात्रा में अधिक है। कश्मीरी भाषा और साहित्य पर इन्होंने लगभग १०० से ऊपर शोधपूर्ण निबन्ध लिखे हैं। पुष्पजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे जिस विषय पर लेखनी उठाते हैं उस विषय की पूरी-पूरी जानकारी पूर्ण आलोचनात्मक दृष्टि से पाठकों को देते हैं। निबन्धों में यह विशेषता स्पष्टतया परिलक्षित होती है। ये निबन्ध हिन्दी, अंग्रेजी, कश्मीरी तथा उर्दू में लिखे गये हैं। हिन्दी में लिखित इनके महत्वपूर्ण निबन्धों के नाम हैं—'कश्मीरी भाषा और साहित्य' चतुर्दश भाषा निबन्धावली, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना द्वारा प्रकाशित, 'कश्मीरी' हिन्दी साहित्य कोश में प्रकाशित, 'कश्मीर में रामकथा' मैथलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ मे प्रकाशित, कश्मीरी लोकगीतों में सांस्कृतिक अभिव्यक्ति' सम्मेलन पत्रिका के 'कला-संस्कृति' अंक में प्रकाशित, 'कश्मीरी कविता में लयात्मकता' मलायलम भाषा में अनूदित, शंकर कुरुप अभिनन्दन-ग्रन्थ में प्रकाशित आदि। इसके अतिरिक्त इनका अंग्रेजी में लिखित एक महत्वपूर्ण शोधपत्र 'कश्मीरी लिट्रेचर' 'कान्टेम्परेरी इण्डियन लिट्रेचर' शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। उर्दू में लिखित इनकी 'महजूर' और 'मासाद' शीर्षक दो पुस्तिकाएँ गम्भीर एवं मौलिक चिन्तन से युक्त हैं।

पुष्पजी की गणना कश्मीरी के उच्चकोटि के विद्वानों में होती है। ये साहित्य अकादमी, दिल्ली के जम्मू व कश्मीरी राज्य की ओर से प्रतिनिधि सदस्य रह चुके हैं।

## नूर मुहम्मद 'रोशन'

इनका जन्म २१ मई १९१९ में रेयिटेंग, खानयार (श्रीनगर) में हुआ था।

'रोशन' १९५० तक कविताएँ करते थे। १९५० के बाद ये नाटक और कहानियाँ लिखने की ओर प्रवृत्त हुये। १९४७ में पाकिस्तानी-आक्रमण के विरुद्ध कश्मीरी साहित्यकारों ने मिलकर जिस 'कल्चरल-फ्रंट' की स्थापना की थी, 'रोशन' उसके सक्रिय सदस्यों में से एक थे। 'रोशन' ने प्रारम्भ में जो कविताएँ लिखी उनमें देशभक्ति की भावना प्रधान रही—

१—जिगरपार, म्याने त अछगाशि म्याने
दितुथ खून थे, वतनक्यिस शालमारस,
छसय मोज आम् च शहीदो सलामथ
दितुथ सग गुलन हुसुन नोवबहारसर

रे मेरे जिगर के टुकड़े, रे मेरी आँखों के तारे। तूने अपना खून देकर वतन रूपी शालीमार-बाग को सींचा। देख तेरी मां, तेरी कब्र पर सलामी देने आई है…।

२—वतन आज़ाद थावुन छुम
नोवुयकश्मीर बनावुन छुम,
मुहब्बत बोगरावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम।
मे आस आराम त्रावुन छुम
जंगुक मैदान बसावुन छुम
पनुन दुश्मन मिटावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम।
गुलामोहुन्द वहम त्राविथ
जवानोहुन्द पिरम थाविथ
पनुन तकदीर बनावुन छुम
नोवुय कश्मीर बनावुन छुम…।

मुझे अपने वतन को आजाद करना है तथा … कश्मीर बसाना है। ऐश और आराम छोड़कर जंग के लिए मोर्चा … मुझे अपने दुश्मन को मिटा देना है तथा एक … को तोड़ डालना है तथा …

… ये समाज की विभिन्न … भ्रष्टाचार की विभिन्न … मोर्चाबन्द हो चुका है।

'सोनसमगार' इनका दूसरा समस्याप्रधान नाटक है। इसमें कश्मीरी-समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों एवं अन्धविश्वासों का चित्रण सुन्दर ढंग से किया गया है। ये दोनों नाटक रंगमंच पर खेले जा चुके हैं। 'रोशन' ने रवीन्द्रनाथ टैगोर के कुछ नाटकों का भी कश्मीरी में रूपान्तर किया है। रूपांतरित नाटकों के नाम हैं—१—कोरबानी, २—मालिनी और ३—पशामस्टर [illegible]। ये तीनों नाटक 'कोरबानी' शीर्षक से एक पुस्तक के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुके हैं। यह पुस्तक राजकीय महिला कालेज श्रीनगर की ओर से प्रकाशित हुई है। इनका एक और नाटक 'वोजस्य-गोलाब' साहित्य अकादमी की ओर से १९६२ में एक नाटक-संग्रह में प्रकाशित हुआ है।

'रोशन' की कहानियों का वर्ण्य-विषय भी सामाजिक समस्याओं पर आधारित है। इनकी 'नेहगट्' तथा 'वोगुडलुन' शीर्षक दो कहानियां काफी लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी हैं। ये दोनों कहानियां समाज की खोखलाहट पर तीखा व्यंग्य करती हैं। ये कहानियां 'कोंगपोश' पत्रिका में १९५१ में छपी थीं।

'रोशन' साहब जम्मू व कश्मीर राज्य के सूचनालय विभाग के अन्तर्गत लाला-रुख प्रकाशन विभाग में काफी समय तक प्रभारी रह चुके हैं। यहां पर उन्होंने अपने कार्यकाल के दौरान निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रकाशन कश्मीरी जगत् को उपलब्ध कराये—

| | |
|---|---|
| १—पोश ये (तीन भाग) | कश्मीरी लोककहानियों का संग्रह |
| २—मोश तु. माव | कश्मीरी लोकगीतों का संग्रह |
| ३—कुन्य कथ | कश्मीरी के तीन नाटकों का संग्रह |
| ४—सुमरन | मास्टर जिन्दाकौल की कविताओं का संकलन |

## शम्भुनाथ भट्ट 'हलीम'

तहसील कुलगाम में 'अरू' नाम से एक गांव स्थित है। 'हलीम का जन्म इसी गांव में एक जुलाई १९२१ को हुआ था।

'हलीम' ने पद्य और गद्य दोनों में लिखा है। पद्य-रचना के अन्तर्गत इन्होंने 'मोज बूतरात' शीर्षक से एक प्रसिद्ध रूपक-काव्य तथा कुछ कविताएँ लिखी हैं। 'मोज बूतरात' में बसंत के नवागमन पर वसुन्धरा-देवी की अभिनव शोभा तथा उसके श्रृंगार का वर्णन किया गया है। अन्य कविताओं में प्रेम व सौन्दर्य का वर्णन प्रधान है। अपनी 'सफर' शीर्षक कविता में 'हलीम' ने प्रेम की सर्वव्यापकता तथा उसकी समर्थता को यों वर्णित किया है—

येम्य जून छि गेंडमु.च सिरियस सू.स्य
येम्य नब थोव मुदयि जमीनस कुन
येम्य मालि गोबुर थोव खोनि सलवुन
युस पाद छु फलनावान मोलिस
यस शार छु तस्य तस्य वननावान

'सोन मदव' १९६४ से

प्रेम एक ऐसा बन्धन है जिसने चन्द्रमा को सूर्य के साथ बांध रखा है, आकाश को पृथ्वी की ओर निहारते रहने के लिए उत्प्रेरित किया है, एक मा को शिशु को गोद में झुलाने के लिए प्रवृत्त किया है, एक पिता को संतान की खातिर संघर्षप्रिय बना दिया है तथा एक शायर के हृदय से उबलते शेरों का प्रवाह बहाया है।

'हलीम' ने पद्य की अपेक्षा गद्य मे अधिक लिखा है। गद्य मे लिखित इनकी निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

१—वालयार

२—भलकारी

३—शंकराचार्य

४—गोदावरी और

५—रत शहरी

'वालयार' बच्चों के लिए लिखी गई विभिन्न उपदेशात्मक कथाओं का संकलन है। भारत सरकार ने सन् १९५६ मे इस पुस्तक को पुरस्कृत भी किया है। 'भलकारी', 'शंकराचार्य' और 'गोदावरी' हिन्दी से कश्मीरी में तथा 'रत शहरी' अंग्रेजी से कश्मीरी में अनूदित पुस्तकें हैं। 'रत शहरी' प्रकाशन विभाग भारत सरकार की ओर से प्रकाशित हुई है।

## सजर-मगरबी

इनका पूरा नाम गुलाम मोहीउद्दीन तथा उपनाम 'सजर-मगरबी' है। श्रीनगर के मुहल्ला कनीकदल में जून १९२१ मे इनका जन्म हुआ था।

सजरमगरबी एक योग्य अध्यापक होने के साथ-साथ कश्मीरी के प्रसिद्ध हास्य कवि भी हैं। साधारण जनजीवन से लिए गए अथवा नित्यप्रति व्यवहार मे आने वाले विभिन्न घटना-प्रसंगों को ये ऐसी रोचक भाषा-शैली में वर्णित करते हैं कि श्रोतागण अथवा पाठकगण अपनी हँसी को रोक नही पाते। इनके हास्य-निरूपण में कोरी विनोदशीलता नही रहती अपितु उसमें व्यंग्य की नुकीली चुटकियाँ भी समाहित रहती है। भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये कभी-कभी अंग्रेजी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। इनके कलाम का एक नमूना प्रस्तुत है—

> रोपय आसान छि वस्तुक राज रोपय छि अथ कमानम ताज
> रोपय छि काजी इसाहजत रोपय दवा छि
> रोपय आसेन्य छि शहजवरी रोपय म
> रोपय छि

है तो दुराचारी होकर भी सदाचारी कहलाग्रोगे ।

## सोमनाथ जुत्शी

इनका जन्म श्रीनगर में मई १६२२ में हुआ था।

जुत्शी साहब कश्मीरी के उन लब्ध-प्रतिष्ठित साहित्यिकों की पर माते हैं जिन्होंने अत्यधिक व्यस्त रहते हुए भी कश्मीरी साहित्य की अमूल्य है। कश्मीरी गद्य को एक व्यवस्थित रूप देने में इनका विशेष हाथ रहा है। के प्रसिद्ध कवि श्री दीनानाथ नादिम को प्रकाश में लाने का श्रेय इन्हीं को है।

जुत्शी साहब पहले-पहल उर्दू में कहानियां लिखते थे। १६४७ के आ से ये कश्मीरी में लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। 'यिनि गाश फोल' शीर्षक से पहली कश्मीरी कहानी लिखी। इसके बाद दो-चार कहानियां और लिखीं 'कुहुन ग्रोबुर' काफी लोकप्रिय हुई। इस कहानी का मुख्य उद्देश्य वात्सल्य- महत्ता को दिखाना था।

जुत्शी साहब ने कुछ नाटक भी लिखे हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं—'वेथि वठ्य जु', 'नोव मकान', 'अमानत', 'पोछ' आदि। 'थेजे' शीर्षक से इन्होंने इ प्रसिद्ध नाटक 'द वाइल्ड डक' का अनुवाद भी किया है। यह नाटक १६६२ में स अकादमी, दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुआ है।

'अमानत' जुत्शी साहब का सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है। यह रेडियो प प्रसारित हो चुका है। इसमें मजदूर-मालिक के संघर्ष को सफलतापूर्वक चि किया गया है। इस नाटक से एक अंश प्रस्तुत है—

साजि—क्याह, लडोय मा केरुथ। मोजूरि गोछुय नु, कोस अनुन।

रहीमशेख - रथ कड़स, मोजूर्य खेयि। बईमानन पांछ जनान करेन अज ताम।
शुर्य खेत्य अछिन प्यठ। फिकरि तारस ल्यख कडेन्य क्याह गयि।

साजि—चे मा वोनयस कँह योरु।

रहीमशेख—गोड यिछि मोजूरि थठ।—व छुस दपान वेथि कांह कोम करहा तस
दिम हा न कामि दोह।

साजि—अनतस वलाय। पननि जुवु खोत छा कँह, बेथि कँह करुु।

रहीमशेख—ती वोतुम सोचान, ब छुस दपान जि······

साजि—क्या, झगड़ा तो नहीं किया। कहीं अब वह तुम्हारी मजदूरी न खा जाये।

रहीमशेख—जान ले लूंगा उसकी यदि मजदूरी खा जाये। बेईमान की पाच-प
औरतें है उसका कुछ नहीं और मेरी गृहस्थी को देख जलता है।

साजि—तुमने कहा तो नहीं उसे कुछ।

रहीमशेख—वैसे भी में मजूदरी से तंग आ गया हूं। सोचता हूं कि कोई और ध
करूं। उसके यहां काम करने को जी नहीं करता।

साजि—छोड़ दो ना फिर, अपनी सेहत से बढ़कर और कौन सी चीज है।

रहीमशेख—यही सोच रहा हूं कि क्या धन्धा करूं, सोचता हूं कि······)

## गुलाम नबी 'फिराक़'

इनका जन्म १५ जुलाई १६२२ को श्रीनगर के बोहरीकदल मुहल्ला में हुआ था।

'फिराक' १६४७ तक उर्दू में कविताएँ करते थे। इसके बाद उन्होंने कश्मीरी में लिखना शुरू किया। इनकी डेढ़ सौ से ऊपर कश्मीरी कविताएं अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। १६४७ से लेकर १६६७ तक की कालावधि के बीच इनकी चिन्तन-प्रक्रिया में तीन प्रमुख परिवर्तन हुये हैं। १६५६ तक लिखी इनकी कविताओं में मार्क्सवादी प्रभाव परिलक्षित होता है। अधिकांश कवितायें पूँजीपतियों के शोषण के विरुद्ध रची गई हैं। १६५६ से लेकर १६६० तक की कविताओं में प्रयोगवादी प्रवृत्ति प्रधान है। इन कविताओं में भाव और शिल्प की दृष्टि से नूतन प्रयोग मिलते हैं। १६६० के बाद रची गई कविताओं में 'फिराक' की दार्शनिक दृष्टि प्रधान हो गई है। इनमें उनकी कवि-दृष्टि बहिर्जगत् से हटकर अन्तर्जगत् की गहराइयों में डूब गई है। ये कविताएँ जहां एक ओर कवि के अन्तर्मन की सूक्ष्म भावस्थितियों को अभिव्यंजित करती हैं वहां दूसरी ओर जीवन और जगत्में व्याप्त विभिन्न विरोधाभासों से जनित अन्तर्द्वन्द्व और आशा निराशा को भी अभिव्यक्त करती हैं।

'फिराक' का प्रथम काव्य-संकलन 'यिम सोन्य आलव' शीर्षक से प्रसिद्ध कवि रहमान राही के सहयोग के साथ १६५२ में प्रकाशित हुआ है। इस सकलन में 'फिराक' की चार कविताएँ संगृहीत हैं। 'फिराक' कई वर्षों तक श्रीप्रताप कालेज श्रीनगर में पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कार्य करते रहे। कालेज की प्रत्रिका 'प्रताप' में इनकी कविताएँ नियमित रूप से छपती रहती थी। सन् १६६० में इनका इसी कालेज में अंग्रेजी के व्याख्याता-पद पर चयन हुआ। इन्हें पत्रिका के कश्मीरी विभाग का प्रधान संपादक बनाया गया। अपनी लगनशीलता से 'फिराक' ने पत्रिका के कश्मीरी विभाग में नई जान डाल दी। छात्रों में कश्मीरी के प्रति लगाव एवं रुचि उत्पन्न करने के लिये इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया। छात्रों की रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने कश्मीरी के अन्य, प्रसिद्ध लेखकों की रचनाओं को भी इस पत्रिका में स्थान दिया। कारण, कश्मीरी में प्रकाशित होने वाली एक-आध पत्रिका के सिवाय कश्मीर में और दूसरी कोई पत्रिका लेखकों के उत्साहवर्द्धन के लिए नहीं थी।

मौलिक काव्य-रचना के अतिरिक्त 'फिराक' ने अंग्रेजी भाषा के किन्हीं प्रसिद्ध कवियों की कविताओं को कश्मीरी में सफलतापूर्वक रूपातरित किया है। इन कवियों के नाम हैं—टी० एस० इलियट, कीट्स, शेक्सपियर, टेनीसन आदि। कीट्स की कविता 'ओड टू नाइटिंगेल' का रूपांतर काफी सुन्दर बन पड़ा है। इसके अतिरिक्त इन्होंने मारलो के प्रसिद्ध नाटक 'फास्टस' तथा मोलिएर के प्रहसन 'विकेड बिकम्स जेण्टलमैन' का भी कश्मीरी में अनुवाद किया है।

'फिराक' द्वारा रूपांतरित कीट्स की कविता 'ओड टू नाइटिंगेल' से कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

बाय तमन्ना छुम बु. अख्‌हा दाम जोरा सु शराब
ख्वमुत युस आसिहा पातेल्य शिहलिस मुरथाह,
मोठ्य करिमित आसहन यस माजबीनव सोंत चव
साथि कोरमुत शिहिल्य सब्‌जारन पनुन यथआसिहा,
आसि हय युस तेस त सरतास युथ फोलवुन बहार
युस संगरमालव ससवुमुत आसिहा हो हो करान,
सोंतशिस तापस त शेहजारस त जूनु. गाटास अन्दर
सुय शरावा दाम जोरा सु शराबा बे हिसाव…।

'प्रताप' अंक ४०

बस यही तमन्ना है कि एक बार उस शराब के केवल दो घूंट पियूं जिसे मौसिम-बहार के फरिश्तों ने चूम लिया हो तथा अपनी ताजगी एवं मस्ती बख्शी हो, जिसे उत्तुंग हिमशिखरों ने स्निग्ध चांदनी और शीतल पवन में डुलाया हो…।

## अर्जुदेव 'मजबूर'

इनका जन्म तहसील कुलगाम में जैनापोरा नामक एक गांव में सन् १९२३ में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही गांव में प्राप्त कर इन्होंने अध्यापन-व्यवसाय ग्रहण कर लिया।

'मजबूर' ने तीन दर्जन से ऊपर कवितायें लिखी हैं। ये सभी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। 'मजबूर' एक प्रगतिशील कवि है। आज के मशीनी युग में रागात्मिका वृत्ति पर नीरस बुद्धिवादिता किस प्रकार हावी हो रही है, हृदय की कोमल भावनाओं को शुष्क विचारशीलता किस प्रकार दाब रही है तथा व्यक्ति किस प्रकार अस्तित्वशून्य होता जा रहा है—इनकी कविताओं के प्रमुख कथ्य हैं—

मिशीनव जिन्दगी बदलोव पोशा गव
द्रोगान गेयि जिन्दगी आदम द्रोग गव
दिलुक श्रेह होख त हसदुक नार तेजयव
विलन जालन छलन मंज़ प्यव सुबह शाम
छु आदम अज़ पकान लियवान मंजिलस…।

'सोन अदब' पृ० ८२,१९६६

मशीनों ने हमारी ज़िन्दगी बदल डाली—यह सच है। किन्तु इससे मानव-जीवन सस्ता हो गया। हृदय की सरलता सूख गई और वैमनस्य की आग भड़क उठी। सुबह से शाम तक छल, कपट और फरेब में डूबा आज का मानव घसीटता हुआ मंज़िल की ओर बढ़ता जाता है…।

## अमीन कामिल

इनका पूरा नाम मुहम्मद अमीन है। 'कामिल' उपनाम है। इनका जन्म १ मार्च १९२४ में कापरन, शोपियान में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर लेने के पश्चात् ये उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिये अलीगढ़ गये जहां सन् १९४५ में इन्होंने

बी० ए०, एल-एल बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कामिल आधुनिक कश्मीरी साहित्य के मेरुदण्ड हैं। इन्होंने कश्मीरी साहित्य की प्रत्येक विधा पर सफलतापूर्वक लेखनी चलायी है। कविता, कहानी, नाटक, समालोचना, उपन्यास, निबन्ध, अनुवाद-कार्य, संपादन, पाठालोचन आदि सभी क्षेत्रों में इनकी बहुमुखी प्रतिभा निखर उठी है।

कामिल प्रारम्भ में उर्दू में कविताएँ करते थे। उर्दू में लिखने का यह क्रम १९३७ से लेकर १९५२ तक चला। इनकी पहली उर्दू कविता जम्मू से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'रतन' (१९३८) में छपी थी। कश्मीरी की ओर ये १९५२ से प्रवृत्त हुये। इनकी पहली कश्मीरी कविता 'शायर मर्या जाह' (शायर कभी मर सकता है?) 'कोंगपोश' (१९५२) में छपी थी। तब से लेकर कामिल ने २०० से ऊपर कविताएँ लिख डाली हैं जो समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में तथा अन्य काव्य-सकलनों के अन्तर्गत प्रकाशित हुई हैं। चिन्तन-प्रक्रिया की दृष्टि से कामिल की कविताएँ दो श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत उनकी ऐसी कविताएँ आती हैं जो भाव और शिल्प की दृष्टि से सामान्य कोटि की बन पड़ी हैं। इन्हें कवि के 'प्रारम्भिक अभ्यास' की देन समझना चाहिये। इन कविताओं में प्रकृति व शृंगार का वर्णन ही प्रधान है। इन कविताओं का एक संकलन 'मसमलु.र' शीर्षक से १९५५ में छपा है। इस संकलन की एक कविता 'गुल-लाला' से कुछ पंक्तियाँ हैं—

> वान महारेन्या वोशलेमु.च डीशिथ पनुन लावन्द
> या बीज़यगारन नाररेह करमु.च छि नज़र बन्द
> छुस यावनस अन्दरति कुहुन दाग वेलित नाल
> वान कार्तिकेच ज़ूनि वुथिस प्यठ छु सियाहखाल…

गुल-लाला पुष्प की लालिमा ऐसी लग रही है मानो एक दुलहिन अपने पति को देख लज्जारुण हो गई है। या एक बाज़ीगर ने आग की लपट को नजर-बन्द कर डाला है। उसके बीच में लगा काला दाग ऐसा लग रहा है मानो शरच्चन्द्र के मुखमण्डल पर काला तिल सुशोभित हो रहा हो…।

द्वितीय श्रेणी की कविताएँ १९५५ और १९६५ के बीच रची गई है। इनमें से लगभग ५८ कविताएँ 'लव तु. प्रव' शीर्षक काव्य-सकलन के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुकी हैं। इस संकलन पर कामिल को १९६७ का साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिला है। यह काव्य-संकलन आधुनिक कश्मीरी काव्य-साहित्य में कई दृष्टियों से विशिष्ट स्थान रखता है। स्वयं कवि ने इस बात की उद्घोषणा सकलन की भूमिका में इस प्रकार की है—'ये कवितायें वर्ण्य-विषय तथा शिल्प की दृष्टि से नितान्त नवीन हैं। इनमें नव्य प्रयोगात्मक शैली एवं कथ्य का सन्निवेश है। इस 'प्रयोग' का चलन हमारी कविता में अभी-अभी हुआ है—।'[1] कामिल साहब का उक्त कथन पर्याप्त सीमा में सही है। ये कविताएँ निःसन्देह कश्मीरी काव्यशैली में एक नूतन प्रयोग का आभास कराती हैं।

१. 'लव तु. प्रव' भूमिका से, अमीन कामिल

वर्ण्यविषय की दृष्टि से वह ये कविताएँ विविधता लिये हुये हैं। इनमें कल्पना की ऊंची उड़ान कम तथा जीवन के सुन्दर-असुन्दर का यथार्थ अंकन अधिक है। 'शिहिज बूल्य' 'करामाथ', 'तलाश', आदम छु पयनय', 'पगाह कोर गछ़क' आदि उच्चकोटि की प्रयोग-वादी कवितायें बन पड़ी हैं। 'सुबह', 'तारुक प्रजल्येव', 'जून' 'नीलनाग' आदि कविताएँ शिल्प की दृष्टि से काफी सुन्दर हैं। इनमें प्रयुक्त बिम्ब एवं अन्य उपमान पारम्परिक होते हुये भी आधुनिकता लिये हुए है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं —

(१) गाशु. तारख जिन्दगियि हेंज माथि ह्याथ बतु.थान आव
रोव़ हुन्द बोछि ताय चोल संगरन बिचारन गाश आव,
सुबह फोल जन गोम्य यावन मल्य छुन दोबिआव पोछ़
या अकिस अनि माजि यिथनुक गाशदार अच्छगाश आव,
तारकन हंजि नाव सारेय आयि कयतां गाठ कुन
सदर सोन लोली सपु.ज जन ओश सोदय हाव-हाव
पूरकिन्य ह्योत नूर बुथ्य कमितास छुन वोम आलमस
आसमान वोशल्यव जन नोशि वोरिविथ ह्याथ आयि प्याव

नये जीवन की आस लेकर सुबह का तारा हाथ में भोजन-थाल लिये घर से निकल पड़ा। तारा गाव प्रभात के आगमन पर प्रकाशित हो उठा मानों उगने एक लम्बा धवल परिधान धारण कर लिया हो, या एक अन्धी को मानो पुत्र रूपी नेत्र-प्रकाश प्राप्त हो गया हो। आकाश-समुद्र में तारामों की नौकाएँ लुप्त हो गईं और ये न जाने किस घाट की ओर प्रस्थान कर गई हैं। पूर्वांचल से एक घने प्रकाशपुंज का उदय हुआ और वह सकल संसार को भाकने लगा।

(२)—चेर तु. केंह खामोश राथ
टस टस टस
कथ न बाथ
अेन अ.छन हुन्द बेसबर अन्द इन्तज़ार
'योथ मस्तो'
तड़ तड़ाख
'तुम मा छुय है ?'
'मुच येमनि, योरकय वे.तल आनि, सामाना पन गुर
मार बुजिथ, यार ह्य. पंन्जिय वरुयोथ
याजन्.च तेह येनि हुमी मोरिथ वि बर वानथ सुमी
बोनमुन मोरय मद़ी कार्यहिहिस मगर यथुन
यार बोठव शाम हेंजन ताली बेंगाय बनन ——

कामिल की सर्वव्यापी कवि-दृष्टि ने हिन्दू संस्कृति की ऐसी अनेक कल्पनाओं व पद्धतियों को अपनी कविताओं में सफलतापूर्वक उतारा है जो उनके अनुसार काव्य-सौन्दर्य को बढ़ाने में समर्थ थीं। 'नव तु. प्रश' की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"मैं

कविताओं में यत्र-तत्र हिन्दुओं के पौराणिक तथा धर्म-संस्कृति सम्बन्धी बिम्ब व शब्द प्रयुक्त किये हैं क्योंकि ये हमारे जीवन के साथ घुलमिल गये हैं—हमारे बन चुके हैं—।[1] इन कविताओं में 'वापसी', येलि तम्य दोप' आदि उल्लेखनीय हैं। कवि ने 'नटराज', 'ताण्डव नाच', 'शंकर', मायावती', 'कदम्ब' आदि पौराणिक शब्दों का यथास्थान सटीक प्रयोग किया है।

कामिल एक सुलझे हुये कहानीकार भी है। अपने 'कथिमंज कथ' शीर्षक कहानी-संग्रह की भूमिका में इन्होंने कहानी-लेखन की ओर प्रेरित होने के प्रसंग में लिखा है—'जो ख्याल शेर न बन सका उसे मैंने कहानी का रूप दे दिया और इस तरह से मेरी कहानियाँ वजूद पा गईं—।'[2] कहानियों में नये प्रयोग करने के विषय में इन्होंने आगे लिखा है—' मैं कहानियों में नये प्रयोग करने के खिलाफ नहीं हूँ। मगर ये प्रयोग ऐसे होने चाहियें कि पाठक को कहानीकार के साथ-साथ फलागम तक पहुचने में कोई बाधा न आये।'[3]

'कथिमंज कथ' कहानी-संग्रह मे कामिल की १० कहानियां आकलित हैं। इस कहानी-संग्रह पर कहानीकार को राज्य की कल्चरल अकादमी का १९६८ का पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है। ये सभी कहानियां जीवन को नये परिवेश व नये अन्दाज के साथ चित्रित करती हैं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से 'लाग', 'नोव तावन', 'वेछि', 'पोतकल', 'ब्रयग्यार', 'प्यण्डपुरन' आदि उच्चकोटि की कहानियां बन पड़ी हैं। 'लाग' कहानी में एक ऐसे सहृदय कम्पाउण्डर के आत्मोत्सर्ग का वर्णन है जो क्षयरोग से बुरी तरह ग्रस्त एक सुन्दरी का मनोवैज्ञानिक तरीके से उपचार करता है—उसे प्यार देता है और बदले में स्वयं उस संक्रामक रोग का शिकार हो जाता है। 'नोवतावन' दो कालेज-छात्राओं शीला और जुबेदा की ऐसी कहानी है जो समाज से छिपकर समाज के ही किन्हीं तथाकथित चरित्रवान 'बंगलेवालों व कारवालों' की वासना को सन्तुष्ट करने के लिए मजबूर हो जाती हैं। शीला न जाने कैसे इस चक्कर में पहले से ही फंस चुकी होती है और वह अपनी भोली (?) सहेली जुबेदा को भी छल से उस 'अड्डे' में ले जाकर, उसे वहां भेंट करने में सफल हो जाती है। कहानी का नाटकीय अंत शीला और जुबेदा के इस सम्भाषण से होता है—

> शीलन कौर क्याहतताम जुरत ह्यू त मशामत सान वछ जुबेदस कुन—' मे ह्य दीति मोकी। चे वुछुत सन्य में केहिन्दि स्तोतरे प्यव मे यि करुन व प्रोसस अम मंश स्यठा बेवस त मजबूर।'

बे ति ... .ये

.म्यू.

1. ... ववरा

... न उबल

सीता ने तनिक साहस बटोर कर जुबेदा से कहा—'मुझे माफ़ करना बहिन! तुम ने स्वयं देख लिया होगा कि यह सब कुछ मुझे क्यों और किन हालात में करना पड़ा। मैं विवश और मजबूर थी।'

'तुम्हारी मजबूरी उचित ही थी'—जुबेदा ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—'हां, एक बात है, तुम ने भी कोई नयी चीज उसे भेंट नहीं की। उस दुराचारी ने तो मुझे बहुत पहले अपने जाल में फंसा लिया था। मैं तो केवल यह सोच रही थी कि कहीं आज किसी दूसरी मुसीबत का मुंह न देखना पड़े।'

'वेछि' एक कर्तव्यनिष्ठ डाक्टर (अशरफ़) और एक रूपसी भिखारिन (मोगल) की कहानी है जिसमें एक भिखारिन के जीवन की विवशताओं तथा उसके व्यक्तित्व के साथ घुले-मिले उन संस्कारों का वर्णन है जिनसे उसे इस संसार में कोई भी भला आदमी नहीं दिखता है। डाक्टर अशरफ़ ने उसे इस लिये मुंह नहीं लगाया था क्योंकि वह सुन्दर थी या जवान थी बल्कि न जाने क्यों वह दयावश उसे यदाकदा दो-एक पैसे दे दिया करता था। एक दिन जब भिखारिन एक सुन्दर-सुडौल शिशु को बाहों में लिये अस्पताल के अन्दर आई तो डाक्टर अशरफ़ के आश्चर्य की सीमा न रही। वह सोच भी न सकता था कि भिखारिनों के भी ऐसे सुन्दर-स्वस्थ बच्चे हो सकते हैं। वह 'शिशु-प्रतियोगिता' में भाग लेने के लिये बच्चे को ले जाता है। डाक्टर अशरफ़ का बच्चा सर्वश्रेष्ठ घोषित किया जाता है। पुरस्कार की राशि तथा बच्चे को जब अशरफ़ उस भिखारिन को लौटाता है तो वह केवल इतना सोच पाती है—

"मोगलि तोर सिर्फ़ यूतुय योत फ़िकिरि जि डाक्टर सोबस छि गरि
क्याहताम शादी ओसमुच। यि द्रयि कमर मंज नेबर त नेरान-नेरान
ओवुन डाक्टर अशरफस कुन सो नज़र ज़नतु वोननस—
'चे क्याहज़ि कोरथ मे ठठ। मे छोस्याव सिर्फ़ चानि मोख आव।'

मोगल केवल इतना समझ पाई कि डाक्टर के घर पर आज कोई महोत्सव है तभी मुझे इतने सारे रुपये दे रहे हैं। वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकली और डाक्टर अशरफ़ की ओर ऐसी दृष्टि फेंकी मानो कह रही हो—मेरा मज़ाक क्यों उड़ाया तुम ने, मैं तो आज केवल तुम्हारे लिए नहा धोकर आगई थी।

'पोतकल' एक ऐसी निपूती ग्रामयुवती की कहानी है जो विवाहोपरान्त नौ वर्षों से अपने मायके से दूर ससुराल में रह रही है। इन नौ वर्षों में उसके कोई सन्तान नहीं हुई—यही दुःख एक अभाव बन कर उसे दिनरात कचोटता रहता है। एक रात वह अपनी बूढ़ी सास से नज़रें बचाकर अपने मायके जाने की ठान लेती है। गांव लगभग पांच मील दूर होता है। वह नंगे पांव हाफ़ती-भागती चली जाती है। मायके का गांव निकट आजाता है। वहां की प्रत्येक वस्तु देखकर उसकी नौ वर्ष पुरानी स्मृति ताज़ा हो उठती है और उसे अपना बचपन याद आता है। मायके की नदिया, पेड़, झोंपड़ियां, वहां की मिट्टी आदि उसे असीम आनन्द देती हैं। वह झूम उठती है। मायके की नदिया देख उसका हृदय भावविभोर हो उठता है—

> असि वोर बुटन प्यठ वोथ त पत्थर बिहिथ तेज़ अथ ओथि प्यठ थ्रेश चेति। अख वोठ, ब वोठ, त्रे वोठ—यि गयि बयान बनत सुम्बरि बोह मावुक बुथ योमुत न बुछमुत 'कोताह म्यूठ छु यि म्यानि मालिन्युक आब 'असि सूंब——। अमि पत छुनुन बुथिस आब चोंबा वोरिथ- 'सेबसरा मालनिकि आबा, वोलिज़ हा रोह्लेयम'—यि बनिथ येछ् चोर त वापि गामस बुन।

उसने अपने होंठों पर जीभ फेरी और नदिया के किनारे के पास बैठकर पानी पीने लगी। एक बार, दो बार, तीन बार—वह पीती ही गई, जैसे उम्र भर कभी पानी पिया ही नहीं हो। वह सोचने लगी—मायके का पानी भी कितना मीठा होता है ……। इसके बाद उसने मुंह धोया। भरे कण्ठ से निकल पड़ा—रे मायके के पानी तुम्हारे बलिहारी जाऊं, मेरे हृदय को तूने असीम ठण्डक पहुंचायी।

अन्त में उसे सहसा ध्यान आता है कि वह निपूती है। उसका पति कल ही तो पास के एक गांव में एक साधु से मिलने गया था। सुनते हैं पहुंचा हुआ साधु है। शायद उसका तावीज़ काम कर जाए। मुझे घर में न देखकर पति की सारी मेहनत बेकार हो जाएगी। ऐसा विचार करते हुए वह मायके वालों से मिले बिना उलटे पांव वापिस ससुराल की ओर मुड़ जाती है।

'मस्यपयार' एक ऐसी निर्भीक, कर्मठ किन्तु निर्धन व विवश युवती के प्राणोत्सर्ग की कहानी है जो दूसरा विवाह केवल इसलिए करती है क्योंकि पहले पति की एकमात्र निशानी गुलामा के लालन-पालन का कोई मार्ग निकालना ज़रूरी था। भाग्य की विडम्बना! दूसरा पति भी कुछ ही बरसों बाद चल बसता है। बेचारी मस्यपयार को स्वयं घर का भार संभालना पड़ता है। वह लोगों की रजाइयां बनाती है, उनमें डोरे निकालती है, 'कांगड़ियों' की मरम्मत करती है आदि। उसका पुत्र यदि थोड़ा-सा भी समझदार होता तो शायद [illegible] लिये यह सब न करना

पड़ी। दीवान साहब को लगा जैसे जमीन फटती जा रही हो और वे उसमें समा रहे हों—[1]

कामिल ने 'गटिमंज गाश' ('अंधियारे में प्रकाश') शीर्षक एक उपन्यास भी लिखा है। उपन्यास १९४७ में कश्मीर पर हुये कबाइले हमले के दौरान कश्मीरियों के प्रतिकार तथा हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारे की भावनाओं को लेकर लिखा गया है। कश्मीर में साम्प्रदायिक-एकता को सुदृढ़ करना इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

कामिल के नाटकों में 'पगाह छु गाशदार', 'हब्बाखातून' आदि उल्लेखनीय हैं। ये नाटक देश की भावात्मक एकता को जाग्रत करने के उद्देश्य से लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर के दो नाटकों का कश्मीरी में रूपांतर किया है। ये नाटक 'डाकघर' ३ भाग और 'राज त रोन्य' शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं।

'नूरनामा' कामिल की प्रसिद्ध संपादित पुस्तक है। इसमें प्रसिद्ध कश्मीरी कवि शेखनूरुद्दीन के कलाम के २४८ पदों को अत्यन्त परिश्रम एवं प्रामाणिक ढंग से संपादित किया गया है[1]। पुस्तक के प्रारम्भ में ३४ पृष्ठों पर आधारित एक सारगर्भित भूमिका भी दी गई है जिससे कवि के व्यक्तित्व व कृतत्व पर विद्वत्तापूर्वक प्रकाश डाला गया है। 'हब्बाखातून' इनकी एक और संपादित पुस्तक है। इसमें प्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री हब्बा-खातून के जीवन तथा उनकी काव्य-साधना का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक उर्दू भाषा में लिखी गई है। इस पुस्तक के अन्त में कवयित्री की चुनी हुई बारह कविताएँ अर्थ सहित दी गई हैं। 'सूफीशायर' (दो भाग) कामिल की दो और महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। इनमें कश्मीरी के विभिन्न सूफी शायरों का आलोचनात्मक अध्ययन है।

कश्मीरी भाषा के लिए एक सर्वसम्मत लीपि के स्थिरीकरण में भी कामिल का विशेष योगदान रहा है। इनकी पुस्तिका 'अच्छर ज़ान' कश्मीरी के लिए फारसी-लिपि के सही प्रयोग विशेषकर विभिन्न संकेत-चिन्हों के प्रयोग पर सोदाहरण प्रकाश डालती है।

कामिल साहब ने कई पेशे बदले हैं। दो वर्षों तक वकालत करने के बाद ये श्रीनगर के एक राजकीय कालेज में लगभग एक वर्ष तक अध्यापन-कार्य करते रहे। अध्यापन-कार्य छोड़कर ये स्वतन्त्र लेखन-कार्य में जुट गये। १९६३ से राज्य की कल्चरल अकादमी में कश्मीरी विभाग के प्रधान-संपादक पद पर कार्य कर रहे हैं।।

## टाक जैनागीरी

इनका पूरा नाम अब्दुल खालिक टाक है। इनका जन्म १९३४ में तहसील सोपोर में जैनागीर गाव में हुआ था। १९५३ में राजकीय विद्यालय सोपोर से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर १९५७ में इन्होंने विषम पारिवारिक परिस्थितियों के कारण

1. 'कश्मीर दर्पण' पृ० ९५
   यह पुस्तक राज्य की कल्चरल अकादमी द्वारा १९६५ में प्रकाशित हुई है।

पटवारी की नौकरी कर ली। अपनी लगनशीलता तथा कार्यकुशलता से ये १६६२ में नायब-तहसीलदार के पद पर पदोन्नत हुये। इस समय ये जम्मू व कश्मीर राज्य के राजस्व विभाग के अन्तर्गत उपनिदेशक के पद पर हैं।

टाक जैनागीरी ने कश्मीरी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है और जो चिरस्मरणीय रहेगी, वह उनकी कश्मीरी भाषा सम्बन्धी महत्वपूर्ण भाषा-शास्त्रीय पुस्तक 'कोशिरिक अलाक्वाद फेह' के आधार पर है। इस रचनात्मक-शोधग्रन्थ पर टाक साहब को साहित्य अकादमी का १६६६ का पुरस्कार भी मिला है। यह ग्रन्थ १६६७ में प्रकाशित हुआ था। ५१६ पृष्ठों के इस ग्रन्थ में कश्मीरी भाषा में व्यवहृत विभिन्न शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके उच्चारण-भेद उनके व्याकरणगत स्वरूप आदि पर विस्तार से चर्चा मिलती है। यह महत्वपूर्ण कार्य टाक साहब ने उस समय हाथ मे लिया था जब वे पटवारी थे। कार्य को पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से करने तथा सामग्री संकलित करने के लिए उन्होंने स्वयं कश्मीर के दूरस्थ ग्रामीण-क्षेत्रों यथा, गुरेस, ऊड़ी, पुंछ, गुलाबबाग, रियासी, किस्तवाड़, करगिल, लद्दाख आदि में जाने की इच्छा प्रकट की और इन जगहों पर अपना स्थानांतरण करवाया। १६५७ से लेकर १६६६ तक वे मननशील होकर सामग्री संकलित करते रहे। उनका यह कार्य शब्द-संकलन मात्र नहीं है अपितु उन्होंने अत्यन्त परिश्रम के साथ उन कारणों को भी खोजा है जिनसे शब्दों के अर्थ तथा उनके उच्चारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के बाद बदलते मिलते हैं। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में लेखक ने भाषाओं के विकास पर एक सारगर्भित अध्याय भी लिखा है। इसमे उन्होंने उन प्रभावों तथा कारणों का विवेचन किया है जिनसे भाषा में अर्थ-परिवर्तन व उच्चारण-भेद मिलते हैं। आगे चलकर लेखक ने ८५ पृष्ठों पर आधारित उन पारिभाषिक शब्दों की सूची दी है जो विशिष्ट जाति-वर्गों यथा, बढई, लोहार, किसान, राज आदि में प्रचलित हैं। टाक साहब का यह कार्य अत्यन्त उपयोगी है तथा ग्रियर्सन के 'डिक्शनरी आफ कश्मीरी लैंग्वेज' के बाद यह अपने ढंग का पहला मौलिक भाषा-सर्वेक्षण कार्य है।

टाक जैनागीरी एक अच्छे कवि भी हैं। इनका एक काव्य-सकलन 'म्योन आलव' (मेरी आवाज) शीर्षक से छप चुका है। इसमें लगभग दो दर्जन कविताएँ संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने मुक्त-छन्द में एक गीति-नाट्य 'अज़िच-कशीर' भी लिखा है। इसमें वर्तमान कश्मीरी समाज में व्याप्त वर्गसंघर्ष, जातिभेद आदि का चित्रण किया गया है। बच्चों के लिये भी टाक ने कुछ कविताएँ भी लिखी हैं जो 'पोशगोन्द' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हो चुकी हैं।

## रहमान राही

इनका जन्म मई १६२५ में श्रीनगर के मुहल्ला महाराजगंज, वाज़पोरा में हुआ था।

राही पहले-पहल उर्दू में कविताएँ करते थे किन्तु बाद मे १६५० के आस-पास से ये कश्मीरी में कविताएँ करने लगे। इनका प्रथम कविता-सग्रह 'नौरोज-ए-सबा'

शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह पर कवि को साहित्य-अकादमी का १९६१ का पुरस्कार भी मिला है।

राही प्रयोगवादी कवि हैं। नादिम तथा कामिल की भांति इन्होंने आधुनिक कश्मीरी कविता को भाव तथा शिल्प की दृष्टि से पर्याप्त समृद्ध बनाया है। 'नौरोज-ए-सबा' में इनकी ३२ कविताएँ संकलित हैं। ये सभी कविताएँ कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अपने इस कविता-संकलन की भूमिका में राही ने स्वीकार किया है कि कविता में नये प्रयोगों का समावेश करना अब एकदम जरूरी हो गया था। इसी आवश्यकता को ध्यान मे रखते हुये मैंने काव्य रचना की।[1]

राही ने कश्मीरी कविता में जो नये प्रयोग किये हैं वे शिल्प सम्बन्धी कम और भाव सम्बन्धी अधिक हैं। उनकी भावानुभूति जीवन के यथार्थ से विलग नहीं है, वह जीवन का ही एक अंग है। जीवन के राग-विराग, सुन्दर-असुन्दर, आशा-निराशा आदि से सम्बन्धित विभिन्न भावस्थितियों को राही ने खूब उभारा है। 'सोनु. साकि प्यठ' शीर्षक कविता में कवि की सौन्दर्य-दृष्टि में एक व्यवधान-सा उपस्थित होता है जब उसे जीवन की निःसारता तथा क्षणभंगुरता का ध्यान हो आता है—

> क्याह् मि मरगुकक युप नियि मेति मूल अटिथ ग्रोबरस
> क्याह् बु. यिमना योर अद फोरिथ नहीं
> क्याह् बु. वुछना वुनियुक गाश पतोलाकन्य आंह ?
> क्याह् मे बनिना जांह यथ सोनसाकि प्यठ शामन बिहुन
> मोतकिस पंजरस छना अडवछ् ति रोजान दोर आंह
> हाय अय संगीन कलायस सपदिना वल्य वल्य शिगाफ…

क्या मौत का तूफान मुझे भी बहा कर ले जायेगा, क्या मैं इस स्थान को फिर कभी न देख सकूंगा और यहां क्या फिर कभी न आ सकूंगा। काश ! मौत की मजबूत दीवार में दरारें पड़ जातीं और मौत का खौफ मेरे मन से निकल जाता…।

भावस्थितियों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिये राही ने अपनी कविताओं में जो वातावरण-सृष्टि की है, वह एकदम अनूठी है। 'पं छु जुमला नि मुखान' कविता में एक ऐसी मनहूस व ठिठुरती काली रात का वर्णन किया गया है जिस रात कवि को अपने चारों ओर मृत्यु का-सा क्रूर व डरावना वातावरण लगता है—

"कल आधी रात को मेरे विचारों का धागा टूट गया। जिस कभी बन-छाया में मैंने एक बाज को देखा जिसकी चोंच से कबूतर का लहू टपक रहा था। दीवार के साथ ज्यों ही मैं पीठ लगाये बैठा तो दीवार की सारी ठण्डक मेरे शरीर में भर गई। इसी बीच सन्दूक पर एक चुहिया ने छलांग मारी और आलमारी की ओर जाकर छिप गई। अलगनी पर कुर्ते के स्थान पर मुझे एक बिल्ली लटकती दिखाई दी। मैंने आंखें मूंदकर रजाई को अपने गर्द कन्धों पर डाल दिया। इतने में बाहर उल्लू का हलचल सुनाई पड़ा और मेरी 'कांगड़ी' जो मेरे बिस्तर में थी, उलट गई और उसकी ठण्डी-ठण्डी

1. 'नौरोज-ए-सबा' भूमिका में

रात मेरे पांव के नीचे बिखर पड़ी···।"

('सोन अदब' १९६३ पृ० १२-१३)

राही ने शृंगार-परक कविताएँ भी लिखी हैं। अगरचे इनकी संख्या ज्यादा नहीं है फिर भी इन कविताओं में कवि की वियुक्त आत्मा की व्यथा व आकुलता स्थान-स्थान पर व्यक्त हुई है। प्रत्यक्ष विश्लेषण व अनुभव से सिद्ध ये कविताएँ कवि के 'दर्द' को यत्र-तत्र अभिव्यंजित करती हैं। 'दहि वहीर' शीर्षक कविता में यह 'दर्द' काफी तीव्र हो उठा है। प्रेयसी ने दस वर्ष पूर्व नदी के किनारे पर प्रेमी को मिलने का वचन दिया था। दस वर्ष बीत चले किन्तु वह मिलने न आई। सारा आलम वैसा-का-वैसा है, वही नदी, वही किनारा, वही चिनार का पेड़, वही पंछियों का कलरव, वही शीतल चन्द्रमा, किन्तु वह न जाने क्यों आना भूल गई—

> देह वरीह गयि तमि वल आव वोहय अस कदमव
> देह वरीह गयि तमि कोल अज ति तिछय सन्य आसान
> देह वरीह गयि त मि बून्य अज ति छि ओवरावान लाव
> देह वरीह गयि त तमिस प्यव न कुन्युक्ताम याद
> आदनुक वाद रछुन यारबलस प्यठ वातुन।

राही साहब अंग्रेजी और फारसी विषयों में एम० ए० हैं। कुछ समय तक श्रीनगर में प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र 'खिदमत' से सम्बद्ध रहने के बाद ये अमरसिंह कालेज श्रीनगर में फारसी के व्याख्याता हो गये। आजकल कश्मीर विश्वविद्यालय में फारसी के व्याख्याता हैं।

## प्राण किशोर

इनका पूरा नाम प्राण किशोर कौल है। इनका जन्म २५ फरवरी १९२५ में कन्यापोरा, श्रीनगर में हुआ था। सन् १९४७ में पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० कर लेने के उपरान्त १९४९ में आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र में असिस्टेंट प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त हुए। १९५६-५७ से ये इसी केन्द्र में प्रोड्यूसर के पद पर हैं।

कश्मीरी रंगमंच को एक सुव्यवस्थित रूप देने में प्राण किशोर का योगदान कश्मीरी रंगमंच के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। यदि यह कहा जाय कि प्राण किशोर कश्मीरी रंगमंच के उद्धारक हैं तो सम्भवतः कोई अत्युक्ति न होगी। प्राण किशोर ने स्वयं नाटक तो नहीं लिखे किन्तु विभिन्न नाटकों का सफल निर्देशन कर तथा उनमें अभिनय कर उन्होंने कश्मीरी नाट्यकला को एक नई दिशा प्रदान की।

नाटक देखने तथा उनमें अभिनय करने की अभिरुचि किशोर में विद्यार्थी-काल से ही थी। अपने कुछ दोस्तों के साथ मिलकर उन्होंने अपने मुहल्ले में ही एक छोटा-सा 'ड्रामैटिक-क्लब' खोला था। कालेज में आकर उनकी प्रतिभा को और निखरने का मौका मिला। श्रीप्रताप कालेज के रंगमंच पर उन्होंने १९४३ में पहली बार आग़ा हश्री 'काश्मीर' के उर्दू नाटक 'रुस्तमी और शाहबहादुर' तथा 'अनारकली' में मुख्य पात्र

के रोल किये।

१९४५ में 'इण्डियन पीपुल्ज थियेटर' नाम से एक नाटक-मण्डली श्रीनगर में स्थापित हुई, प्राणकिशोर इसके संस्थापक सदस्य थे। आगे चलकर १९४७ में क्वाइली हमले का मुकाबला करने के लिये राज्य भर के सभी साहित्यकार व कलाकार 'कौमी कल्चरल फ्रंट' के झण्डे तले एकत्र हुये। प्राणकिशोर ने इस फ्रंट में 'नाटक-विभाग (ड्रामा विंग) का कार्यभार सम्भाला और उसे सफलतापूर्वक निभाया। १९५० में 'कौमी कल्चरल फ्रंट' संस्था टूट गई और उसके स्थान पर 'कल्चरल कांग्रेस' वजूद पा गई। 'कल्चरल कांग्रेस' के ही तत्वावधान में १९५४-५५ में जब रूसी नेता बुलगानिन और ख्रुश्चेफ कश्मीर आये तो प्राण किशोर ने नादिम के प्रसिद्ध गीतिनाट्य 'यिम्बरज़ल बोम्बुरजल' का निर्देशन कर उसे अतिथियों के समक्ष प्रस्तुत किया। इस गीतिनाट्य का रूसी अनुवाद बाद में रूस में भी अभिनीत किया गया। प्राण किशोर ने जिन अन्य प्रसिद्ध नाटकों का निर्देशन अथवा उनमें अभिनय किया है, उनके नाम हैं :—मोलिएर का उर्दू में रूपांतरित नाटक 'कंजूस', टैगोर की कहानी पर आधारित 'फुलवारी', कश्मीरी नाटककार अलीमुहम्मद लोन का 'खालू जान का स्वाब', प्रेमनाथ परदेसी का 'सवाली' आदि।

प्राण किशोर ने दो कश्मीरी चलचित्रों का निर्देशन भी किया है। 'मेहँदीरात' फिल्म के वे प्रधान निर्देशक थे (इस फिल्म को राष्ट्रपति का पदक मिल चुका है) और फिल्म 'शायरे-कश्मीर : महजूर' के उपनिर्देशक। इस चलचित्र के लिए उन्होंने संवाद भी लिखे थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने कश्मीरी जन-जीवन सम्बन्धी दो वृत्त-चित्रों का भी निर्देशन किया है। इनमें से एक वृत्तचित्र का नाम है—'द बोट्स आफ कश्मीर।'

प्राण किशोर एक कुशल अभिनेता तथा निर्देशक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के चित्रकार और लेखक भी हैं। जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने इन्हें उनके चित्रों पर दो बार पुरस्कृत किया है। कश्मीरी रंगमंच के स्वरूप तथा उसके इतिहास पर इन्होंने दो-तीन शोधपरक निबन्ध लिखे हैं जो 'योजना', 'तामीर' तथा 'शीराज़ा' में प्रकाशित हुये हैं।

## पुष्कर भान

इनका जन्म २५ अगस्त १९२६ में श्रीनगर के शिहिलटेंग, हब्बाकदल मुहल्ला में हुआ।

कश्मीरी के हास्य-व्यंग्य-प्रधान साहित्य में पुष्करभान को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है। अब तक हास्य-व्यंग्य के विषय केवल कविताओं तक सीमित थे, पुष्कर भान ने पहलीबार गद्य में भी उनका समावेश किया।[1] भान कश्मीरी में हास्य-व्यंग्यात्मक

१. २६ मई १९७० को आकाशवाणी भवन, श्रीनगर में भान साहब से लिये गये इण्टरव्यू के आधार पर।

रचनायें, जिनमें प्रमुख हैं—रेडियो नाटक, मानोलॉग, छोटी-छोटी कवितायें आदि। कश्मीरी में लिखने से पूर्व ये उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखा उनका पहला व्यंग्यपूर्ण सामाजिक नाटक 'देश' शीर्षक से १९४० में जम्मू से निकलने वाली पत्रिका 'रणवीर' में छपा था।

१९५१ में 'रेडियो कश्मीर' में नौकरी कर लेने के बाद पुष्कर भान को कश्मीरी माध्यम से अपनी प्रतिभा का प्रकाशन करने का सुअवसर मिल गया। उन्होंने कश्मीरी कार्यक्रमों के अन्तर्गत 'मगुन तु. गिन्दुन', 'पोश गोन्द' तथा 'ह्यारो मचामु.' शीर्षक से तीन स्तम्भ चलाये। इन सभी में हास्य-व्यंग्य-प्रधान हल्की-फुल्की सामग्री रहती थी। उक्त स्तम्भों में 'ह्यारो मचामु.' सम्बन्धी नाटक-शृंखला काफी लोकप्रिय हुई। इस स्तम्भ की अब तक ४३ किस्तें 'रेडियो-कश्मीर' श्रीनगर से प्रसारित हो चुकी हैं। इन नाटकों का हीरो मचामा एक साधारण मध्यवर्गी कश्मीरी परिवार की चाहतों, उच्चाकांक्षाओं तथा अन्य विफलताओं का प्रतिनिधित्व करता है। कभी वह फिल्मी नायक बनने के मनसूबे बनाता है, कभी फिरंगियों की भाषा बोलने लगता है (अपने परिवार वालों पर रोब डालने के लिए), कभी मोटर खरीदने की असफल योजना बनाता है, कभी उच्चकोटि का संगीतकार बनने का सपना देखता है, कभी स्पेस शिप में बैठकर चांद पर चढ़ने की सोचता है, कभी हिम-यक्ष को पकड़ने के लिये दल-बल सहित घर से निकल पड़ता है आदि। इस नाटक-सिरीज़ के मुख्य पात्र इस प्रकार हैं—मचामा (नायक), मखिजी (मचामा की पत्नी), काक (मचामा का पिता), कारयद (मचमा की माता), रहमान डड्. व सुनगोट (मचामा के अभिन्न मित्र।)

'रेडियो-कश्मीर' से प्रसारित होने वाले 'रूरल-प्रोग्राम' में पुष्कर भान १२ वर्षों तक 'जिज़ुमाव' स्तम्भ में काठकाक का पार्ट करते रहे हैं। अभी कुछ वर्ष पहले 'रेडियो-कश्मीर' ने 'जून डब' शीर्षक से जो लोकप्रिय स्तम्भ चलाया है उसमें मामा के मज़ाकिया-चरित्र को अपनी तोतली आवाज़ में भान साहब ही निभा रहे हैं।

पुष्कर भान कवितायें भी करते हैं। इनकी ६ कवितायें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। एक निबन्ध 'कश्मीरी ज़बान में तनज़ो-मिज़ाज' तथा एक रिपोर्ताज 'मोंदयरान' भी लिखा है। ये क्रमशः 'शीराज़ा' व 'कासुर नगार' में छपे हैं। हल्का-फुल्का मनोरंजन करने की दृष्टि से भान ने कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। इनकी संख्या १२ है। ये 'शीराज़ा', 'सोन अदब,' 'चमन' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुये हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कश्मीरी के प्रसिद्ध कहानीकार अख़्तरमोहीउद्दीन के सहयोग के साथ 'का शिर लोक-कहानी' शीर्षक से कश्मीरी लोक-कहानियों की एक पुस्तक भी संपादित की है।

पुष्कर भान १९४६ से लेकर १९५१ तक बम्बई में 'इण्डियन पीपल्ज़ थियेटर एसोशिएशन' में हिन्दुस्तानी ग्रुप के सचिव रहे जहां उन्होंने कुछ नाटकों में काम भी किया ('झाड़ू नाटक में उन्होंने एक हास्य-अभिनेता की भूमिका सफलतापूर्वक निभायी थी।)'[1] १९५१ में ये 'रेडियो-कश्मीर' में नियुक्त हुये जहां १९६४-६५ से 'रूरल-ब्राड-

(१) भान साहब से लिये गये इण्टरव्यू के आधार पर

कास्ट में प्रड्यूसर पद पर कार्य कर रहे हैं

## सूफी गुलाम मुहम्मद

इनका जन्म ड्रोगजन, श्रीनगर में १९२७ में हुआ।

सूफी गुलाम मुहम्मद १९५० तक उर्दू में लिखते थे। उर्दू में लिखी इनकी प्रथम कहानी 'जवानी का जनाज़ा' बम्बई से निकलने वाली पत्रिका 'निज़ाम' में १९४८ में प्रकाशित हुई थी। उर्दू में लिखी इनकी कहानियों की संख्या आठ है। इन्हें कश्मीरी की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय 'कल्चरल फ्रंट' को है। फ्रंट की विभिन्न साहित्यिक बैठकों में नियमित रूप से भाग लेते रहने के कारण ये कश्मीरी के अनेक उच्चकोटि के साहित्यकारों के सम्पर्क में आये और उनसे प्रेरणा पाकर उन्होंने भी अपनी मातृभाषा में लिखना शुरू किया। कश्मीरी में लिखित इनकी पहली कहानी 'चु़निचूर' शीर्षक से 'पंपोश' पत्रिका में १९५० में प्रकाशित हुई। तब से ये कश्मीरी में ही लिखते रहे और १९६४ तक ५० कहानियाँ लिख डाली। इनके दो कहानी-संग्रह 'शीश त संगिस्तान' और 'लूसयमित तारक' प्रकाशित हो चुके हैं। लूसयमित तारक' पर इन्हें राज्य की कल्चरल अकादमी का पुरस्कार भी मिला है।

सूफी साहब की प्रत्येक कहानी में यथार्थ चित्रण की प्रधानता है। कथानक मध्यवर्गीय जीवन से लिये गये हैं जो साधारणतया किसी एक विशिष्ट चरित्र के इर्द-गिर्द घूमते हैं। यही कारण है कि इनकी अधिकांश कहानियों के शीर्षक कहानी के मुख्य पात्र के नाम पर आधारित हैं। जैसे, 'मालद्यद', 'चि़नचूर', 'तुंजखोर' आदि। 'मालद्यद' सूफी गुलाम मुहम्मद की सर्वाधिक प्रसिद्ध चरित्र-प्रधान कहानी है। इसमें सब्ज़ी बेचने वाली कुंजडिन मालद्यद की चारित्रिक विशेषताओं को जिस ढंग से उभारा गया है उससे कहानीकार को प्रौढ़ कहानी-कला का आभास होता है। इस कहानी से एक अंश प्रस्तुत है—

'मालद्येदि हुन्द सोदा करनुक तरीक ओस अजीब। सो आस न बेयन आरमेन्यन हन्द्य पाठ्य योरय ग्रेक दिवान त योरय पननि हाकक्य तारीफ कराना। तमि सुंद अतीद ओस ज़ियेमिस खरीदारस अकि लटि हाक आव दिन सुयछ़ि बेयि लटि तमिस पानय मालव ध्यु़न त तमिसिन्दिस हाकस तारीफ करुन। गरि च्यठ़ शहर यातनस ताम आस तमिस बर पत वर आवाज़ यिवान। (सोन अदब १९६०-६२) मालद्यद का सब्ज़ी बेचने का तरीका अजीब था। वह अन्य कुंजडिनों की तरह ग्राहक को खुद आवाज़ देकर नहीं बुलाती और न अपनी साग-सब्ज़ी की अपने मुँह से प्रशंसा करती। उसका विचार था कि जिस ग्राहक को एक बार सब्ज़ी दी जाये वह स्वयं दूसरी बार सब्ज़ी लेने आ जाये और उसकी तारीफ करे।—

सूफी गुलाम मुहम्मद ने रेडियो के लिये भी कुछ नाटक लिखे हैं जिनमें 'बेछ़ठ' नाटक बहुत ही लोकप्रिय हुआ है।

लगभग ग्यारह वर्षों तक उर्दू के पत्र 'खिदमत' के उपसंपादक रहने के बाद

सूफी साहब इस समय उर्दू के प्रसिद्ध दैनिक 'श्रीनगर टाइम्स' के संपादक हैं।

## अली मुहम्मद लोन

इनका जन्म २६ सितम्बर १६२७ को श्रीनगर के ड्रोगजन मुहल्ला में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर प्राप्त कर लेने के पश्चात् इन्होंने १६४६ में बी० ए० की परीक्षा लाहौर (पंजाब विश्वविद्यालय) से उत्तीर्ण की। अंग्रेजी तथा कश्मीरी के अतिरिक्त इन्हें फारसी और हिन्दी का भी अच्छा-खासा ज्ञान है। कुछ समय तक आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र में असिस्टेंट प्रोड्यूसर के पद पर कार्य करते रहने के बाद ये १६६५ से जम्मू व कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी में उपसचिव नियुक्त हुये। सम्प्रति वहीं पर हैं।

लोन प्रारम्भ में, १६५२ तक उर्दू में लिखते रहे। बाद में ये कश्मीरी की ओर प्रवृत्त हुये। उर्दू में लिखित इनकी प्रथम गद्य-रचना 'घर से कालेज तक' जम्मू से निकलने वाली पत्रिका 'प्रेम' में १६४६ में छपी थी। इसी वर्ष इनकी दूसरी उर्दू रचना 'हिन्दुस्तानी फिल्मों पर एक तब्सरा, शीर्षक से 'निज़ाम' बम्बई में प्रकाशित हुई थी। इन्होंने उर्दू में एक उपन्यास भी लिखा है जिसका शीर्षक है—'शाहिद है तेरी आरज़ू। इस उपन्यास पर लोन को राज्य की कल्चरल अकादमी ने पुरस्कृत भी किया है।

१६५२ में लोन की प्रथम कश्मीरी गद्य-रचना प्रकाशित हुई। इसका शीर्षक था—'अस्य ति छि इन्सान।' यह संस्मरणात्मक गद्य-रचना अमरनाथ यात्रा की पृष्ठभूमि पर लिखी गई थी।

लोन मुख्यतः नाटककार हैं।[1] इनका पहला कश्मीरी नाटक है 'सुय्या' शीर्षक से १६६३ में प्रकाशित हुआ था। इस नाटक में कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मण के राजअभियन्ता की उपलब्धियों का वर्णन है। सुय्या अपनी सूझ-बूझ से कश्मीर की घाटी को बाढ़ से कैसे बचाता है तथा पानी को निकालने के लिये वह क्या उपाय करता है आदि प्रसंग इस नाटक में सफलतापूर्वक वर्णित हुये हैं। लोन को इस नाटक पर राज्य की कल्चरल अकादमी का १६६४ का पुरस्कार मिला है। लोन ने ज्यादातर अपने नाटक रेडियो के लिये ही लिखे है। रंगमंच के लिये इन्होंने केवल चार नाटक लिखे हैं जिनमें 'सुय्या' एक है। लोन के नाटकों का कथानक समस्यामूलक है और वह समाज-सापेक्ष है। किन्तु ये समस्यायें बाल-विवाह, विधवा-विवाह या दहेज प्रथा आदि किस्म की न होकर खण्डित व्यक्तित्व वाले आज के मानव की विविध विवशताओं व लाचारियों को लेकर चली हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप आज के समाज में व्याप्त आडम्बरवाद को लोन ने अपने नाटकों का मुख्याधार बनाया है। रेडियो के लिये लिखे गये लोन के नाटकों की संख्या १५० तक पहुंच चुकी हैं।

---

१—१४-५-७० को लोन से लिये गये इण्टरव्यू के आधार पर। लोन अपने को मूलतः नाटककार ही मानते हैं।

मौलिक नाटक-रचना के अतिरिक्त सोज ने टैगोर के नाटक 'मुक्तधारा' तथा गोर्की के प्रसिद्ध उपन्यास 'मदर' का कश्मीरी में सफल रूपांतर किया है। ये 'मुक्तधारा' 'रेडियो-कश्मीर' से प्रसारित भी हो चुका है।

## गुलाम नबी बाबा

इनका जन्म १९२७ में नौहट्टा-नम्दासाज मुहल्ला में हुआ। काफी समय तक 'कल्चरल कान्फ्रेंस' एवं 'कल्चरल कांग्रेस' से सम्बद्ध रहने के बाद ये स्वतन्त्र-लेखन की ओर प्रवृत हुये। प्रारम्भ में इन्होंने कुछ कहानियाँ लिखी फिर रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि लिखने लगे।

बाबा की कहानियों में 'अव्वा वाप्पा', 'तलखी,' 'येलिवर वन्द गव' आदि काफी लोकप्रिय हो चुकी हैं। तीनों कहानियां मध्यमवर्गीय जीवन की आर्थिक विषमताओं, पारिवारिक जटिलताओं तथा अन्य प्रकार की विवशताओं का जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती हैं। 'अव्वा वाप्पा' एक ऐसे बेरोजगार व्यक्ति की कारुणिक कहानी है जिसका परिवार दाने-दाने को तरसता है। 'मां रोटी, मां रोटी'—कहकर उसका एक पुत्र उसकी आंखों के सामने प्राण त्याग देता है और यह अविस्मरणीय घटना उसको जीवनभर कचोटती रहती है। 'तलखी' एक ऐसे होनहार नवयुवक की कहानी है जिसे रात-रात भर शादी के मीठे सपनों की कल्पना-मात्र इसलिये करनी पड़ती है क्योंकि प्रत्यक्ष में वह धनाभाव के कारण अपनी शादी रचाने में असमर्थ है। कहानी दहेज-प्रथा पर तीखा व्यंग्य करती है।

'मीर हंज गांव,' 'रंगन मंज वद रंग' आदि बाबा के सुन्दर रेखा-चित्रों में से हैं। ये दोनो 'रेडियो-कश्मीर' से प्रसारित हो चुके हैं।

## बन्सी निर्दोष

पूरा नाम वन्सीलाल वली तथा उपनाम 'निर्दोष' है। इनका जन्म २८ जून १९२८ को श्रीनगर के मुहल्ला बड़ीयार में हुआ। शिक्षा मैट्रिक तक ली है।

निर्दोष ऐसे प्रथम कहानीकार है जिन्होंने बहुत कम समय में कश्मीरी कथा-साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। १९५६ तक ये उर्दू में लिखते रहे। इसके बाद इन्होने कश्मीरी में लिखना शुरू किया। इनकी पहली कश्मीरी कहानी 'दार' १९५६ में प्रकाशित हुई थी। १९५६ से लेकर अब तक निर्दोष लगभग तीन दर्जन कहानियां लिख चुके हैं। इनका प्रथम कहानी-संग्रह 'बाल मरयोव' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह पर राज्य की कल्चरल अकादमी ने इन्हें १९६२ का द्वितीय पुरस्कार प्रदान किया है। दूसरे कहानी-संग्रह का शीर्षक है—'आदम छु विषय बदनाम'। इन दो कहानी-संग्रहों के अतिरिक्त निर्दोष ने एक लम्बी कहानी 'अती रव त अती साव' भी लिखी है। लम्बी कहानी लिखने का यह प्रयोग कश्मीरी कथा-साहित्य में पहली बार निर्दोष ने ही किया है।

निर्दोष की कहानियां प्रायः मध्यवर्गीय जीवन की विभिन्न विवशताओं तथा परिसीमाओं को लेकर रची गई है। सत्रास एवं करुणा को जगाकर कहानी का अन्त मर्मस्पर्शी बनाना निर्दोष की विशेषता है। 'खोचुन' कहानी में सत्रास का दिल हिलाने वाला चित्रण शीर्षक से लेकर अन्त तक मिलता है। पति-पत्नी के झगड़े को लेकर कहानीकार एक दूसरी ही कहानी छेड़ देता है। पत्नी के रूठकर मायके चले जाने पर पति को अब अपने घर से कोई रुचि नहीं रहती। सुबह सवेरे घर से निकलना और आधी-आधी रात तक बाहर रहना उसका नित्य नियम बन जाता है। एक रात वह अपने मुहल्ले के मन्दिर में कथावाचक सर्वानन्द की आपबीती सुनने बैठ जाता है। सर्वानन्द व उसके मित्र हरिश्चन्द्र का जीविकोपार्जन के लिये स्यालकोट जाना, वहां व्यापार आदि करना, सर्वानन्द का स्यालकोट में शादी करना, हरिश्चन्द्र का चार हज़ार रुपये लेकर अपने घर श्रीनगर लौट आना, घर पहुंचते ही उसका निधन हो जाना और प्रेत-योनि में प्रवेश करना, मट्टन गांव में सर्वानन्द से उसका मिलना, चार हज़ार रुपयों के सम्बन्ध में रहस्य का उद्‌घाटन करना, रसोई में चूल्हे के नीचे खुदाई करके रुपयों का मिल जाना आदि इस आपबीती के प्रमुख प्रसंग हैं। कथावाचक की आपबीती सुनकर पति घर लौटता है। रास्ते भर उसके मस्तिष्क में सर्वानन्द और हरिश्चन्द्र की घटनायें घूमती रहती हैं। येन-केन-प्रकारेण वह घर पहुंच जाता है। उसे लगता है जैसे पत्नी आवाज़ दे रही हो—ऊपर आइये, दरवाज़ा खुला है। वह चुपचाप बिना कुछ कहे रज़ाई में दुबक जाता है। सुबह-सवेरे वह घर से निकल पड़ता है। रास्ते में नानवाई की दुकान पर ससुरजी से भेंट हो जाती है। मालूम पड़ता है कि उसकी पत्नी तो कई दिनों से मायके में बीमार पड़ी हुई है। उसे विश्वास तब होता है जब वह स्वयं अपनी आंखों से पत्नी को रोग-शय्या पर देखता है। वह तुरन्त ससुराल में ही रहने का निश्चय कर लेता है।

'मस्तकिलिफ' एक नर्स के निष्काम सेवा-भाव की मार्मिक कहानी है जिसकी सेवा-सुश्रूषा अस्पताल के कई रोगियों में नूतन जीवन-दायिनी शक्ति का संचार करती है। एक लोलुप रोगी की संकीर्ण दृष्टि तब खुलती है जब उसे मालूम हो जाता है कि अस्पताल के उस वार्ड में उस नर्स का पति भी एक रोगी-शय्या पर पड़ा हुआ था और वह वही था जिसकी कल मृत्यु हो गई थी।

'पनुन मरुन' कहानी में कहानीकार ने एक मृत शरीर की छटपटाती आत्मा को बुलवाया है। कहानी समाज में व्याप्त विभिन्न स्वार्थपूर्ण व आडम्बरपूर्ण व्यवहारों पर व्यंग्य करती है। व्यक्ति का इस समाज में तभी तक मूल्य है जब तक वह जीवित है। मृत्योपरान्त उसे अपने सगे सम्बन्धी भी भूल जाते हैं।

'यिति अख एहसास' निर्दोष की बहुचर्चित कहानी है। कहानी के कथानक का केन्द्र एक छाता है जिसे एक परोपकारी सज्जन उमड़ती बरसात में किसी अनजान लड़की को दे देते हैं। घर पहुंचकर वह लड़की उस सज्जन को छाता लौटाना भूल जाती है। पांच वर्ष तक वह सज्जन, जब-जब पानी बरसता, लड़की के घर के बाहर बिजली के

खम्भे की ग्राड़ में खड़ा रहता है कि शायद उसका छाता वह लड़की लौटा दे। (इस बीच लड़की की शादी हो जाती है।) एक रात फिर पानी बरसता है। वह सज्जन पूर्ववत् खम्भे के नीचे उपस्थित हो जाता है। विमला को पांच वर्ष पहले की घटना याद आती है। बड़ी मुश्किल से छाता ढूंढ निकालकर वह उसे देने के लिये नीचे सड़क पर आजाती है। दोनों के बीच हुये इस वार्तालाप से कहानी का अंत हो जाता है—

'तल कनि छि यि मोमूली चीज़, मे कति ग्रांस छतरिहुन्ज़् फिकिर'
'ग्रद कमिच फिकिर ग्रोस ग्रमिस' यि प्रुछ मे मनन।
रछ खण्ड दम दिथ त शाह सम्बालिय वोन तम्य—
'तमि दोह ग्रोस ना रूद, मे दोप खबर—।'

मुझे छाते की चिन्ता नहीं थी, यह तो एक मामूली चीज है' 'फिर इसे किसकी चिन्ता थी'—मैं मन में सोचने लगी। तनिक रुक कर तथा दम सम्भालकर उसने कहा—उस दिन ज़ोर से पानी बरस रहा था ना, मैंने सोचा कहीं—।' (कहानीकार ने अन्तिम सम्भाषण की पूर्ति का कार्य जिज्ञासु पाठक के लिए छोड़ दिया है)

निर्दोष ने टैगोर के जीवन पर आधारित एक पुस्तक 'कोमुक शायर' भी लिखी है। यह पुस्तक १९६१ में साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित की गई है। रेडियो के लिये भी इन्होंने लगभग २५ नाटक लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं—'गिरदाब,' 'अम्रपाली,' 'यिति छु बनवुन,' 'रोच हुज़ साडवाह बजे' 'ग्रोछगारा,' 'अजल' आदि। निर्दोष १९६६ से आकाशवाणी के श्रीनगर, कश्मीर केन्द्र में स्क्रिप्ट-राइटर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

## अख्तर मोहीउद्दीन

इनका पूरा नाम गुलाम मोहीउद्दीन है। 'अख्तर' उपनाम है। इनका जन्म १७ अप्रैल १९२८ को बटमालुन, श्रीनगर मे हुआ था।

१९५१ से लेकर १९५५ तक अख्तर उर्दू में लिखते थे किन्तु बाद मे इन्होंने कश्मीरी मे लिखना शुरू कर दिया। आधुनिक कश्मीरी कथा-साहित्य के उच्चकोटि के कहानीकारों मे अख्तर एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनका प्रथम कहानी-संग्रह 'सत-संगर' १९५५ में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह पर कहानीकार को १९५८ का साहित्य-अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

अख्तर की कहानियों में पहली बार कथानक गूढ़ जीवन-दर्शन से संयुक्त मिलते हैं। वर्णन-शैली तथा प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी इनकी कहानियां नवीनता लिये हुये हैं। छोटे-छोटे वाक्य, नित्य व्यवहार में आने वाले उक्ति-प्रयोग, चलते-फिरते मुहावरे सुगठित वाक्य-विन्यास आदि अख्तर की शैली की विशेषतायें हैं। 'च्स' शीर्षक कहानी में चूजे की निर्मम मौत द्वारा कहानीकार ने मानव-समाज की स्वार्थपरायणता पर तीखा व्यंग्य किया है। 'दरियायहुन्द मेज़ार' कहानी एक वयोवृद्ध दंपति की यौन-प्रवृत्ति के आवेग को अत्यन्त भावपूर्ण ढंग से व्यंजित करती है। 'कोसिम साव' कहानी मे एक ऐसे उत्साही कहानीकार की विवश-स्थिति चित्रित की गई है जो प्रशंसा प्राप्त करने के

उद्देश्य से अपनी कहानी का आलेख अपने कार्यालय के अधिकारी कासिम साहब को सुनाते हैं और अधिकारी महोदय बदले में कहानी न सुनकर पलंग पर लेटे-लेटे खराटे मारते हैं। इसी प्रकार 'छुम न रोय समान, 'ज अछुय' आदि कहानियों में भी नितान्त नवीन जीवन-समस्याओं को कलात्मक-शैली में वर्णित किया गया है। अख्तर की लोकप्रिय कहानी 'चूस' से एक गद्यांश उद्धृत किया जाता है, इसमें निरीह चूज़े के गिले-शिकवे जिस मार्मिक ढंग से वर्णित किये गये-वह द्रष्टव्य है—

> मे रोट यि चोल नौं असय क्यथ तुलुम। अम्य कर न छ्ट छ्ट लोति लोति ओस पची पची पची पची करान। क्याह ताम ओस वनान। ज़ोहिर 'अद सा वेन्य मर बु। गोख खोश ? चे हस योनमय। इन्साना, होत्या, गोंटी, कोकरा। दोपमय गोख खोश बु मर वन्य। दिम न बांग, वन्य आव न ठूल। वन्य कर न बु किहीं——।

मैंने उसे पकड़ लिया। वह भागा नहीं। उसे हाथ में उठा लिया। वह छटपटाया नहीं। धीमी आवाज में ची ची ची ची कर रहा था। शायद वह रहा था-अच्छा अब मैं मरता हूं। अब तो तुम खुश हुये होगे रे इन्सान, रे कुत्ते, रे चील, अब मैं कभी बाग न दूंगा—।

अख्तर ने 'दोद-दग' शीर्षक से एक उपन्यास भी लिखा है। कश्मीरी का यह पहला उपन्यास है। १३६ पृष्ठों के इस सामाजिक-उपन्यास का कथानक दो बहिनों फाता और राजा, जो छुटपन में ही अनाथ हो जाती है, की संघर्षपूर्ण जीवन-गाथा पर आधारित है।

## गुलाम रसूल सन्तोष

इनका पूरा नाम गुलाम रसूल डार है। 'संतोष' उपनाम है। इनका जन्म १९२९ में श्रीनगर के चिकाल मुहल्ला में हुआ था।

संतोष कश्मीर के एक सुप्रसिद्ध कलाकार होने के साथ-साथ एक भावुक कवि तथा सुलझे हुये कहानीकार भी है। कलाप्रियता ने इन्हें साहित्य सर्जन की ओर प्रवृत्त किया है। प्रारम्भ में ये उर्दू में लिखते थे। 'समन्दर प्यासा है' इनका उर्दू में लिखित प्रथम उपन्यास है। १९५२-५३ से इन्होंने कश्मीरी में लिखना शुरू किया। कश्मीरी में लिखित इनकी कविताओं की संख्या २० के करीब है और कहानियों की डेढ़ दर्जन के करीब। 'राय,' 'त्रेष्णा,' 'व्यस म्योन नूरा' आदि संतोष की चुनी हुई सुन्दर कवितायें हैं। 'राय' एक नितान्त प्रयोगवादी कविता है। इसमें माघमास की एक कड़कती-ठिठुरती काली रात का विभिन्न हृदयग्राही बिम्बों से सजीव वर्णन किया गया है। 'त्रेष्णा' में मानव की अतृप्त व अपूरित आकांक्षाओं का भावपूर्ण वर्णन है। 'व्यस म्योन नूरा' मुक्त छन्द में रचित एक शृंगारपरक कविता है जिसमें कवि ने अपनी प्रेयसी के नख-शिख का विभिन्न सुन्दर उपमानों द्वारा वर्णन किया है। इस कविता में कवि की अप्रस्तुत-विधान-

संयोजना पर्याप्त प्रभावपूर्ण बन पड़ी है। इस कविता में एक पद्यांश प्रस्तुत है—

म्यान दम मूरा
तारख मालन किम ग्रोनु पॅटिस मंज़
कारनु कथ ज़न
कुमा फोलवन्य गाहु आवान
ज़न मह इलाकिम प्यॅव तारख मंज़
मंज़ सोनवॅरन
मोन पंपोशाह ज़न शुबान
दोदवुय प्याला
ज़न सोनथालस मंज़ वापान
हृदि ज़न त्रिगम्या त्रिगम्या साॅगिय
मंज़ नूनि ग्रासस
गॅस्य-गॅस्य गोमच ज़न मन्दछान—

(गौन अदब १९६०-६२ पृ० २९)

मेरी प्रेयसी नूर का पुंज है, तारक-मालाओं से खचित चाँदी के कपाट पर मानो कार्तिक-पूर्णिमा का चन्द्र खिल उठा हो, डलझील में पत्तों के झुरमुट के बीच कमल सुशोभित हो रहा हो या फिर दूध का प्याला मानो सोने की थाली में जगमगा रहा हो—।

संतोष को कहानीकार की हैसियत से भी पर्याप्त सफलता मिली है। इनका जीवन चूंकि हमेशा वैविध्यपूर्ण, रोमानी तथा संघर्षशील रहा है अतः ये तीनों विशेषतायें उनकी कहानियों में मिलती हैं। 'दोद त दग' कहानी में इन्होंने एक निरीह कुतिया के माध्यम से पुत्रपीड़ा की मूलभूत प्रवृत्ति का सजीव अंकन किया है। 'खानदार' एक अबोध व अनाथ मांझी बालक के जीवन-संघर्ष की कहानी है जिसे ज़माने की बुरी-नज़र में भी अच्छाई ही दिखती है। 'खामोश तूफान' और 'चार चिनारी' दो प्रेम-कहानियां हैं जिनमें कहानीकार के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है।

## वासुदेव 'रेह'

इनका पूरा नाम वासुदेव पण्डित तथा 'रेह' उपनाम है। इनका जन्म १९२९ में श्रीनगर के प्रमुख कस्बे सोपोर में हुआ था।

'रेह' कश्मीरी के सूरदास हैं। पांच-छः वर्ष की आयु में ये सख्त बीमार पड़े। कई इलाज कराने के बाद स्वस्थ तो हो गए किन्तु आंखों की ज्योति जाती रही। बस, तभी से भौतिक चक्षु बन्द हो गए और मन के चक्षु खुल गए।

अप्रैल १९५८ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, श्रीनगर द्वारा आयोजित एक कवि-सम्मेलन में 'रेह' ने जब अपनी एक कश्मीरी-कविता पढ़कर सुनाई तो श्रोतागण झूम उठे और 'रेह' को खूब वाह-वाही मिली। इसके बाद जहां-जहां भी कवि-सम्मेलन होते 'रेह' को भाग लेने के लिए बुलाया जाता। कुछ ही वर्षों में 'रेह' काफी लोकप्रिय हो

प्रेम उसके और गुल के बीच अमीरी-गरीबी की खाई पाटने में असमर्थ है।

ताज बेगम पिछले कई वर्षों से रेडियो-कश्मीर में काम कर रही हैं। 'बहिनों के लिए' कार्यक्रम से ये विशेषरूप से सम्बद्ध हैं।

## दीपक कौल

इनका पूरा नाम मोती लाल कौल है। साहित्यिक-क्षेत्र में दीपक कौल नाम से प्रसिद्ध है। इनका जन्म महाराजगंज, श्रीनगर में २२ जुलाई १९३२ को हुआ था। ये राजनीतिशास्त्र में एम० ए० हैं तथा इन्होंने रूसी भाषा का डिपलोमा भी प्राप्त किया है।

दीपक कौल कश्मीरी के उन कथाकारों में से हैं जिन्होंने अधिक संख्या में कहानियाँ तो नहीं लिखीं किन्तु जितनी लिखीं उनके आधार पर कश्मीरी-कहानी-साहित्य में एक महत्वपूर्ण जगह बना ली है। कौतूहल को जगाकर अन्त में प्रभावपूर्ण ढंग से उसको शान्त करना—दीपक कौल की विशेषता है। 'सफर तु सूत्य वोल्य' शीर्षक कहानी में यह विशेषता द्रष्टव्य है। वेदलाल जीवनभर औरों की खातिर जिया किन्तु जब उसके अन्तिम दिन निकट आये तो कोई सुध लेने तक न आया। जिनको उसने खिलाया-पिलाया, बड़ा किया, वही अन्तिम घड़ी में किनारा कर गये। बेचारे मन्दिर के बाबाजी को वेदलाल के शव का दाह-संस्कार करने के लिए दौड़-धूप करनी पड़ी। दाह-संस्कार के लिए सामग्री जुटाने हेतु वेदलाल की एक पूर्व परिचिता हारवद सामने आती है। छिद्रान्वेषी समाज को मुक्ता मिल जाता है—वह वेदलाल और हारवद के मध्य आज से ८० वर्ष पहले के सम्बन्धों को खोदने लगता है। 'रोद्यकाञ्च्य ओर' कहानी में पोशकुज नाम की एक बुढ़िया की चारित्रिक विशेषताओं को खूब सहृदयता के साथ उभारा गया है। पड़ोसियों ने क्या खाया, उनके यहां कौन आया और कौन गया, कब आया और क्यों आया आदि उसके स्वभाव की चुनी हुई विशेषतायें हैं। एक दिन उसने देखा कि एक पड़ोसी के यहां कोई व्यक्ति कोई चीज टोकरी में छिपाकर ले जा रहा है। खूब प्रयत्न करने पर भी वह इस रहस्यमय टोकरी के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में असफल रहती है। एक दिन पड़ोसी की नव-वधू 'चोर-चोर' चिल्लाती हुई आगन में आ जाती है। भारी भीड़ गली में एकत्र हो जाती है। चोर को पकड़ने के लिए दो-एक सठंत घर में घुस जाते हैं। चोर को पकड़ लिया जाता है। चोर और कोई नहीं वरन् पोशकुज होती है। बुढ़िया की लाज रखने के लिए पड़ोसी महाशय उत्सुक भीड़ को यह कहकर शान्त करते हैं कि जिसे चोर समझा गया था वह दरअसल एक बिल्ली थी।

## अवतार कृष्ण रहबर

पूरा नाम अवतार कृष्ण नाम और 'रहबर' उपनाम है। इनका जन्म श्रीनगर के नवाबरिस्तान मुहल्ला में २७ अप्रैल १९३३ को एक मध्यवर्गीय घराने में हुआ था।

ये उर्दू में एम० ए० हैं।

कश्मीरी के नवोदित कहानीकारों में रहबर अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनकी नौ कहानियों का एक कहानी-संग्रह 'तोबरुक' शीर्षक से १९५८ में प्रकाशित हुआ है। एक अन्य संग्रह 'मोक्तलर' शीर्षक से १९५९ में प्रकाशित हुआ है। 'मोक्तलर' कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानिया बच्चों के लिए लिखी गई है। इन दो संग्रहों के अतिरिक्त रहबर ने टैगोर के नाटक 'चित्रा' तथा प्रसिद्ध अंग्रेजी नाटककार गोल्ड स्मिथ के 'शी स्टूप्स टु कांकर' नाटक का कश्मीरी मे सफल रूपांतर भी किया है। पंजाबी के प्रख्यात कथाकार नानकसिंह के उपन्यास 'पवित्र पापी' का भी इन्होंने 'मोसूम गोनाह्गार' शीर्षक से कश्मीरी मे सुन्दर रूपांतर किया है।

एक सफल कहानीकार होने के साथ-साथ रहबर एक सुलझे हुए आलोचक भी हैं। इनका कश्मीरी भाषा में लिखित 'काशिरि अदबु च तवारीख' (कश्मीरी साहित्य का इतिहास) विषयक आलोचनात्मक ग्रन्थ कश्मीरी-समालोचना साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। २७० पृष्ठों के इस ग्रन्थ मे १२०० से लेकर १७३५ ई० तक के कश्मीरी कवियो के जीवन एवं कृतित्व का सम्यक् मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। प्रथम अध्याय मे कश्मीरी भाषा के उद्गम और विकास पर विचार किया गया है। द्वितीय अध्याय में लल्लद्यद, शेख नुरुद्दीन वली तथा बड़शाहकालीन कश्मीरी कवियों का अध्ययन है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत हब्बाखातून, अरणिमाल आदि का अध्ययन है। कश्मीरी भाषा मे लिखित इस खोजपूर्ण कार्य का अभी प्रथम भाग ही प्रकाशित हुआ है। रहबर को इस ग्रन्थ पर राज्य की कल्चरल अकादमी का १९६६ का पुरस्कार मिल चुका है।

रहबर पिछले कई वर्षों से आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र मे वरिष्ठ स्क्रिप्ट राइटर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

## हरिकृष्ण कौल

इनका जन्म २२ जुलाई १९३४ को श्रीनगर के जैनदार मुहल्ला मे हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा श्रीनगर के सो० एम० एस० तथा डी० ए० वी० स्कूलों से प्राप्त कर इन्होंने १९६० मे कश्मीर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० किया।

१९५० से लेकर १९६७ तक कौल हिन्दी में कहानियां लिखते रहे। इनकी पहली हिन्दी कहानी 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में १९५५ में 'उस पत्थर की कहानी' शीर्षक से छपी थी। तब से लगातार इन्होंने लगभग ५० कहानियां लिखी हैं जो 'सारिका', 'नई कहानियां', 'धर्मयुग', 'नयापथ', 'योजना', 'शीराज़ा' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। इनका हिन्दी कहानियों का एक संग्रह 'इस हमाम में' १९६७ में छप चुका है। इस संग्रह पर कौल को भारत सरकार की 'अहिन्दी-भाषी लेखकों को पुरस्कार देने की योजना' के अन्तर्गत १९७१ का द्वितीय पुरस्कार मिला है।

१९६७ से कौल कश्मीरी में लिखने की ओर प्रवृत्त हुए। सम्भवतः मातृभाषा

छूने की आकांक्षा करते हैं
जिराफ की शिखा
या खजूर की फुनगी
अथवा समुद्रवेला की पड़ोसिन पहाड़ी-चोटी।

ऊपर कहा जा चुका है निराश ने कश्मीरी में लिखना १९६७ से प्रारम्भ किया। कश्मीरी में इन्होंने मुख्यतया कवितायें ही लिखीं। इनकी कश्मीरी कविता 'कॉशुर अख़' में छपी थी। अब तक इन्होंने कुल मिलाकर २० कवितायें लिखी हैं जो विभिन्न कश्मीरी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

निराश का कश्मीरी साहित्य को जो योगदान है वह कवि के रूप में कम और एक अनुवादक के रूप में अधिक है। एक अनुवादक की हैसियत से इन्होंने कश्मीरी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है, वह चिर-स्मरणीय रहेगी। अनुवाद-कार्य इन्होंने दो तरह से किया है—

१—हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं की प्रमुख रचनाओं का कश्मीरी में अनुवाद, और

२—कश्मीरी रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद।

जिन रचनाओं का निराश ने कश्मीरी में अनुवाद किया है, उनमें उल्लेखनीय हैं—कालिदास का नाटक 'मालविकाग्निमित्र', आदिरंगाचार्य का 'सुनो जन्मेजय', बाबा कारेरकर का 'सारस्वत', मोहन राकेश का 'आधे-अधूरे', मुद्राराक्षस का 'उसका अस्वती', बादल सरकार का 'पगला घोड़ा', आर्थर मिलर का 'डेथ आफ ए सेल्समैन' गाल्सवर्दी का 'जस्टिस' आदि। इन सभी नाटकों के कश्मीरी-रूपांतर 'रेडियो कश्मीर' से प्रसारित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त निराश ने प्रसिद्ध कवियों सुमित्रानन्दन पंत, हरिकृष्ण आदि की कुछ कविताओं को भी कश्मीरी में रूपांतरित किया है।

कश्मीरी कवियों में नादिम, रहमान राही, कामिल, चमन, गौहर, फिराक आदि की कविताओं को निराश ने हिन्दी में सफलतापूर्वक रूपांतरित किया है। नादिम की प्रसिद्ध कविता 'शिहिल कुल' (पेड़ छायादार) का एक अनूदित अंश देखिये—

पेड़ छायादार:
यह विस्तार! संख्यातीत शाखें,
डालियां! ये टहनियां अगणित,
अलौकिक रूप
रस की अमर गंगा बह रही
इसकी गठीली देह में,
है स्नेह का यह पुंज,
इसकी पत्तियां हैं,
पातियां मनहर बहारों की पठाई,
है बना यह मंदिर माधव का,

रसीला राग जीवन का,
इसे रोपा धरा में देवताओं ने,
अमिट वरदान इस को दे दिया—
'तुम स्वर्ग हो जाओ।'
यही वह पेड़ छायादार,
माधव नाम जिसका,
पेड़ छायादार, जोड़ा है न इसका॥

('शीराज़ा' प्रवेशांक से)

जिन कश्मीरी नाटकों को निराश ने हिन्दी मे रूपांतरित किया है उनमें उल्लेखनीय हैं—अली मुहम्मद लोन का 'महान' (महान), अख़्तरमोहीउद्दीन का 'बु.त म्योन दुनिया' (मैं और मेरी दुनिया), शाहिद का 'फ़ामु.लु' (फ़ैसला), कामिल का 'घदरान्य' (रानी दिदा), मोती लाल क्यमू का 'येलि रव खोत' आदि-आदि। जिन कश्मीरी कहानियों को हिन्दी मे अनूदित किया, उनमें उल्लेखनीय हैं—अख़्तर की 'जूनमोज' (इन्दु-मैया), कामिल की 'ज़ड', रहबर की 'नारगल्य चापेन्य', सोमनाथ जुत्शी की 'ओश त बत' (आंसू सने भात) आदि। इसके अतिरिक्त निराश ने 'गांधी की आत्मकथा' को भी कश्मीरी में अनूदित किया है। अनूदित अंश 'रेडियो-कश्मीर' से ३० जनवरी १९६७ से ६ अप्रैल १९७० तक हर सोमवार को प्रात.काल प्रसारित होते रहे हैं।

अनुवाद-कार्य का निराश के पास लगभग १२ वर्षों का अनुभव है। इस कालावधि में ये किन्ही ठोस निष्कर्षों पर पहुंचे हैं जो कश्मीरी साहित्य को शेष भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में परखने के उपरान्त अनुवादक की निष्पक्ष दृष्टि से गुजरे हैं—[1]

१—समस्त भारतीय साहित्य के पीछे एक ही सांस्कृतिक-सूत्र विद्यमान है।

२—कश्मीरी साहित्य में अभी उतना नयापन नही आ पाया है जितना विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में मिलता है।

३—टेक्नीक के क्षेत्र में कश्मीरी के कथा-साहित्य ने अभी काफी तरक्की करनी है।

## उमेश कौल

इनका जन्म कश्मीर की सोपोर तहसील में जनवरी १९३४ में हुआ था। जम्मू व कश्मीर से १९५८ में बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् उमेश १९६० तक फिल्म डिवीजन में कश्मीरी विभाग के अन्तर्गत स्क्रिप्ट-राइटर के पद पर कार्य करते रहे। १९६२ से १९६४ तक श्रीनगर में प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी पत्र 'कश्मीरी-पोस्ट' के उपसंपादक रहे। १९६५ से आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र में वरिष्ठ स्क्रिप्ट-

१. २४ मई १९७० को निराश से उनके निवास-स्थान पर लिये गये इन्टरव्यू के आधार पर।

राइटर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

उमेश ने लगभग एक दर्जन कहानियां लिखी हैं। कश्मीरी में लिखने से पूर्व ये उर्दू व हिन्दी में लिखते थे। उर्दू में ३० तथा हिन्दी में १२ कहानियां लिखी हैं। उर्दू में लिखी इनकी पहली कहानी 'इस पार से उस पार तक' कश्मीर के एक दैनिक में छपी थी। 'अड्‌ य कथ' (आधी बात) इनकी प्रथम कश्मीरी कहानी है जो 'कोंगपोश' के सितम्बर १९५५ के अंक में छपी थी। इनकी शेष कश्मीरी कहानियां 'शीराज़ा', 'वोंगुर अदब', 'तामीर', आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

उमेश की प्रायः सभी कहानियां चरित्र-प्रधान हैं। 'मुस वोर्‌य स्यठान' कहानी में 'जव' का जैसा सजीव चरित्रांकन किया गया है वैसा कश्मीरी की अन्य कहानियों में बहुत कम देखने को मिलता है। पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को सहजता से साथ उभार कर उन्हें एक निश्चित जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हेतु मोड़ देना—उमेश की विशेषता है। 'जव' एक महत्वाकांक्षी युवक है जो अपने अन्य मित्रों की तरह समाज में कुछ कर गुजरना चाहता है। मन्त्र-विद्या सीखने से लेकर भजन-मण्डलियों में भाग लेने तक के सभी धन्धे करता है किन्तु प्रत्येक में असफलता ही हाथ लगती है। आखिर उसके भाग्य का कौन हरण करता है—यही दुःख उसे भीतर-ही भीतर कचोटता जाता है। कहानीकार की नियति में अटल विश्वास की भावना इस कहानी द्वारा व्यंजित होती है।

## मुज़फ्फर आज़म

इनका जन्म बारामूला ज़िला के गोटुल्य गांव में १९३४ में हुआ।

मुज़फ्फर आज़म पिछले बारह-तेरह वर्षों से लगनपूर्वक कश्मीरी-कविता की श्रीवृद्धि कर रहे हैं। 'ज़ोलान' शीर्षक से इनकी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो चुका है। इसमें २० कविताएँ संकलित हैं। इनकी कविताओं में विभिन्न विद्रूपताओं तथा व्यस्तताओं के बीच दब-पिस रहे आज के हताश मानव को जीवन के सुन्दर के प्रति उत्प्रेरित होने का सन्देश है। 'नैया बीच भंवर में फंस चुकी है, पतवार हाथ से छूट चुकी है, साहिल तक पहुंचना असम्भव है। रे नाविक, अब तो मौत निश्चित है। किन्तु, ठहर तू इन विकट क्षणों को यों न गंवा। उठती मौजों का नज़ारा कर, दूर खड़े पर्वतों की ओट में डूबने सूर्य की रंगीनी को देख, तट पर उगी वनस्थली के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द ले—

> नाव सा पान
> नाव सा पान
> वाव गत्येव पतुराव सा पाना
> वाठन प्यठ अचनाव सा पाना
> नाव वन् त्य
> वन्य वेसि हमतुल आवस कोट

दन येलि आव फुटिथ यथ आवलिनस मंज़
छरि अथ नरि गिलवान कोत पातस
हय अछ्य फिर-फिर क्याज़ि बुछा छुक
बेठ्य मालन कुन
घठ यन्य कथ साहिल द्राव।
बुछ तामत यथ आवलिनिस कुन
प्रायन हुन्द गत क्यूर बुछल
बुछ गुलिटूरा अस मोन सायन—।

## सोमनाथ साधू

इनका जन्म १९३५ में फतहकदल, श्रीनगर में हुआ।

साधू ने मुख्यतः नाटक (रेडियो के लिये) तथा कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध लिखे हैं। रेडियो के लिए लिखे नाटकों में उल्लेखनीय हैं—'रिहर्सल', 'जानवो', 'मात्रलुन', आदि। हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्धों में 'येलि मे नेकटाई लॉज' और 'बिलिताम प्यठ टंगनोर ताम' उल्लेखनीय हैं।

साधू को नाटक के क्षेत्र में उतनी सफलता नहीं मिली है जितनी निबन्ध के क्षेत्र में। अपने खट्टे-कड़वे जीवन-अनुभवों को हास्य व्यंग्यपूर्ण शैली में इन्होंने बड़ी खूबी के साथ निबन्धों में वर्णित किया है। इन निबन्धों की एक-एक पंक्ति साधू के मौजी व्यक्तित्व की सूचना देती है। निबन्धकार ने जब पहली बार गले में टाई बांधी और अपने आफिस की ओर चल पड़े तो रास्ते में उनके ऊपर क्या बीतती है, मित्र लोग कैसे-कैसे 'रिमार्क' कसते हैं, जेब में पैसे न होने की वजह से गले में से टाई निकालकर कैसे [illegible] से सिनेमा देखना पड़ता है आदि प्रसंगों का वर्णन साधू के प्रसिद्ध हास्य-व्यंग्यात्मक निबन्ध 'येलि मे नेकटाई लॉज' में मिलता है। इसी प्रकार उनके 'बिलिताम प्यठ टंगनोर ताम' निबन्ध में गधे पर बैठकर बिलिताम से टंगनोर तक की यात्रा के [illegible] अनुभवों, यथा—गधे का जगह-जगह पर अड़ जाना, रेंकना, उछलना तथा अन्त में सवार सहित दलदल में घुस जाना आदि का मनोरंजक भाषा-शैली में वर्णन किया गया है।

## मुहम्मद यूसुफ टेंग

इनका जन्म शोपियान, कश्मीर में १४ मार्च १९३५ को हुआ था। शिक्षा बी० ए० तक प्राप्त की है।

कश्मीरी के प्रमुख आलोचकों में टेंग अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होंने कश्मीरी साहित्य के विभिन्न पक्षों पर लगभग ३० [illegible] निबन्ध लिखे हैं। अब्दुल अहद 'आज़ाद' की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' (१९५९) को महत्त्वपूर्ण टिप्पणियों के साथ सम्पादित करने का श्रेय इन्हीं को है। इन के अतिरिक्त

इन्होंने मकबूलशाह क्रालवारी की प्रसिद्ध समनवी 'गुलरेज' तथा उनके सम्पूर्ण कलाम को 'कुलयात-ए-मकबूल' में जिस परिश्रम के साथ संपादित किया है उसके लिए कश्मीरी का समालोचना-साहित्य इनका चिर-ऋणी रहेगा। राज्य की कल्चरल अकादमी से निकलने वाली कश्मीरी पत्रिका 'शीराज़ा' का भी टेंग ने कई वर्षों तक सफलतापूर्वक सपादन किया है। इससे पूर्व ये राज्य के सूचनालय विभाग से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'तामीर' के संपादक थे। रेडियो से भी टेंग की लगभग एक सौ से ऊपर वार्तायें प्रसारित हो चुकी हैं। ये सभी वार्तायें कश्मीरी साहित्य के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित रही हैं।

टेंग १९६७ से राज्य की कल्चरल अकादमी में उप-सचिव के पद पर कार्य कर रहे हैं।

## गुलाम नबी खयाल

इनका पूरा नाम गुलाम नबी मीर और 'खयाल' उपनाम है। श्रीनगर के मशाली मुहल्ला में इनका ४ मार्च १९३६ को जन्म हुआ था। कश्मीर विश्वविद्यालय से बी० ए० कर लेने के बाद १९५६ से १९५८ तक 'रेडियो कश्मीर' में उद्घोषक के पद पर रहे। १९५८-५९ से राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेना शुरू किया।

एक कुशल राजनयिक होने के साथ-साथ 'खयाल' एक प्रतिभाशाली कवि और लेखक भी हैं। कश्मीरी के आधुनिक साहित्यकारों में यही एक ऐसे साहित्यकार हैं जो राजनीति में भाग लेने के साथ-साथ कश्मीरी साहित्य-जगत् में भी एक विशिष्ट स्थान बना रहे हैं। इनकी प्रकाशित रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

१—'प्रागाश', १९५४ से १९५७ तक लिखी कविताओं व गज़लों का संग्रह।

२—'रुबयाते उमर खयाम' १९६१, उमर खयाम की रुबाइयों का कश्मीरी-पद्यानुवाद।

३—'पोयटिका' १९६२, अरस्तू के 'पोयटिका' का कश्मीरी-अनुवाद।

४—'सामनाम' कश्मीरी कवि लक्ष्मण रैंण 'बुलबुल' के प्रसिद्ध कश्मीरी खण्ड-काव्य 'सामनामा' का संपादन।

५—'महमूदगामी' १९६३, प्रसिद्ध कश्मीरी कवि के व्यक्तित्व व कृतित्व का अध्ययन।

६—'ज़जीरिहुंद साज़' १९६३, जेल में लिखी कविताओं का संकलन।

'खयाल' की प्रारम्भिक कविताओं में, जो 'प्रागाश' में संकलित हैं, प्रगतिवादी लक्षण स्पष्टतया दिखाई पड़ते हैं। इनकी 'दास्तान' व 'ज़िन्दगी त अमन' शीर्षक कविताओं से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

> १—सोकु ट्य सान्य अरमान,
> गटन मंज़ अति कर्य दिलिवय दाग रोशन
> छि यिम सोलनाह वय शमा उमरि पोशन

अकादमी को पर्याप्त सहयोग दिया है।

'साकी' ने कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध कवियों स्वच्छकाल, परमानन्द, समदमीर आदि के जीवन और कृतित्व पर कुछ शोधपूर्ण निबन्ध भी लिखे हैं। पुरानी पाण्डुलिपियों का संकलन तथा उनका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करना 'साकी की एक विशिष्ट साहित्यिक अभिरुचि है।'[1] १९६८ से ये आकाशवाणी के श्रीनगर केन्द्र में 'रेडियो-रिपोर्टर' के पद पर कार्य कर रहे हैं।

'साकी' की कविताओं में प्रकृति-चित्रण एवं शृंगार-वर्णन ही अधिक है। 'बहार', 'गविरोछ्य' (गडरिया), 'यावुन' (यौवन), 'ओबुर' (बादल), आदि कवितायें काफी सुन्दर बन पड़ी है। प० जवाहर लाल नेहरू के निधन पर इन्होंने एक कविता लिखी थी जिसकी खूब प्रशंसा की गई। इस कविता से कुछ पद्यांश देखिये—

यि क्याह गव बुन्युल गव जहानस यि क्याह गव
यि क्याह रूहि हिन्दुस्तानस यि क्याह गव
अमिस दीवताहस पासवानस यि क्याह गव
यि क्याह रूहि हिन्दुस्तानस यि क्याह गव
छु हिन्दुस्तानुक दोयुम नाव नेहरू
अशोकस त गान्धी जियस भाव नेहरू
छु नवि भारतुक सोन पाराव नेहरू
छु सथ दविमिरयन सोंतकुय थाव नेहरू
तवय मरि न नेहरू
तवय चोल न नेहरू
यदुन अरि न नेहरू
तवय मरि म नेहरू——

यह कैसा भूकम्प आया जो सारा जहाँ कम्पित हुआ। मां-भारती की आत्मा विकल क्यों हो उठी। उस देवता-स्वरूप हमारे पासवां को यह क्या हुआ।

हिन्दुस्तान का दूसरा नाम नेहरू है, अशोक और गांधी का दूसरा रूप नेहरू है, नये हिन्दुस्तान के सपनों का प्रतीक नेहरू है, इसीलिये वे अमर हैं, हमारे पास हैं और हम में समाये हुए हैं—।

## रतनलाल शान्त

पूरा नाम रतनलाल रैना तथा 'शान्त' उपनाम है। इनका जन्म १४ मई १९३८ में बड़ियार, श्रीनगर में हुआ था। शिक्षा एम० ए० (हिन्दी) तक प्राप्त की है।

कश्मीरी में लिखने से पूर्व 'शान्त' हिन्दी में कवितायें करते थे। इनकी ४० हिन्दी-कविताओं का एक संकलन 'मोटी किरणें' शीर्षक से १९६६ में प्रकाशित हुआ

1. 'साकी' से २० मई १९७० को लिए गए इण्टरव्यू के आधार पर।

है। इस संकलन पर इन्हें राज्य की कल्चरल अकादमी का पुरस्कार भी मिला है। इनकी हिन्दी में रचित एक कविता 'समर्पण' से एक पद्यांश देखिये—

> आग हमेशा धधके ही जरूरी नहीं
> कहीं राख में चिनगारी सुलगा ही करती है
> लेकिन नभ को छूने जिसने ऊपर हाथ उठाये
> उसे अपाहिज कहकर दुनिया बैसाखी देती
> नई दृष्टि पाने जिसने भी अपनी खिड़की खोली
> उसको एक अन्धी दीवार उसे सामने मिल गई
> द्वार सलाखों के और दीवारें तपते लोहे की
> कीलें उसके अंग अंग पर और होंठों पर मुहरें
> उसके हर घाव हर ज़ख्म की दवा दी जाती है—
> प्रवचन, भाषण, वादे, शोर, निरर्थक आवाज़।

कश्मीरी की ओर 'शान्त' प्रवृत्त नहीं हुए वरन् उन्हें प्रवृत्त होना पड़ा। इसके लिए 'शान्त' दो कारण देते हैं—एक, अहिन्दी-भाषी कवि का हिन्दी में स्थापित होना (और वह भी जब हिन्दी में लिखने वालों की बाढ़-सी आ रही हो) अपेक्षाकृत दुष्कर कार्य है। दूसरा मातृभाषा के माध्यम से रचनाकार अभिव्यक्ति के प्रति जितना ईमानदार रह सकता है उतना दूसरी भाषा के माध्यम से नहीं[1]। 'शान्त' की ये दोनों मान्यतायें युक्तियुक्त हैं। कश्मीर में ऐसे अनेक हिन्दी-कवि हैं जिनकी कवितायें भाव व शिल्प की दृष्टि से हिन्दी-क्षेत्र के किसी भी प्रतिष्ठित कवि की कविताओं से टक्कर ले सकती हैं। इस प्रसंग में 'शान्त' के अतिरिक्त अन्य हिन्दी-कवियों यथा—मोहन निराश, मधुप, शशिशेखर, विनीत आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। ये सभी कवि सम्भवतः हिन्दी में 'स्थापित न होने के कारण' ही अब कश्मीरी की ओर मुड़े हैं।

'शान्त' ने कश्मीरी में अपना 'कैरियर' कहानी-लेखन से प्रारम्भ किया है। अब तक इन्होंने एक दर्जन से ऊपर कहानियां लिख डाली हैं। इनकी 'कापिफुल' शीर्षक कहानी पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी है। यह कहानी राज्य की कल्चरल अकादमी से निकलने वाली कश्मीरी पत्रिका 'शीराज़ा' के आधुनिक-कहानी-विशेषांक में छपी है। रेडियो के लिए भी कुछ नाटक लिखे हैं जो काफी लोकप्रिय हो चुके हैं। 'शान्त' अपने ऊपर राजेन्द्र यादव, हेमिंग्वे, काफ्का, कामू आदि साहित्यकारों का प्रभाव मानते हैं। इनकी कुछ कश्मीरी कहानियों का अनुवाद विभिन्न भारतीय भाषाओं, यथा—हिन्दी, डोगरी, उर्दू, पंजाबी, तेलुगु, मलयालम आदि में भी हो चुका है।

'शान्त' व्यवसाय से हिन्दी के प्राध्यापक हैं और पिछले कई वर्षों से राज्य के शिक्षा विभाग में कार्य कर रहे हैं।

---

१. १०-२-७० को 'शान्त' से उनके निवास स्थान पर लिये गये इन्टरव्यू के आधार पर।

## डा० शंकर रैणा

इनका जन्म १७ जून १९३९ में श्रीनगर के मुहल्ला खरयार मे एक मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। अनेक प्रकार की पारिवारिक विषमताओं के बावजूद ये उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए लगनशील रहे और एम० बी० बी० एस तथा एम-डी० तक शिक्षा प्राप्त की।

डा० शंकर रैणा ने १९५५ से कश्मीरी मे लिखना शुरू किया। पहले कुछ कहानियां लिखीं फिर नाटक लिखने लगे। इनका प्रथम कहानी-संग्रह 'ज़िली ज़ूल' शीर्षक से १९६४ में प्रकाशित हो चुका है।

शंकर रैणा व्यवसाय से एक डाक्टर हैं। नित्यप्रति न जाने कितने रोगियों के सम्पर्क में इन्हें आना पड़ता है। रोगियों की मनोदशाओं, उनकी संवेदनाओं, उनकी लाचारियों, आशाओं-निराशाओं आदि को वे निकट से देखते हैं। यही कारण है कि इनकी कहानियों में प्रायः 'रोगी-अस्पताल' के इर्द-गिर्द ही कथानक घूमते रहते हैं। इनकी 'अख पज़ल कॅह इन्सान', 'वन्य क़ुहज छ वोर्‌य', 'कॅह रख कॅह फेयर' आदि कहानियां अस्पताली जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं। वातावरण-सृष्टि की दृष्टि से ये तीनों कहानियां अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं।

डा० शंकर रैणा ने लगभग आठ नाटक लिखे हैं। ये सभी रेडियो के लिये लिखे गए हैं।

## चमन लाल 'चमन

इनका जन्म १८ अप्रैल १९३९ में श्रीनगर के शशियार मुहल्ला में हुआ था। कश्मीर विश्वविद्यालय से १९६० में बी० ए० कर लेने के बाद राज्य की कल्चरल अकादमी में कश्मीरी विभाग के सहसंपादक नियुक्त हुए।

'चमन' ने अपने विद्यार्थीकाल से ही कवितायें करना प्रारम्भ कर दिया था। इनकी पहली कविता १९५२ मे 'कोंगपोश' में छपी थी। तब से लेकर 'चमन' ने लगभग सत्तर कवितायें लिख डाली हैं। चालीस कविताओं का एक संग्रह 'शबनेम्य हार' शीर्षक से प्रकाशित भी हो चुका है। इस संग्रह पर इनको राज्य की कल्चरल अकादमी का १९६३ का पुरस्कार मिला है।

'चमन' की कवितायें विस्तन-प्रक्रिया की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित होती हैं। पहली श्रेणी के अन्तर्गत वे कवितायें आती हैं जो उन्होंने सन् १९५५ तक लिखी हैं। इनमें कवि की प्रगतिवादी दृष्टि प्रधान है। द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत ऐसी कवितायें आती हैं जो १९५५ से लेकर १९६० तक लिखी गई हैं। ये कवितायें शृंगार-प्रधान हैं। १९६० के बाद की कवितायें तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। ये प्रयोगवादी कवितायें हैं। प्रगतिवादी कविताओं में 'चमन' की 'सोन वतन', 'लोलु य लोर', 'वयाइ करख पत', 'पानस तसलीह' आदि उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं मे देशभक्ति

तथा जनजागरण के स्वरप्रमुख हैं। 'सोन वतन' शीर्षक कविता से एक पद्यांश प्रस्तुत है—

यस कांह लागेस तस दजि रुम रुम
यस ग्रय् लागेस तस दजि रुम रुम
यस ग्रय होलवुछि तस दजि रुम रुम
युग ग्रसि बुयि यी तस दजि रुम रुम
वोल कर्यन्य विथि तस दजि रुम रुम

'येमिसात फेरान छुम', 'हुमुन', 'बहार' आदि सुन्दर शृंगारपरक कविताएँ हैं। प्रयोगवादी कविताओं में 'गुमगयि पेरय' (पसीना आना रुक गया), 'मे मा लजमव नजर' (कहीं मुझे नज़र तो नहीं लग गई है), 'वे सोखमन' (उद्वेलित मन), आदि शिल्प और भाव की दृष्टि से अतीव सुन्दर बन पड़ी हैं। इनमें आज के बुद्धिवादी मानव की अस्तित्वविहीन स्थिति का सजीव वर्णन है। 'गुम गयि परय' शीर्षक कविता से एक पद्यांश प्रस्तुत है—

गतेयि तूफान लोकटिस वदनस
लोकचारहय जन खेयि गावातव
हय हय हू हू ग्रन्द्रिय चापान
पानस पानस ग्रय कांह रूशिय
यावन थरिनय बामन ददिमित्य
बुमि वोगन्यारस मंज गुमि पेरय गयि
मदरस शुर्य पेंशन योश ग्रावान
कोठय ग्रांचन निश छे़न हयु बासान
टेंडग्रोंगजन हिन्द रंग बदलावान—

इस कमसिन जवानी में ही जीवन के अनेक गम घर कर गये हैं। लगता है जैसे पूरा जीवन यहीं पर सिमट कर रह जायेगा। चारों ओर ग्राह-ग्राही मची हुई है, कोई किसी की सुनता ही नहीं है। जवानों के चेहरे मुरझा गये हैं और वे 'पेंशनभोगियों' की तरह ठण्डे निःश्वास छोड़ रहे हैं। उनकी टांगें शक्तिहीन हो चुकी हैं और वे लड़खड़ाते हुए निरुद्देश्य आगे बढ़ रहे हैं—।

आधुनिक काल के अन्य उभरते हुए साहित्यकारों में उल्लेखनीय हैं—सर्वश्री हृदयकौल भारती, अब्बास ताबिश, गुलाम मुहम्मद मुश्ताक, रशीद नाज़की, गुलाम नबी जानबाज, मुहम्मद शफी शैदा, सितारा अहमद शाहिद, नूर मुहम्मद भट्ट, प्रेमनाथ प्रेमी, श्यामनाथ दर बहार, जानकीनाथ कौल कमल, मोती लाल नाज़, मोहीउद्दीन गौहर, समद मीरानी, मक्खन लाल बेकस, रसूल पुंछी, नाजी मुनव्वर, गुलाम नबी शाकर, फारूक नाज़की, हामिदी कश्मीरी, मक्खन लाल कंवल, पीताम्बरनाथ फानी, जवाहरलाल सरूर, बशीरशाह, मुहम्मद अयूब बेताब, निशात किश्तवारी, मोहन कृष्ण रैणा आदि। ये सभी अपनी अनवरत साहित्य-साधना द्वारा कश्मीरी साहित्य की श्रीवृद्धि करने में तत्पर हैं।

## सहायक ग्रन्थों की सूची

### हिन्दी-संस्कृत ग्रन्थ


| | |
|---|---|
| १. अरब और भारत के सम्बन्ध | मौलाना सुलेमान नदवी |
| २. आज का भारतीय साहित्य | साहित्य-अकादमी प्रकाशन |
| ३. कश्मीर का लोक-साहित्य | मोहन कृष्ण दर |
| ४. नीलमतपुराण | डा० वेद कुमारी |
| ५. भारत का भाषा-सर्वेक्षण | रूप० डा० उदयनारायण तिवारी |
| ६. भारत की भौगोलिक समीक्षा | डा० चतुर्भुज मामोरिया |
| ७. राजतरंगिणी | भाष्यकार, रघुनाथ सिंह |
| ८. लल्लवाक्यानि | सं० जार्ज ग्रियर्सन |
| ९. संतूर के स्वर | प्रो० चमन लाल सप्रू |
| १०. सरल भाषा विज्ञान | डा० मनमोहन गौतम |
| ११. हिन्दी, उद्‌भव विकास और रूप | डा० हरदेव बाहरी |
| १२. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि | डा० कृष्णदेव उपाध्याय |
| १३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ | |
| १४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | डा० राम कुमार वर्मा |
| १५. ज्ञान शब्द कोश | |


### अंग्रेज़ी ग्रन्थ


| | |
|---|---|
| १. ए हिस्ट्री आफ कश्मीर | पी० एन० कौल बामज़ई |
| २. ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेईंग्स | जे हिण्टन नोल्ज |
| ३. ए ग्रामर आफ कश्मीरी लैंग्वेज | टी० आर० ग्रेड |
| ४. सेनसस आफ इण्डिया, १९६१ | |
| ५. अरली हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ काश्मीर | डा० सुनील चन्द्र रे |
| ६. ग्रामर आफ द शीना लैंग्वेज | ग्राहम बेली |
| ७. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर | ए० बी० कीथ |

# सहायक ग्रन्थों की सूची


## हिन्दी-संस्कृत ग्रन्थ

| ग्रन्थ | लेखक/प्रकाशक |
|---|---|
| १. अरब और भारत के सम्बन्ध | मौलाना सुलेमान नदवी |
| २. आज का भारतीय साहित्य | साहित्य-अकादमी प्रकाशन |
| ३. कश्मीर का लोक-साहित्य | मोहन कृष्ण दर |
| ४. नीलमतपुराण | डा० वेद कुमारी |
| ५. भारत का भाषा-सर्वेक्षण | रूप० डा० उदयनारायण तिवारी |
| ६. भारत की भौगोलिक समीक्षा | डा० चतुर्भुज मामोरिया |
| ७. राजतरंगिणी | भाष्यकार, रघुनाथ सिंह |
| ८. लल्लवाक्यानि | सं० जार्ज ग्रियर्सन |
| ९. संतूर के स्वर | प्रो० चमन लाल सप्रू |
| १०. सरल भाषा विज्ञान | डा० मनमोहन गौतम |
| ११. हिन्दी, उद्भव विकास और रूप | डा० हरदेव बाहरी |
| १२. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि | डा० कृष्णदेव उपाध्याय |
| १३. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ | |
| १४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास | डा० राम कुमार वर्मा |
| १५. ज्ञान शब्द कोश | |

## अंग्रेजी ग्रन्थ

| ग्रन्थ | लेखक |
|---|---|
| १. ए हिस्ट्री आफ कश्मीर | पी० एन० कौल बामजई |
| २. ए डिक्शनरी आफ कश्मीरी प्रोवर्ब्स एण्ड सेइंग्स | जे हिण्टन नोल्ज |
| ३. ए ग्रामर आफ कश्मीरी लैंग्वेज | टी० ग्रार० ग्रेड |
| ४. सेनसस आफ इण्डिया, १९६१ | |
| ५. अरली हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ काश्मीर | डा० सुनील चन्द्र रे |
| ६. ग्रामर आफ द शीना लैंग्वेज | ग्राहम बेली |
| ७. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर | ए० बी० कीथ |

७. कोशिर शायरी — सं० मोहीउद्दीन हाजिनी
८. कोशुर नसर, (लेखगोन्द) — अवतार कृष्ण रहबर, गुलाम नबी ख
९. कथि मंज़ कथ — अमीन कामिल
१०. काशिरुक अलाकवाद फेर — टाक ज़ैनागीरी
११. गुजरेज़ — सं० मुहम्मद यूसुफ टॅग
१२. ज़ंजीरि हुन्द साज़ — गुलाम नबी ख़याल
१३. ज़ोलान — मुज़फ़र आज़म
१४. ज़िली बूल — डा० शंकर रैणा
१५. तोबरुक — अवतार कृष्ण रहबर
१६. दोद दग — अख़्तर मोहीउद्दीन
१७. नौरोज़-सबा — रहमान राही
१८. नमरुदनामा — पीर गुलाम रसूल नाज़की
१९. नूरनामा — सं० अमीन कामिल
२०. आगास — गुलाम नबी ख़याल
२१. पोशटिका — गुलाम नबी ख़याल
२२. बाल मर्‌योव — बन्सी निर्दोष
२३. बाल यपारि — अलमस्त कश्मीरी
२४. महमूदगामी — गुलाम नबी ख़याल
२५. मोक्तु.लर — अवतार कृष्ण रहबर
२६. मोदुर ख़्वाब — मोतीलाल साकी
२७. यि छु सोन वतन — सं० चमन लाल 'चमन'
२८. यिम सोन्य आलव — गुलाम नबी फ़िराक
२९. रुबयाते उमर ख़याम — गुलाम नबी ख़याल
३०. रामावतार चरित — सं० बलजिन्नाथ पण्डित
३१. लवु. त प्रवु. — अमीन कामिल
३२. लूस्यमितितारक — सूफ़ी मुहम्मद यूसुफ टॅग
३३. वतन छुय नाद लायान — सं० मुहम्मद यूसुफ टॅग
३४. शबनेम्य शार — चमन लाल चमन
३५. स्मरण — मास्टर ज़िन्दाकौल
३६. सामनामा — गुलाम नबी ख़याल
३७. सूफ़ी शायरी, ३ भाग — अमीन कामिल
३८. सतसंगर — अख़्तर मोहीउद्दीन
३९. सुय्या — अली मुहम्मद लोन

## पत्र-पत्रिकायें

### हिन्दी पत्रिकायें

१. कश्यप, श्रीनगर
२. त्रैमासिक भाषा, दिल्ली
३. धर्ममार्ग, जम्मू
४. प्रकाश, श्रीनगर
५. माध्यम, इलाहाबाद
६. योजना, श्रीनगर
७. वितस्ता, श्रीनगर
८. शीराज़ा, जम्मू
९. सप्तसिन्धु, चण्डीगढ़
१०. हिमालय, मुरादाबाद
११. हमारा साहित्य, जम्मू
१२. मार्गदर्शक, कश्मीर-विशे[illegible]

### उर्दू-कश्मीरी पत्रिकायें

१. कोशुर समाचार, दिल्ली
२. कोशुर अदब, श्रीनगर
३. कोंगपोश, श्रीनगर
४. जून, श्रीनगर
५. गुलरेज़, श्रीनगर
६. तामीर, श्रीनगर
७. चमन, श्रीनगर
८. पंपोश, श्रीनगर
९. प्रताप, श्रीनगर
१०. अज्युक कोशुर अफ़साना, ('शीराज़ा' का कहानी-विशेषांक)
११. अज़िच कोशुर शायरी, ('शीराज़ा' का कविता-विशेषांक)
१२. शीराज़ा, उर्दू
१३. शीराज़ा, कश्मीरी
१४. हमारा अदब, श्रीनगर
१५. सोन अदब १९५९ (राज्य-कल्चरल-अकादमी का प्रकाशन)
१६. सोन अदब १९६०-६२
१७. सोन अदब १९६३
[illegible] १९६४
[illegible] १९६५
[illegible] अदब १९६६
[illegible] १९६७